प्रकाशक

श्री साधुमार्गी जैन

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का हितेच्छु

श्रावक मण्डल, रतलाम

अखिल भारतवर्षीय

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स,

द्वारा

श्री साहित्य निरीक्षक समिति

से

प्रमाणित

आदर्श प्रेस, केसरगंज अजमेर में मुद्रित

संचालक—जीतमल लूणिया

वक्तव्य
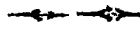
आत्मा का निज गुण ज्ञान दर्शन और चारित्र है, फिर भी ये कर्म पुद्गलो से आच्छादित हो रहे हैं, उन्हे प्रकट करने के हेतु किसी प्रशस्त निमित्त की आवश्यकता है। ज्ञानी महापुरुषों ने संसार को सद्बोध देकर सन्मार्ग पर लाने के अनेक उपाय किये है, और तत्व बोध देने के वास्ते जीवों की रुचि भिन्न २ जानकर चार अनुयोगों द्वारा सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। जिस प्राणी की जैसी रुची और जैसा क्षयोपशम हो एवं तत्व बोध कर सके उसी तरह की व्याख्या अनुयोगो में की है।

चार अनुयोगो में सरलता से तत्वावबोध कराने वाला धर्म कथानुयोग माना जाता है, यह अनुयोग आवाल वृद्ध सबको उपयोगी है। धर्म कथानुयोग जैसा सरल है वैसा ही जटिल भी है, इसके द्वारा जनता का हित किया जाता है उसी तरह अहित भी हो जाता है। धर्म कथा की उपयोगिता विशेष कर वक्ता के ऊपर आधार रखती है। वक्ता जिस श्रेणी का होगा उसी ढांचे में धर्म कथा को भी ढालेगा, और वैसे ही भाव श्रोताओ के आत्मा में जागृत करेगा।

श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्री १००८ श्री जवाहिरलालजी महाराज साहब चरितानुवाद को किस खूबी से फरमाते हैं और श्रोताओं के हृदय में जो भाव उत्पन्न कर देते है वे जिसने एक

वार भी पूज्य श्री के सत्संग का लाभ लिया है, उन्हे भली प्रकार विदित है। पूज्य श्री केवल कथा का कलेवर ही नहीं फरमाते किन्तु उस कलेवर में प्राणों का संचार कर देते हैं।

आपकी वाणी का सुदूर प्रान्तो में बसते हुवे बन्धुओं को और भावी प्रजा को भी लाभ मिल सके इस शुभ आशय से यह मंडल आपके ओजस्वी व्याख्यानों का लगातार ग्यारह वर्ष हुवे चातुर्मास मे संग्रह करा रहा है और उन संग्रहित व्याख्यानों में से साहित्य सम्पादन कराके प्रकाशित कर रहा है, जो जनता के करकमलो मे पहुँच कर बहुत ही आदर पाया है। इससे प्रेरित होकर ही हम आज यह पुस्तक व्याख्यान सार संग्रहमाला का बारहवाँ पुष्प "सती शिरोमणि वसुमति" अपर नाम "सती चन्दनबाला" जिसके लिये जैन जैनेतर जनता बहुत समय से लालायित थी, पाठकों के करकमलों में पहुँचाते हुवे आनन्द का अनुभव कर रहे हैं।

नियमानुसार यह पुस्तक प्रकाशित करने से पूर्व अखिल भारतीय श्री श्वे० स्था० जैन कान्फ्रन्स ऑफिस मुंबई को भेजकर साहित्य निरीक्षक समिति से प्रमाणित कराने के पश्चात् ही प्रकाशित की जा रही है।

मण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की कीमत केवल कागज और छपाई की लागत के प्रमाण से ही रखी जाती है, सम्पादन आदि अन्य किसी प्रकार का खर्च शामिल नहीं किया जाता, इस हिसाब से पुस्तक की किंमत रु० ।||) करीब पड़ती है, परन्तु निम्न लिखित श्राविकाओं ने इस पुस्तक का अधिक से अधिक प्रचार हो और सती चन्दनवाला का आदर्श श्राविका समाज के उत्थान

में मार्गदर्शक हो इस भावना से उदारता पूर्वक आधी लागत अपने पास से देना स्वीकार किया है जिनके शुभनाम:—

१—श्रीमान् अमृतलाल रायचन्द झवेरी की धर्मपत्नी श्रीमती केशरबाई, मुंबई।

२—श्रीमान् रतनचन्द गगलचंद की धर्मपत्नी श्रीमती चांपाबाई, मुंबई।

३—श्रीमान् सेठ ताराचन्दजी गेलड़ा की धर्मपत्नी श्रीमती रामसुखीबाई, मद्रास।

४—श्रीमान् दीपचन्दजी खेमसरा की धर्मपत्नी श्रीमती भीखीबाई, मद्रास।

५—श्रीमान् सेठ वरदभाणजी पितलिया की धर्मपत्नी श्रीमती आणन्द कुंवर बाई रतलाम।

६—श्रीमान् सेठ हीरालालजी की माता श्रीमती तेजकुंवरबाई, खाचरोद।

७—श्रीमान् सेठ नथमलजी पितलिया की धर्मपत्नी श्रीमती प्रतापकुंवरबाई, रतलाम।

इन प्रत्येक बाईयों ने एक २ हज़ार प्रति की आधी लागत देने की उदारता दिखलाई, किन्तु पुस्तकें पाँच हज़ार ही हैं अतः इस पुस्तक का गुजराती में अनुवाद कराके दो हजार प्रति गुजराती में निकालने की तजवीज चल रही है। इन श्राविकाओं की उदारता के लिये धन्यवाद देते हुवे समाज के अन्य धनीमानी उदार गृहस्थों को उनका अनुकरण करके ज्ञान प्रचार के शुभ कार्य में अपना हाथ बढ़ाने की विनती करते हैं।

श्री मज्जैनाचार्य पूज्य महाराज साहब के प्रवचन साधुता को लक्ष्य में रख कर ही सापेक्ष होते हैं, किन्तु संग्राहक सम्पादक आदि से कोई त्रुटी रह गई हो या भाव उलट गए हों तो इसकी जिम्मेवारी पूज्य श्री की नहीं, पाठक को जो सन्देह हो पूज्य श्री से या मंडल से खुलासा करले। शुभम्

भवदीय

रतलाम
आश्विन शुक्ला १
सं- १९९२

बालचन्द श्रीश्रीमाल — सेक्रेटरी
बर्द्धभान पीतलिया — प्रेसिडेन्ट

प्रकरण सूची

सती-शिरोमणि

वसुमति

अपरनाम

सती चन्दनबाला ।

कथारम्भ ।

—०※०—

इसी भारतवर्ष के अङ्गदेश* में, चम्पापुरी नाम की एक नगरी थी। वह नगरी, अत्यन्त रमणीय थी। महल, बाजार, उपवन, जलाशय आदि की रचना से, चम्पापुरी बहुत ही शोभायमान थी। नगरी में, व्यापार भी बहुत होता था; इस कारण अनेक देश के व्यापारी, चम्पापुरी में बने ही रहते थे। चम्पापुरी के आस पास का प्रदेश भी, बहुत उपजाऊ था, इसलिए उसके समीप चारों ओर, अनेक ग्राम बसे हुए थे; जहाँ के निवासी कृषि और गोपालन करते थे। ग्रामों के साथ चम्पापुरी का वैसा ही अच्छा सम्बन्ध था, जैसा सम्बन्ध नगर और ग्राम का होना चाहिए; तथा जिस सम्बन्ध के होने

* विहारान्तर्गत भागलपुर के आसपास का प्रदेश, अंगदेश कहलाता था। प्रसिद्ध दानी कर्ण, इसी देश का राजा था और प्राचीन चम्पापुरी, (जो अब चम्पारन के नाम से प्रसिद्ध है, तथा जहाँ से शक्कर आती है) अंगदेश की राजधानी थी।

पर, दोनो जगह के निवासियो का जीवन, सुखपूर्वक बीत सकता है। चम्पापुरी के नागरिक, ग्रामों के प्रति अपने अपने उत्तर-दायित्व को भली भांति समझते थे। वे जानते थे, कि हमारा जीवन ग्रामों के आधार पर ही है। इससे वे, ग्रामोन्नति में सदैव तत्पर रहते थे; इस कारण नागरिकों और ग्रामीणों दोनों हीका जीवन सुखपूर्वक बीतता था। भगवान महावीर के समय मे, राजगृह, कौशम्बी, विशाला और चम्पापुरी, आदि बहुत प्रसिद्ध नगरियां थीं। इन शहरो में, भगवान ने अनेक चातु-र्मास विताये थे।

चम्पापुरी, अङ्गदेश की राजधानी थी। अंगदेश का राजा दधिवाहन, चम्पापुरी में ही रहता था। दधिवाहन, राजाओ के योग्य गुणो से विभूषित था। वह प्रजाप्रिय नरेश था। प्रजा का पालन, वह, उसी रीति से करता था, जिस रीति से, पुत्र का पालन पिता और शरीर का पालन मुख करता है। प्रजा, दधिवाहन के शासन से सुरक्षित और प्रसन्न थी। जिस प्रकार आजकल, राजा प्रजा में विरोध रहा करता है—प्रजा के लिए राजा, अर्थशोषक एवं दुःखदायी बन रहे है, और राजा से प्रजा अपना पल्ला छुड़ाने के लिए प्रयत्न करती है—इस प्रकार का कोई विरोध, दधिवाहन और उसकी प्रजा में न था। प्रजा, सब तरह समृद्ध और राज भक्त थी। सब लोग, प्रसन्नतापूर्वक

दधिवाहन की कुशल मनाया करते थे। दधिवाहन भी, प्रजाहित के कार्यों में, सदा दत्तचित्त रहता था। वह, स्वयं तो कष्ट भोग लेता था, परन्तु प्रजा को कष्ट न हो, इसके लिये अधिक से अधिक प्रयत्नशील रहता था। उसका शासनकौशल्य, शासक शासित का भेद उत्पन्न ही न होने देता था। प्रजा अपनी रक्षा के लिए, दधिवाहन का होना आवश्यक समझती थी और कहती थी, कि जिस दिन यह नरेश न होगा, उस दिन हमारी सुख-समृद्धि का भी अन्त हो जावेगा।

राजा दधिवाहन, बहुत ही सादगी पसन्द था। अपने सुख के लिए वह, भूल कर भी प्रजा का धन व्यय न करता था। उसकी सादगी इस सीमा तक बढ़ी हुई थी, कि वह, कर द्वारा प्रजा से प्राप्त कोष का धन, अपने पास धरोहर समझता था और प्रजा की सम्मति के विना, स्वयं को उसमें से व्यय करने का अधिकारी नहीं मानता था। उसकी इस न्यायनिष्ठा और सादगी के कारण, चम्पापुरी के राजकोष में, अत्यधिक द्रव्य संचित था।

राजा दधिवाहन के* धारिणी नाम की एक रानी थी। दधिवाहन की तरह धारिणी भी, सद्गुण-धारिणी थी। एक

---

*इतिहास से पता चलता है कि चम्पापति-महाराजा दधिवाहन के तीन रानियां थीं। यथा-अभया, पद्मावती और धारिणी परन्तु

राजरानी में जितने उत्तम गुण होने चाहिएँ, धारिणी में वे सब विद्यमान थे। वह, पति परायणा थी। पति-सेवा में सदा तल्लीन रहती थी और इसे अपना परम कर्त्तव्य मानती थी। गृह कार्य द्वारा पति-सेवा से निवृत्त होकर वह, राजकार्य्य में भी पति की सहायता किया करती थी। साथ ही, पति को इस बात के लिए सदा सावधान करती रहती थी, कि प्रजा अपनी सन्तान है; अल्प बुद्धि वाली (प्रजा-रूपा) सन्तान को दुःख से बचाना— उसके अधिकारों की रक्षा करना और उसके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करना, अपना कर्त्तव्य है। अपन, विषय भोग में पड़ कर इस कर्त्तव्य से पतित न हो जावें; अन्यथा अपने लिए, घोर नरक तैयार है। अपने को जो अधिकार प्राप्त हैं, उसे अपने पर भार समझ कर, बहुत सावधानी से वहन करना चाहिए। ऐसा न हो, कि 'अधिकार' के विषय मे किसी कवि की यह उक्ति, अपने लिए चरितार्थ हो जावे कि—

अधिकार पदं प्राप्य नोपकारं करोति यः ।
अकारो लोपमात्रेण ककारद्वित्वतांव्रजेत् ॥

अर्थात्—'अधिकार' का पद पाकर भी उपकार न करने पर 'अधिकार' शब्द का 'अ' लुप्त होकर, 'क' द्वित्वता को प्राप्त होता है और फिर

जिस समय का यह वर्णन है उस समय केवल एक ही रानी धारिणी थी अभया मारी गई थी और पद्मावती दीक्षा ले चुकी थी।

'अधिकार' पद 'धिक्कार' हो जाता है। यानी सब ओर से धिक्कार ही मिलता है।

धारिणी, अपने पति से इसी प्रकार कहा करती थी और स्वयं का व्यवहार भी, इस कथन के अनुसार ही रखती थी। यद्यपि वह वहुत सुन्दरी थी, उसकी सुन्दरता की जितनी भी प्रशंसा कीजावे, कम है; फिर भी वह, सब गृहकार्य स्वयं ही करती थी और अपने को, पति की दासीही समझा करती थी। अहंकार, अभिमान, आलस्य और आमोद प्रमोद से वह, सदा बची रहती थी। धैर्य, साहस, तथा गाम्भीर्यकी तो वह, प्रतिमा ही थी।

संसार-व्यवहार में रहने वाले स्त्री-पुरुषों में से, ऐसे स्त्री-पुरुष शायद ही निकले, जो सन्तान की चाह न रखते हो। प्रत्येक गृहस्थ, सन्तान का अभिलाषी रहता है। हाँ, जिनका नैतिक पतन है, जो कर्त्तव्यच्युत हैं, वे लोग चाहे सन्तति-निरोध का कृत्रिम उपाय करते हो, अन्यथा, ब्रह्मचर्य न पालनेवाले नीतिमान् गृहस्थ, ऐसा उपाय कदापि नहीं करते, जिससे सन्तति-निरोध हो। उनके हृदय में यही भावना रहती है, कि हमारे सन्तान हो और हम उस पर, प्रेम, तथा करुणा की वृष्टि करें। किसी नीतिमान् गृहस्थ के, सन्तति वढ़ भी जाती है, तब भी वह, सन्तति-निरोध के लिए कृत्रिम उपायों का अवलम्बन नहीं लेता,

किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करके ही सन्तति-निरोध करता है। इस प्रकार, संसार-व्यवहार में रहने वाले प्रायः सभी स्त्री-पुरुष सन्तान की चाह रखते हैं, लेकिन आज कल, कन्या और पुत्र के भेद के कारण, सन्तान-प्रेम में भेद अवश्य देखा सुना जाता है। बहुत से माता-पिता, पुत्र से तो अधिक प्रेम करते हैं, परन्तु कन्या से वैसा प्रेम नहीं करते। बल्कि कई माता-पिता कन्या से द्वेष करते हैं; उसका जन्मना बुरा समझते हैं, उसे अनचाही दृष्टि से देखते हैं और कई माता-पिता तो अपनी कन्या को मार भी डालते हैं। राजपूतों के विषय में, अब तक भी यह प्रसिद्ध है, कि कई राजपूतों के यहाँ, लड़की को जन्मते ही मार डाला जाता है। इस प्रकार पुत्र से कन्या को न्यून समझना, पुत्र के जन्मने पर सुख और कन्या के जन्मने पर दुःख मानना, कन्या को द्वेष भरी दृष्टि से देखना, तथा उसकी हत्या कर डालना, घोर अन्याय है। लोगों ने, अज्ञान वश कन्या और पुत्र में इस प्रकार का भेद कर रखा है, परन्तु भली प्रकार विचारा जावे, तो पुत्र और कन्या-दोनों ही सन्तान हैं, अतः माता-पिता के लिए, दोनों ही समान हैं। कन्या को न्यून और पुत्र को अधिक मानने का, कोई कारण नहीं है। संसार-व्यवहार को, अकेला पुत्र भी नहीं चला सकता, न अकेली कन्या ही चला सकती है। दोनों के मिलने पर ही, संसार-व्यवहार चलता है। लौकिक और लोकोत्तर—दोनों ही

प्रकार के—कार्य करने का अधिकार, पुत्र को भी है और कन्या को भी। छोटा और बड़ा ऐसा कोई कार्य नही है, जिसे दोनों समान रूप से न कर सकते हों। ऐसा होते हुए भी, लोग, कन्या और पुत्र से प्रेम करने में भेद क्यो करते हैं? इसका कारण अज्ञान के सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता। ऐसा करने वाले लोग, वास्तव मे कन्या का महत्व नहीं जानते। उनको जैसे यह मालूम ही नहीं है, कि हम लोगों को जन्म देने वाली माता भी कन्या ही थी। यदि कन्या न होती, तो हम भी नहीं हो सकते थे; हम कन्या का अपमान करके, अपनी माता का और स्वयं अपना ही अपमान कर रहे हैं; आदि बातें जैसे वे लोग समझते ही नहीं हैं। जो माताएँ कन्या को नहीं चाहतीं—कन्या का न जन्मना, या जन्मी हुई का मर जाना मनाती हैं—उनमें, सन्तान के प्रति रहने वाली स्वाभाविक दया की कमी है! वे, अपनी जाति का पक्ष भी भूल रही हैं। उनको यह नहीं मालूम है, कि सन्तान के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है। यदि ऐसी माताओं की तरह संसार की सभी माताएँ कन्या से द्वेष करती होतीं, तो संसार में एक भी महापुरुष का जन्म नहीं हो सकता था। जब उन महापुरुष की माताएँ ही न होतीं, तब उनका जन्म कैसे हो सकता था!

सांसारिक लोगो के स्वभावानुसार, महाराजा दधिवाहन और

महारानी धारिणी को भी सन्तान की चाह अवश्य थी, लेकिन और लोगों की तरह उनके हृदय मे, पुत्र-पुत्री में भेद मान कर, केवल पुत्र की ही चाह न थी, किन्तु सन्तान के नाते वे, पुत्र और पुत्री दोनों को समान समझते थे। कुछ ही दिनों में, उनकी सन्तान-विषयक कामना पूर्ण हुई। उनके यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ। कन्या भी महान् सुन्दरी थी। उसकी आकृति, उसके पूर्व-सुकृत का परिचय देती थी।

अच्छी, सुन्दर और पुण्यवान सन्तान तो सब माता-पिता चाहते है, लेकिन यह नहीं देखते, कि ऐसी सन्तान किस प्रकार और किसके यहाँ हो सकती है। जो वृक्ष जैसा होता है, उसमें वैसा ही फल लगता है। नीम के वृक्ष से, आम नहीं लग सकते और जो आम का वृक्ष है, उसमें नीम का फल नहीं लग सकता। इसी प्रकार जो माता-पिता पुण्यहीन हैं—बुरे हैं—उनके यहाँ, पुण्यवान और अच्छी सन्तान कहाँ से होगी! और जो माता-पिता पुण्यवान है, उनके यहाँ, पुण्यहीन तथा बुरी सन्तान क्यों होगी! धारिणी और दधिवाहन पुण्यवान थे, इसलिए उनके यहाँ कन्या भी पुण्यवान ही हुई।

कन्या के जन्मने से, माता-पिता को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने, कन्या के जन्मने पर भी उसी प्रकार का उत्सव किया, जिस प्रकार का उत्सव पुत्र के जन्मने पर किया जाता है। माता-

पिता ने, उस कन्या का नाम 'वसुमति' रखा। वसुमति, अठारह देश की धाइयों की संरक्षा मे वृद्धि पाने लगी। उसे देख देख कर, धारिणी यह भावना करने लगी, कि मैं इस कन्या को ऐसी शिक्षा देना दिलाना चाहती हूँ, और ऐसे साँचे में ढालना चाहती हूँ, कि जिसमें इसके द्वारा मानव-समाज का कुछ हित हो, यह मानव-समाज के सामने कोई उच्च आदर्श रख सके और स्वयं भी, अपना कल्याण कर सके। इस भावना की प्रेरणा से धारिणी, वसुमति को—यही लक्ष्य सामने रख कर—शिक्षा देने दिलाने लगी। उसने, नम्रता, सरलता और निरभिमानता, वसुमति की रग-रग में भर दी। वसुमति को कला की भी ऐसी शिक्षा मिली, कि जैसे वह कला की प्रतिमा ही हो। जब वह वीणा लेकर गाने लगती, तब जैसे राग-रागिनी स्वयं ही अपना रूप दिखा रहे हो, ऐसा ज्ञात होने लगता। उसका कर्ण-मधुर स्वर, श्रोता को बरबश अपनी ओर खींच लेता था। पढ़ने-लिखने, सीने-पिरोने, भोजन बनाने, गृह सँवारने आदि मे वह, पूर्ण निपुण हो गई। वह जब भाषण देने लगती, तब सभा के लोग, चित्र लिखित से हो जाते थे। उसका स्वभाव भी, सर्व-प्रिय था। सखियो और गृहजनो को वह, बहुत प्रिय थी। जो भी उससे एक बार मिलता, वह पुनः पुनः मिलने की इच्छा रखता। सभी लोग, उसकी प्रशंसा करते। इस प्रकार वसुमति, अपने गुणो के कारण

सब को प्रिय थी। यद्यपि वसुमति में, प्रकृति दत्त सौन्दर्य, और कन्योचित सब गुण विद्यमान थे, फिर भी वह स्वयं में, किसी प्रकार की विशेषता नहीं मानती थी। वह यही समझती थी, कि यह सौन्दर्य और ये गुण, मेरे नहीं हैं। ऐसा समझने के कारण, उसे कभी अभिमान नहीं होता था। उसकी निरभिमानता और सरलता, उसे सर्व प्रिय बनाने में सहायता करती थी। उसकी सखियाँ, उसे देख कर यही कहती थीं, कि यह मानवी रूप में कोई शक्ति है। धारिणी भी, वसुमति को देख-देख कर प्रसन्न होती थी और उसे, साहस तथा धैर्य देती हुई, यह विचारा करती थी, कि इसके द्वारा कब कोई अलौकिक कार्य हो, तथा मेरा मातृ-पद सफल हो।

सब को सुख देती हुई वसुमति, बड़ी हुई। उसके सुन्दर कोमल शरीर पर, तरुणाई के चिन्ह प्रकट होने लगे। उसका रूप सौन्दर्य, युवावस्था की सहायता पाकर विकसित होने लगा। इस प्रकार वह, विवाह योग्य हो गई। उसकी सखी सहेलियाँ आपस में उसके विवाह की बातें और इस विषय में अनेक प्रकार की भावनाएँ तथा कल्पनाएँ करने लगीं, लेकिन वसुमति के हृदय मे, विवाह-विषयक कभी कोई विचार नहीं होता था। वह तो, एक शुद्ध-हृदय बालिका की तरह सदैव प्रसन्न ही रहती थी, इस ओर ध्यान भी नहीं देती थी।

विवाह या ब्रह्मचर्य ?

संसार में, पुत्र या कन्या को सुखी बनाने का उपाय, उनका विवाह कर देना ही माना जाता है। माता-पिता मित्र और सम्बन्धी, पुत्र या पुत्री का विवाह कर देना, अपना अन्तिम और आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं। वे समझते हैं, कि विवाह कर देने से ही जीवन सुखी हो सकता है। इसलिए वे, सदा इसी प्रयत्न मे रहते हैं कि हमारे पुत्र या पुत्री अथवा सखा या सहेली का विवाह, किसी योग्य कन्या वा वर के साथ हो। वे, इसी के लिए चिन्तित भी रहते हैं और यही शुभ कामना भी किया करते हैं।

वसुमति की सखियाँ भी, वसुमति के विषय में यही शुभ-कामना किया करती थी, कि हमारी इस सखी का विवाह, किसी योग्य पुरुष के साथ हो। उनकी भावना भी यही रहा करती थी, इसलिए एक दिन वे, विनोदार्थ वसुमति से कहने लगी, कि—बहन वसुमति, अब हमारा तुम्हारा साथ कुछ ही दिनों का है।

थोड़े ही दिनों में, तुम्हारे लिए सब नया ही बनाव होगा। तुम, किसी राजा की महारानी बनोगी तब, नया महल होगा, नया उपवन होगा, नया साज-शृङ्गार होगा, नया सखा होगा और सहेलियाँ भी नई होगी। हम सब को तो, यहीं छोड़ जाओगी। फिर तो, हमारी याद भी न आवेगी और हम, आपकी प्रिय मधुर वाणी, तथा आपके द्वारा किया गया श्रवणामृत वीणानाद सुनने से और आपके साथ रहने के आनन्द से, वंचित रह जावेंगी इस प्रकार हमारी हानि ही होगी, फिर भी हम उस शुभ दिन की प्रतीक्षा करती हैं, जब आपका पाणिग्रहण—आपके अनुरूप किसी राजा या राजकुमार के साथ हो और आप, चन्द्र के साथ रोहिणी, तथा वृक्ष के साथ लता की तरह अपने पति के साथ शोभा पावे। हम, सदा यही शुभकामना करती हैं, कि हमारी सखी को ऐसा योग्य पति प्राप्त हो, जो गुण और सौन्दर्य का परीक्षक, तथा आपका आदर करनेवाला हो। हमारे सद्भाग्य से, ऐसा अवसर शीघ्र ही आवेगा।

सखियों की बातें सुन कर, वसुमति, न प्रसन्न हुई, न दुःखी। उसने, स्वाभाविक सरलता-पूर्वक सखियो को उत्तर दिया—प्यारी सखियो, क्या तुम लोग यह चाहती हो, कि मैं, विशाल प्रेम-सम्बन्ध को संकुचित बना डालूँ; सब की रहने के बदले, एक की हो जाऊँ तथा सब को अपना मानने के बदले, एक को ही अपना

मानूँ? अब तक जिनसे प्रेम है, उनसे प्रेम तोड़ कर, एक ही से प्रेम करूँ? सखियों, मुझ से तो, ऐसा कदापि न होगा। मैं, एक से प्रेम-सम्बन्ध तोड़ कर, दूसरे से जोड़ने की भावना नहीं रखती, किन्तु यह भावना रखती हूँ, कि जिनसे मैंने प्रेम-सम्बन्ध जोड़ा है, उनसे तो यावज्जीवन प्रेम-सम्बन्ध बना ही रहे, साथ ही और नूतन प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करूँ। आप लोग, इस ओर से निश्चिन्त रहिये। मेरा और आप लोगों का प्रेम, प्राणों से सम्बन्ध रखता है, अतः जब तक प्राण हैं, तबतक तो यह सम्बन्ध इसी तरह रहेगा; हाँ, वृद्धि चाहे पावे। कम होने की तो, आशंका ही नहीं है।

वसुमति का उत्तर सुन कर, उसकी सखियाँ आश्चर्य करने लगीं। वे सोचने लगीं, कि—वसुमति यह क्या कह रही है! इसके स्वभाव को देखते हुए, यह जो कुछ कह रही है, उसे पूर्ण कर दिखावे, तो इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं है! यह हमारी सखी, राजकुमारी होती हुई भी कैसी सरल और विनम्र है! दूसरी राजकुमारी तो, स्वभावतः अभिमानिनी होती हैं और युवावस्था में पहुँचने पर तो, उनकी दशा कुछ दूसरी ही हो जाती है, लेकिन यह हमारी सखी, ऐसी नहीं है! यह बहुत ही सरल, पवित्र-हृदय और निरभिमानिनी है। जिसका जन्म महारानी धारिणी से हुआ है, वह कन्या, ऐसी ही होनी चाहिए।

इस प्रकार विचारती हुई वसुमति की सखियाँ, वसुमति से कहने लगीं—सखी, आपने जो कुछ कहा है, उसकी यथार्थता का पता तो समय पर ही लगेगा, परन्तु आपने कहा है, कि—'मैं, विशाल प्रेम-सम्बन्ध को संकुचित नहीं करना चाहती' इसलिए हम पूछती हैं, कि क्या आप अपना विवाह न करेंगी ? अविवाहिता ही रहेंगी ?

वसुमति—मैं, क्या करूँगी और क्या नहीं करूँगी, यह बात आज तो नहीं कह सकती, लेकिन यह अवश्य कहती हूँ, कि मैं, विशाल प्रेम-सम्बन्ध को संकुचित बनाने की इच्छा नहीं रखती।

वसुमति की सखियाँ, वसुमति की प्रशन्सा करने लगीं। वे, कहने लगीं कि—आपके इस विचार की तो हम प्रशन्सा करती हैं, परन्तु यह संसार है, अतः इसमे, एक से प्रेम-सम्बन्ध तोड़ कर, दूसरे से जोड़ना ही पड़ता है। ऐसा किये विना, काम ही नहीं चल सकता।

सखियों के इस कथन के उत्तर में, वसुमति ने कहा, कि—यह तो समय पर ही मालूम हो सकेगा। अवसर आने पर ही, यह बताया जा सकता है, कि एक से प्रेम तोड़ने और फिर दूसरे से प्रेम जोड़ने की आवश्यकता नहीं है।

वसुमति और उसकी सखियों मे, इस प्रकार की बातें हुई। वसुमति की सखियो ने, प्रसंगवश, वसुमति के विचार धारिणी

को सुनाये। वसुमति के विचार सुन कर, धारिणी बहुत प्रसन्न हुई। वह, अपने मन में कहने लगी, कि—जिस पुत्री के ऐसे उदार विचार हैं, उसकी माता 'मै' धन्य हूँ। मैं विचार ही रही थी, कि मेरी पुत्री के द्वारा, मानव-समाज का कुछ हित हो और वह, मानव-समाज के सामने नूतन तथा उच्च आदर्श रख सके। जान पड़ता है, कि मेरी यह भावना पूर्ण होगी। आजकल संसार में, स्त्री-पुरुष विषयक उलझनें बहुत बढ़ रही हैं। यद्यपि स्त्री-पुरुष का सहयोग-सम्बन्ध, सांसारिक-जीवन सुख-पूर्वक विताने के लिए होता है, लेकिन आजकल जैसे यह उद्देश्य विस्मृत कर दिया गया है और सांसारिक-जीवन, सुख-पूर्वक विताने के बदले, उलझनदार बना लिया गया है। वसुमति के विचारों से जान पड़ता है, कि वह, इस प्रकार की उलझनो को मिटावेगी। लेकिन क्या पता है, कि वह, कैसे पुरुष के साथ विवाही जावेगी, और उसको स्वयं की भावना, कार्य रूप में परिणत करने का अवसर भी मिलेगा, या नहीं! कोई ऐसा मार्ग हो तो अच्छा है, जिससे वसुमति की भावना भी कार्यान्वित हो, उसका जीवन भी सुख-पूर्वक बीते और मेरा माता बनना भी सफल हो।

रात के समय महाराजा दधिवाहन, धारिणी के महल में आये। उस समय तक धारिणी, वसुमतिके ही विषय में अनेक प्रकार के विचार कर रही थी। दधिवाहन के आने पर धारिणी

ने, उनके सामने यही प्रसंग छेड़ा। वह, दधिवाहन से कहने लगी—प्रभो, वसुमति अब सयानी हुई है। मेरा अनुमान है, उसके विषय मे आप, कुछ विचार करते ही होंगे।

दधिवाहन—हाँ, वसुमति अवश्य ही सयानी हुई है। वह, अवस्था मे ही सयानी नहीं हुई है, किन्तु गुणकला में भी बढ़ कर है। वसुमति में, तुमने अपनी समस्त कला भर दी है, जो उसमे और वृद्धिंगत हुई है। गुणो की दृष्टि से तो वह, तुम से भी बढ़ कर है। उसका स्वभाव भी, बहुत अच्छा है। वसुमति ऐसी सुपुत्री की माता होने के कारण, तुम भी धन्य मानी जाती हो और तुम्हारे साथ मैं भी।

धारिणी—महाराज, क्षमा कीजिये, निष्कारण मेरी प्रशन्सा करके मुझ पर भार मत चढ़ाइये। वसुमति में जो भी विशेषता है, वह आप ही के प्रताप से। मैं तो, आपकी सेविका हूँ। आप से मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ; वह यदि मैंने वसुमति को दिया, तो इसमे मेरी कोई प्रशन्सा नही है। ऐसा होते हुए भी आप मेरी प्रशन्सा कर रहे है, यह आपकी और भी विशेषता है। सज्जनों का स्वभाव ही होता है, कि वे, बड़ाई के कार्य करके, यश के समय, स्वयं पीछे हट जाते हैं और उसका श्रेय दूसरे को देते है। अस्तु। इस समय, यह विवाद नहीं करना है, कि वसु-मति की विशेषता का श्रेय किसे मिलना चाहिए, किन्तु इस

समय, तो यह विचार करना है, कि वसुमति को सुखी कैसे बनाया जावे। इस विषय में, आप विचार कर ही रहे होंगे, तथापि मैं भी आपसे कुछ निवेदन कर देना उचित समझती हूँ; जिसमें आप, मेरी प्रार्थना भी दृष्टि में रख सकें।

दधिवाहन—हाँ हाँ, अवश्य कहो। वसुमति के विषय में जो अधिकार मुझे प्राप्त है, वही तुम्हे भी है। बल्कि, पुत्री पर, पिता की अपेक्षा माता का अधिकार कुछ बढ़ कर होता है; इस कारण, पुत्री को सुखी बनाने की चिन्ता भी, माता को अधिक होनी चाहिए।

धारिणी—स्वामी, आपके होते हुए, वसुमति के विषय में, मुझे किसी प्रकार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं है; मैं तो केवल यह विचार कर निवेदन करना चाहती हूँ, कि कहीं आप एक ही पक्ष पर विचार न कर डालें और वसुमति को सुखी बनाने की भावना होने पर भी, उसे दुःखी बनाने का काम न हो जावे। 'स्त्री' होने के कारण मुझे जो अनुभव हुआ है, उस अनुभव का लाभ वसुमति को मिले, यही मेरी भावना है।

दधिवाहन—तुम्हें यह विचार रहना ही चाहिये। वसुमति के विषय में, किस बात को विशेष रूप से ध्यान में रखने की आवश्यकता है और तुम क्या कहना चाहती हो, कहो।

धारिणी—आजकल संसार में, कन्या को सुखी बनाने का

उपाय, उसका विवाह कर देना और उसे किसी पुरुष की पत्नी बना देना, माना जाता है। इसके अनुसार, मैं भी सोचती हूँ, कि वसुमति का विवाह कर दूं और उसके सिर पर पति बना दूं, लेकिन दूसरी ओर जब पुरुषों के स्वभाव पर ध्यान देती हूँ, तब ऐसा करने से हिचकिचाहट होती है। आजकल, अधिकांश पुरुषों की दृष्टि मे, स्त्रियाँ, तुच्छ और पतित हैं। वे, स्त्रियों को, केवल अपनी काम पिपासा शान्त करने का एक साधन मात्र मानते हैं, उनकी दृष्टि में स्त्रियो का, इससे अधिक कोई महत्व नहीं है। कई पुरुष, स्त्रियो को, अपने पाँव के जूते के समान मान कर, उनकी अवहेलना करते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं और उनके साथ अमानुषिक—पशुतापूर्ण—व्यवहार करते है। उसमें भी, साधारण पुरुषो की अपेक्षा, राज परिवार के पुरुषों का, स्त्रियो के प्रति दुर्व्यवहार और भी ज्यादा बढ़ा हुआ है। इस दोष के साथ ही उनमे, बहु विवाह, मद्यपान, मृगया, नाटक आदि दोष भी है। कई राजपुरुष, नवीन विवाह होने पर, पहले की स्त्री से बोलते तक नहीं। यद्यपि मुझे, यह चिन्ता नहीं है, कि पुरुषों की इन आदतो के कारण वसुमति को कष्ट होगा—क्योंकि, वसुमति अपने मार्ग को, अपने सद्गुणों द्वारा सरल बना सकती है—फिर भी उसमें जो संस्कार डाले गये है, उनका विकास होने के लिए, उसे, उपयुक्त क्षेत्र भी चाहिए और वैसा ही सहायक भी

चाहिए। मैंने वसुमति के जो विचार सुने हैं, तथा जैसी मेरी भावना है, उसके अनुसार वसुमति के द्वारा, मानव-समाज के सन्मुख, एक नवीन आदर्श की सृष्टि होनी चाहिए, लेकिन यह तभी सम्भव है, जब वसुमति को पति भी ऐसा ही मिले। ऐसा पति न मिलने पर, दाम्पत्य-जीवन भी सुखपूर्वक न बीतेगा और मेरी तथा वसुमति की भावना भी कार्यान्वित न होगी। मैंने, वसुमति को जन्म दिया है, उसका पालन-पोषण किया है, कला सिखाई है और उसमें अच्छे संस्कार डाले हैं। अब मैं उसका विवाह किसी पुरुष के साथ करूँ, उस पुरुष को, वसुमति के साथ ही धन-संपत्ति भी दूँ, वसुमति, उस पुरुष की दासी बन कर भी रहे और फिर भी यदि वह पुरुष वसुमति की सेवा न ले, वसुमति के साथ नीचता पूर्ण तथा अमानुषिक व्यवहार करे, तो उस समय वसुमति को कैसा दुःख होगा, तथा मुझे—और आपको भी—कितना खेद एवं पश्चात्ताप रहेगा! इतना ही नहीं, ऐसी दशा में, वसुमति की और मेरी भावना भी अपूर्ण रहेंगी। इन सब बातों को दृष्टि में रख कर ही, मेरी यह प्रार्थना है, कि वसुमति को सुखी बनाने के लिए, केवल एक ही पक्ष का विचार न किया जावे, किन्तु इन सब बातों को भी दृष्टि में रखा जावे। आजकल, कन्या का विवाह करने में, विशेषतः घर वर ही देखते हैं। यद्यपि घर वर देखने में, इन मेरी कही हुई बातों को देखना भी आ जाता है, लेकिन आजकल,

कठिनाई के भय से, इन बातों को देखा भी नहीं जाता। केवल, धन धान्य पूरित घर देख लिया जाता है और सुन्दर युवक वर देख लिया जाता है। फिर चाहे उस घर-वर से, कन्या को कैसा भी कष्ट क्यों न हो। वसुमति के लिए भी ऐसा ही न हो, यही मेरी प्रार्थना है।

धारिणी की बात के उत्तर में, दधिवाहन बोले—प्रिये, मेरी दृष्टि में, वसुमति, अप्रतिम कन्या है। ऐसी सुन्दरी तथा गुणवती कन्या, और कहीं न तो मैंने देखी ही है, न सुनी ही है। राजाओं के यहाँ भ्रमण करने वाले लोग भी, वसुमति की प्रशन्सा करते और कहते हैं, कि इस समय, वसुमति की समता करने वाली, दूसरी कोई राजकन्या नहीं है। मैं, वसुमति के लिए वर भी ऐसा ही खोज रहा हूँ, जो सब प्रकार से योग्य हो। रही पुरुषों की उद्दण्डता की बात; लेकिन यह कहना ठीक नहीं है, कि सभी पुरुष ऐसे उद्दण्ड हैं। योग्य और पति-कर्त्तव्य को जाननेवाला पुरुष है ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। संसार में, कन्या और पुरुष—दोनो ही योग्य भी होते हैं और अयोग्य भी। विवाह-समय की गई प्रतिज्ञा से, अनेक पुरुष भी विमुख होजाते हैं, और अनेक स्त्रियाँ भी, विमुख होजाती हैं। केवल पुरुष ही बुरे हैं, स्त्रियाँ अच्छी ही होती हैं, यह कैसे कहा जा सकता है! मैं, वसुमति के लिए, वर की, योग्यता अयोग्यता की जाँच, भली प्रकार कर लूँगा और

योग्य होने पर ही, किसी के साथ वसुमति का विवाह करना, तय करूँगा। योग्यता का विश्वास किये विना, मैं किसी पुरुष के साथ वसुमति का विवाह कदापि नही कर सकता। यह वात दूसरी है कि मेरी परीक्षा के समय तो वह पुरुष योग्य ठहरे और विवाह के पश्चात् अयोग्य हो जावे, लेकिन इस प्रकार की भावी घटना को जानने, या रोकने का, न तो कोई उपाय ही है और न अभी, इस प्रकार की चिंता, या ऐसे संदेह को स्थान देना ही ठीक है। इसके सिवा, अपने को वसुमति की योग्यता देखकर यह विश्वास रखना चाहिए, कि वसुमति के संसर्ग मे आया हुआ योग्य पुरुष, फिर अयोग्य न वनेगा। वसुमति अपने गुणो से, अयोग्य को भी योग्य वना सकती है, तो जो योग्य होगा, उसे अयोग्य न बनने देना क्या कठिन है ! इस पर भी, यदि वसुमति का पति अयोग्य हो जावे, तो इसे वसुमति की ही कमी माननी होगी। अच्छी स्त्री, अपने पतित से पतित पति को भी श्रेष्ठ वना लेती है। इसके अनेको उदाहरण भी हैं। अनेक स्त्रियों ने, अपने दुराचारी और अयोग्य पति को, सदाचारी और योग्य वनाकर, उच्चता को प्राप्त कराया है। उन्होंने, स्वयं के धर्म की तो रक्षा की ही, साथ ही, पति को भी धर्म पर आरूढ़ किया। जो स्त्री, ऐसा नहीं कर सकती, उसमें, सद्गुणों की न्यूनता समझनी चाहिये और इसका दोष, उसकी माता पर भी हो सकता है; जिसने अपनी पुत्री को

पूर्ण रूप से सद्गुणी नहीं बनाया। यदि तुम्हे, वसुमति के सद्-गुणों पर विश्वास है, तो फिर उसके विषय में इस प्रकार की चिन्ता, अनावश्यक है। फिर तो उसका पाला, कैसे भी पति से पड़ जावे, वह, अपने पति को सद्गुणानुकूल ही बना लेगी।

पति के कथन के प्रत्युत्तर में, धारिणी कहने लगी—स्वामिन्, यद्यपि आपका कथन यथार्थ है, स्त्रियाँ, पुरुषों को सुधार भी लेती हैं और वसुमति मे ऐसे गुण हैं भी, लेकिन पुरुष को सुधारना कोई सरल काम नहीं है। ऐसा करने के लिए, स्त्रियों को, अपने सुखों का ही नहीं, अपितु प्राणों तक का बलिदान करना होता है। जिनमे ऐसा करने की क्षमता है, उनके द्वारा ही, पुरुप सुधर सकते हैं। वसुमति भी ऐसा करने में समर्थ है, परन्तु फिर, अपन जिस सुख की आशा से उसका विवाह करना चाहते हैं, उसको उस सुख से वंचित रहना पड़ेगा। फिर तो, एक सुधारक की तरह वसुमति को भी समस्त कष्ट, सहर्ष सहने होंगे। जिस सुख की अभिलाषा से विवाह किया जाता है, वह सुख नहीं मिल सकता। एक बात और है। जब वसुमति में पुरुषो के सुधारने की क्षमता है, तब उसको, विवाह-बन्धन में क्यों बांधा जावे। ब्रह्मचारिणी ही क्यों न रहे! विवाह—बन्धन में बँधने पर तो, वह, एक ही पुरुप को सुधार सकेगी, लेकिन अविवाहिता रह कर तो अनेकों को सुधार सकती है। विवाह

होने पर, उसका सुधार-क्षेत्र संकुचित होगा, परन्तु ब्रह्मचारिणी, रहने पर, उसका सुधार-क्षेत्र भी विशाल होगा। वसुमति ने, अपनी सखियों से जो विचार प्रकट किये हैं, उनसे, उसका विचार, विवाह न करने का ही जान पड़ा है। उसने कहा है, कि मैं एक से प्रेम संवन्ध तोड़ना और दूसरे से जोड़ना, ठीक नहीं समझती; अपितु ऐसा विशाल प्रेम-संवन्ध जोड़ना चाहती हूँ, कि जिसमें फिर टूटने का भय नहीं है। उसका यह कथन, तभी पूरा हो सकता है, जव वह ब्रह्मचारिणी रहे। मेरी भी भावना यही है, कि वसुमति के द्वारा, मानव-समाज का कोई हित हो, मानव-सामज के सन्मुख, कोई उत्कृष्ट आदर्श रखा जावे, और साथ ही वह, स्वयं को भी उच्चता पर पहुँचावे। मेरी यह भावना, तभी पूर्ण हो सकती है, जव वसुमति, विवाह-वन्धन में न बँधे। इन सव वातों को दृष्टि में रख कर, मैं तो यही ठीक समझती हूँ, कि वसुमति को विवाह-वन्धन में न वाँधा जावे, किन्तु ब्रह्मचारिणी ही रहने दी जावे।

दधिवाहन—रानी, तुम्हारा यह कथन ठीक है, कि पुरुषों को सुधारने के लिए, स्त्रियों को कष्ट सहने होते हैं और सुखों का त्याग करना होता है, लेकिन ऐसा किये विना, काम भी तो नहीं चल सकता! एक धर्मपरायण-स्त्री के लिए, अपने पति को सुमार्ग पर लाने के वास्ते; ऐसा करना आवश्यक भी है। जो

स्त्री, विलासप्रिय है, जो पति से केवल भोग-विलास की ही कांक्षिणी है, पति के हित की चिन्ता जिसे नहीं है, वह स्त्री पति को सुधार भी नही सकती और ऐसी विलास-कांक्षिणी को, कष्ट होना स्वाभाविक है। किन्तु जो स्त्री, स्वयं को पति की सह-धर्मिणी मानती है, निरन्तर पति का हित चाहती है और जिसका लक्ष्य, केवल विलास ही नहीं है, वह स्त्री, पति को सुधारने के लिए, कष्ट सहे विना भी नहीं रह सकती। ऐसी स्त्री, अपने सुखो को त्याग देगी और पति को सुखी बनाने में ही प्रयत्नशील रहेगी। तुमने भी तो, मुझे सुमार्ग पर स्थिर रखने के लिए, विलासिता का त्याग किया और अनेक कष्टों को सहर्ष सहा! फिर क्या वसुमति, ऐसा न कर सकेगी! सुख, सुख की आकांक्षा से नहीं मिलता, किन्तु दुःख सहने से ही, सुख मिलता है। पति को सुधारने मे वसुमति को कष्ट होगा, इस भय से, उसे अविवा-हित रखना, कदापि उचित नहीं है।

धारिणी—महाराज, आपने मुझे, मेरा ही उदाहरण देकर निरुत्तर करने का प्रयत्न किया है; लेकिन मैं भी जो कुछ निवेदन कर रही हूँ, उसे भी मैं, अपना ही उदाहरण देकर पुष्ट करना चाहती हूँ। यद्यपि आपने, मेरे लिए जो प्रशन्साभरी बात कही है, उसे मैं अपने पर बोझ रूप समझती हूँ; फिर भी मैं, कुछ देर के लिए आपका कथन ठीक मान कर पूछती हूँ, कि आपको सुमार्ग

पर स्थिर रखने के लिए मैंने जो कष्ट सहे, जो त्याग किया, वही कष्ट-सहन और त्याग यदि मैंने ब्रह्मचर्य-पूर्वक किया होता, विवाह-बन्धन में न पड़ी होती, तो कितने पुरुषों का सुधार कर सकती ? प्रत्येक मनुष्य को, कार्यक्षेत्र में पड़ने पर ही अनुभव होता है इसी के अनुसार, मैंने भी कार्यक्षेत्र में उतर कर जो अनुभव किया है, उस पर से मै, इसी निर्णय पर पहुँची हूँ, कि क्षमता होते हुए ब्रह्मचर्य का पालन न करना—विवाहबन्धन मे पड़ना—अपने सुधार-क्षेत्र को संकुचित बनाना है। मैं, कष्टों के भय से वसुमति को ब्रह्मचारिणी नहीं रखना चाहती, अपितु, अधिकाधिक कष्टो का आह्वान करने और उन्हे सहन करने के लिए ही, उसे, विवाह-बन्धन से बचाना चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ, कि आपकी सेवा करते हुए मुझे जो अनुभव हुआ है, उसका लाभ वसुमति ले और मेरे अनुभवो द्वारा, वह स्वयं को योग्य कार्य में लगा सके। विवाह करने की अपेक्षा, ब्रह्मचर्य का पालन करना बुरा नहीं है किन्तु अच्छा ही है। इसलिए, मेरी तो इच्छा यही है कि वसुमति का विवाह न किया जावे, किन्तु उसे, ब्रह्मचारिणी रखा जावे। ऐसा होने पर ही, वह, पूर्ण सुखी भी बन सकती है, उसके गुणो का विकास भी हो सकता है, तथा मेरी भावना भी पूर्ण हो सकती है।

धारिणी की बात सुनकर, दधिवाहन, आश्चर्यचकित हो गये।

वे कहने लगे—रानी, मैं नहीं जानता था, कि तुम्हारी त्याग भावना ऐसी है! आज तुम्हारे विचार सुन कर, प्रसन्नता भी हुई और आश्चर्य भी। मैं ब्रह्मचर्य को कदापि बुरा नहीं मानता। साथ ही यह भी स्वीकार करता हूँ, कि तुमने एक मेरे को सुधारने के लिए जो कष्ट सहे हैं, वेही कष्ट विवाह-बन्धन में न पड़कर ब्रह्मचर्यपूर्वक, मानवसमाज को सुधारने के लिए-सहे होते तो अवश्य ही अनेक पुरुषों का सुधार कर सकती। जब तुम जैसी राजकन्या, ब्रह्मचारिणी रहकर उपदेश दे, तब अनेक पुरुषों का सुधार हो, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वसुमति भी, ब्रह्मचारिणी रह कर अनेक पुरुषों का सुधार कर सकती है, लेकिन रानी, ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करना, कोई सरल कार्य नहीं है! काम के वेग को दबाना, मस्त हाथी को रोकने से भी कठिन है। प्रारम्भ में कोई आवेश में आकर, ब्रह्मचर्य पालने को तयार भी हो जावे, लेकिन जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करना, बहुत ही कठिन है। अनेक ऐसे लोग भी देखे सुने जाते हैं, जो पहले तो, आवेश में आकर ब्रह्मचर्य पालने लगते हैं, लेकिन आगे चल कर, अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रहते। काम का आवेग न रोक सकने पर, ब्रह्मचर्य से पतित भी हो जाते हैं। वसुमति को भी, ब्रह्मचर्य की उत्कृष्टता का विचार करके, ब्रह्मचारिणी रखा जावे, परन्तु आगे चल कर, यदि वह ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकी, तब उसका स्वयं का पतन तो होगा

हो, साथ ही, अपना कुल वंश भी कलंकित होगा। इसके सिवा, एक बात और है। संसारिक प्रथा के अनुसार, कन्या का विवाह करने की योजना करना, अपना कर्त्तव्य है,—हाँ, विवाह तय करने के समय कन्या से स्वीकृति लेना आवश्यक है—लेकिन कन्या को ब्रह्मचारिणी तो तभी रखा जा सकता है, उसका विवाह, तभी नहीं किया जा सकता, जब कन्या स्वयं ही ऐसी इच्छा प्रकट करे। माता-पिता, न तो कन्या का विवाह ही कर सकते हैं, न उसे ब्रह्मचारिणी ही रख सकते है। ये दोनों ही बातें, कन्या की इच्छा पर निर्भर हैं। कन्या की इच्छा के प्रतिकूल, उसका विवाह करना भी अनुचित है और उसे ब्रह्मचारिणी रखना भी अनुचित है।

धारिणी—आपका यह कथन, उचित है। मैं भी यह नहीं कहती, कि वसुमति को बलात् ब्रह्मचारिणी रखा जावे, लेकिन मैं उसके विचारों को जहां तक जान पाई हूँ, वह स्वयं ही ब्रह्मचारिणी रहना चाहती है, विवाह नहीं करना चाहती।

दधिवाहन—किसी बात का अनुमान करके, उस अनुमान के आधार पर ही काम कर डालना, ठीक नहीं है।

धारिणी—तो यह उचित होगा, कि वसुमति के विवाह की योजना विचारने से पहले, उसकी स्पष्ट सम्मति ले ली जावे और फिर वह जैसा कहे, वैसा किया जावे। यदि वह विवाह करना चाहे, तो योग्य वर देख कर उसका विवाह कर दियाजावे और

ब्रह्मचारिणी रहना चाहे, तो उसका विवाह बलात् न किया जावे।

दधिवाहन—तुम्हारा यह कथन, संगत है। इस विषय में तुम, वसुमति का विचार जान कर मुझ से कहो, जिससे, कोई मार्ग निश्चित किया जा सके।

दधिवाहन और धारिणी की बातचीत का निर्णय, वसुमति के विचारों पर रहा। दोनों की बातचीत बन्द हुई और दोनों, यथास्थान सो गये।

विवाह, ऋण है

क्वचिज्झिल्लीनादः क्वचिदतुलका कोलकलहः
क्वचित्कङ्कारावः क्वचिदपि कपीनां-कलकलः ।
क्वचिद्घोरःफेरुध्वनिरय महो दैवघटना-
स्कथंकारं तारं रसति चकितः कोकिलयुवा ॥

अर्थात्—सुन्दर, वसन्त ऋतु का समय है; आम्रवृक्षों पर मंजरियां खिल रही हैं, जिन पर भौंरे मंडरा रहे हैं और जिनका रस पीकर, कोयल जवान बन गई है। इस ऋतु के होने से, और आम्रमंजरी का रस पिया है इसलिए, कोयल को अवश्य बोलना चाहिए था; फिर भी वह, चुप क्यों है! अरे-अरे, समझ गया, कि कोयल क्यों नहीं बोलती है। वह, एक गंभीर विचार में पड़ी हुई है। वह सोचती है, कि इस समय, मैं कैसे गाऊँ! एक ओर तो झींगुर, अपनी तान से गा रहा है और दूसरी ओर कौए, कर्कश स्वर में काँव-काँव कर रहे हैं! एक ओर कंक पक्षी, कटु शब्द में बोल रहा है, और दूसरी ओर, वृक्ष पर बैठे हुए बन्दर हा-हू कर रहे हैं, वहीं सियार भी रो रहे हैं! इस प्रकार की विषमता देख कर ही कोयल चुप है और अनुकूल ऋतु होने पर भी, नहीं बोलती।

संसार का यह नियम ही है कि एक ओर अच्छाई है, तो दूसरी ओर, बुराई है। कहीं राग-रङ्ग हो रहा है, और कहीं रोना-पीटना हो रहा है। कहीं सज्जन गण, दूसरों को सुख देने के लिए दुःख उठा रहे हैं, और कहीं दुर्जन लोग, पराये अपशकुन के लिए नाक कटाने की तरह के कार्य कर रहे हैं। संसार की यह विषमता, एक विचारक के लिए बड़े विचार का कारण बन जाती है और इसीलिए वे, ऐसा मार्ग निकालते है, जहाँ इस प्रकार के वैषम्य को स्थान नहीं है।

कवि की कल्पनानुसार, जो वैषम्य कोयल के सामने था, वैसा ही वैषम्य, दधिवाहन के यहाँ भी था। एक ओर तो महल में बैठे हुए राजा-रानी, वसुमति का विवाह करने, न करने के विषय में विचार कर रहे थे, और दूसरी ओर अपने महल में बैठी हुई वसुमति, कुछ और ही सोच रही थी। वह विचार रही थी, कि जिस स्त्री जाति में मैं उत्पन्न हुई हूँ, आज उसकी कैसी दुर्दशा है! स्वयं की मूर्खता और—उसके कारण उत्पन्न—पुरुषों के अत्याचार से वे, किस प्रकार पीड़ित हैं! आज पुरुषों के समीप स्त्रियों की गणना, अन्य भोग्य पदार्थों के ही समान है; इससे अधिक, स्त्रियों का कोई महत्व नहीं है। मेरी स्त्री-बहनें भी, एक ही बहाव में बही जा रही हैं! उन्हें अपने पतन और अपनी दुर्दशा का ध्यान नहीं है। यदि स्त्री-जाति में से, एक भी स्त्री,

त्याग और साहस-पूर्वक कार्य करे, तो सारी जाति का उद्धार कर सकती हैं; लेकिन उनका पतन, इस सीमा तक हो चुका है, कि वे, अपनी स्थिति को समझ ही नहीं पाती! ऐसी दशा में, स्वयं के उद्धार का प्रयत्न कैसे कर सकती हैं! हे प्रभो! क्या मैं अपनी ऐसी बहनों की, कुछ सेवा कर सकूँगी! क्या मेरे द्वारा, उनका उद्धार हो सकेगा! और क्या मेरे इस तुच्छ शरीर द्वारा, अपनी दु:खित बहनों का कुछ उपकार होगा!

इस प्रकार विचार करती हुई वसुमति सो गई। प्रातःकाल होते होते उसने, एक विचित्र स्वप्न देखा। स्वप्न देख कर, वह आश्चर्य-पूर्वक जाग उठी और सोचने लगी, कि मैं, इस स्वप्न का क्या अर्थ लगाऊं! इस स्वप्न को, अच्छा कहूँ, या बुरा कहूँ।

वसुमति, असमंजस मे पड़ गई। असमंजस के खेद के कारण उसे, पसीना हो आया। उसने असमंजस मिटाने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न मिली। अन्त में वह, शैया पर से उठ कर, समीप की अशोक-वाटिका मे गई और वहां एक वृक्ष के नीचे बैठ कर गले पर हाथ रख, स्वप्न के विषय मे विचार करने लगी।

प्रात.काल होते ही, वसुमति की सखियाँ, वसुमति को जगाने के लिये, उसके शयनागार में गई। लेकिन वहाँ उन्होंने देखा कि वसुमति की शैया, खाली पड़ी है, वसुमति नही है। यह देख कर उन्हें, बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही चिन्ता भी हुई। वे सोचने-

लगी, कि आज अनायास ही वसुमति कहाँ चली गई! वह, राजकुमारी है और युवती है। कहीं कोई ऐसी दुर्घटना ता नहीं घटी, जिसके कारण, इस निर्मल राजवन्श पर, किसी प्रकार का कलंक लगे! इस प्रकार चिन्ता करती हुई, वे, वसुमति को ढूँढने लगी। ढूँढती-ढूँढती वे, उसी स्थान पर आईं, जहां, गाढ़ विचार में निमग्न वसुमति, बैठी हुई थी। वसुमति को विचारमग्न देख कर, उसकी सखियाँ कहने लगी—राजकुमारी, आज आप अनायास ही शैया से उठ कर, चुपचाप यहां कैसे चली आई? आपने, किसी को सूचित तक नही किया! हम लोग, आपको ढूंढती फिर रही हैं। अच्छा हुआ, कि शयनागार मे आपके न होने की खबर, हमने, महाराजा, महारानी, या और किसी को नही दी, नही तो, कैसा बुरा होता! लोग, क्या कहते! आप राजकुमारी है, युवती हैं, अतः आपका इस तरह अकेली चली आना, ठीक नहीं है। हम में से किसी को, साथ लेकर ही घर से निकलना चाहिये था। खैर, जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब यह बताओ, कि आप चिन्तित क्यो हैं? आपको, आज तक कभी भी चिन्तित नही देखा गया, परन्तु आज तो आप, बहुत ही चिन्तित हैं।

सखियों की बातों से, वसुमति की विचार-मग्नता भंग हुई। उसने, एक बार अपनी सखियों की ओर देखा, और सखियों की

बात समाप्त होते ही, वह फिर उसी तरह विचारमग्न होगई। वसुमति को फिर विचारमग्न देख कर, तथा अपनी बात का कोई उत्तर न पाकर, वसुमति की सखियों का आश्चर्य बढ़ गया। उनमें से एक सखी, वसुमति से कहने लगी—बहन वसुमति, आपने तो, हमारी बात सुनकर भी अनसुनी कर दी! हम तो, आपकी चिन्ता का कारण पूछ रही हैं, और आप बोलती भी नहीं!

एक सखी के यह कहने पर भी, जब वसुमति कुछ न बोली, तब दूसरी सखी अपनी सखियों से कहने लगी—राजकुमारी की चिन्ता का कारण, राजकुमारी से क्या पूछती हो! क्या राजकुमारी निर्लज्ज है, जो स्पष्ट रूप से चिन्ता का कारण कह सुनावें! ऐसा तो, कोई साधारण कन्या भी नहीं कर सकती है, तो राजकुमारी कैसे कर सकती हैं। राजकुमारी की चिन्ता का कारण, उनसे पूछने की आवश्यकता भी तो नहीं है! क्या तुम नहीं जानती, कि राजकुमारी को, किस बात की चिन्ता हो सकती है? क्या तुम्हारे नेत्र, फूटे हुए हैं? देखती नहीं हो, कि राजकुमारी की, कितनी आयु हो गई है और यौवन के प्रभाव से, इनका रूप रंग कैसा विकसित हो रहा है! इस समय ये, आम्र वृक्ष से लिपटने के लिए आतुर मालती की तरह हो रही हैं, फिर भी इनका विवाह नहीं हुआ, यह क्या चिन्ता की बात नहीं है! इस कारण के सिवा, राजकुमारी की चिन्ता का, दूसरा कारण

हो ही क्या सकता है ! यह बात तो, अपन अपनी साधारण बुद्धि से ही जान सकती है, इसमें राजकुमारी से क्या पूछना !

तीसरी—बात तो ठीक ही है। यौवन का प्रारम्भ होने पर भी विवाह न होना, एक बुद्धिमता कन्या के लिए, अवश्य चिन्ता की बात है।

चौथी—लेकिन, चिन्ता करके शरीर क्षीण करने से, क्या लाभ है ! महाराज और महारानी अपनी प्रिय पुत्री के विवाह के लिए स्वयं ही चिन्तित है। वे, राजकुमारी के योग्य वर की खोज में ही है। हाँ, इस विषय मे वे, शीघ्रता नही कर रहे है; सो आज मैं उनसे निवेदन करूँगी कि राजकुमारी का विवाह,शीघ्र ही कर देवे। बहन वसुमति, चलो, चिन्ता छोड़ो। अब आप, शीघ्र ही किसी राजा की रानी बनोगी।

वसुमति, चुपचाप अपनी सखियो की बाते सुन रही थी और सोच रही थी, कि मेरी इन बहनों का, कैसा पतन है ! इनकी दृष्टि मे, विषयो का प्राप्त न होना ही,चिन्ता या विचार का कारण है, इसके सिवा, चिन्ता या विचार की, कोई बात ही नही है। मै सोचती थी, कि पुरुष ही विषयो के दास हो रहे है, लेकिन सखियों की बातो से जान पड़ता है, कि स्त्रियाँ उनसे भी बढ़कर—विषयो की दासी हो रही है। मैं, स्वप्न की समस्या को तो सुलझा ही नही सकी थी, इतने ही में सखियो ने, मेरे सामने

यह दूसरी उलझन खड़ी कर दी। इस समय, मैं क्या करूँ! एक समस्या को सुलझाये विना, दूसरी समस्या हाथ मे कैसे लूं! परन्तु सखियो की वातें सुनकर भी, यदि मैं चुप रहती हूँ, तो ये सखियाँ यही समझेंगी, कि वसुमति को हमारे अनुमानानुसार ही चिन्ता है, और स्वयं का अनुमान ठीक समझ कर, उसके आधार पर, माता-पिता से न मालूम क्या कहेंगी, तथा उनको और चिन्ता मे डालेंगी। इसलिए पहले इनके अनुमान का निराकरण कर देना ही, ठीक है।

इस प्रकार विचार कर वसुमति, अपना स्वप्न विषयक विचार दवाकर, सखियों से कहने लगी—सखियो, यद्यपि जन्म से ही मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध है, फिर भी तुम लोग, मुझे अवतक नहीं समझ पाईं। तुमने, स्वयं की तरह मुझे भी तुच्छ विचारों वाली समझ रक्खी है। इसी से, किसी दूसरे विचार में बैठी हुई होने पर भी, मेरे लिए इस इस तरह की वाते कह रही हो, जैसे मै विषय-भोग के लिए ही जन्मी हूँ, और उनके मिलने पर ही अपना जीवन सफल मान सकती हूँ। लेकिन सखियो, तुम्हारा ऐसा समझना, नितान्त भूल भरा है। मैं, उन विचारो की नही हूँ, जैसा कि तुमने अनुमान किया है। मै कैसे विचारो की हूँ, यह मुझसे सुनो। मैं अपने पर, माता-पिता और धर्माचार्य का ऋण समझती हूँ। प्रत्येक स्त्री-पुरुष पर, ये तीन ऋण है। जीवन के लिए, ये

तीन ऋण, अवश्य ही होते है। ऋण तो, सासू, श्वसुर, पति आदि की सहायता लेना भी है, लेकिन ऐसा ऋण करना न करना अपनी इच्छा पर निर्भर है। जीवन के लिए, इन और ऋणों का लेना आवश्यक नही है। हॉ, अपनी कमजोरी के कारण ऐसा करना पड़े, तो यह बात दूसरी है। लेकिन मनुष्य को उचित है, कि वह अपने पर किसी प्रकार का नया ऋण लादने से पहले, पूर्व के तीन ऋण से मुक्त होने का प्रयत्न करे। पहले का ऋण न चुका कर, नया ऋण करना, ईमानदारी का काम नहीं कहा जा सकता। ईमानदारी तो यह है कि पहले के ऋण से मुक्त हो, और फिर बिना आवश्यक कारण के, नया ऋण न करे। मुझ पर माता, पिता और धर्माचार्य का जो ऋण है, मैं उसे ही उतारना चाहती हूँ, नया ऋण कदापि नहीं करना चाहती। ऐसी दशा में मेरे लिए तुम्हारा यह अनुमान कि मै विवाह की ही चिन्ता कर रही हूँ कैसे ठीक है! मैं, अपने पर, माता पिता का अत्यधिक ऋण समझती हूँ। अनेक जन्म तक उनकी सेवा करने पर भी, उनके ऋण से मुक्त नही हो सकती। फिर उनकी सेवा के समय, मै, ससुराल जाने की कृतघ्नता कैसे कर सकती हूँ? ऋण चुकाने के लिए सेवा करने के समय, किसी प्रकार का बहाना करना, अनुचित है। मै, ऐसा कदापि नही कर सकती और तुम लोगों से भी यही कहती हूँ कि आगे

से मेरे लिए न तो ऐसा अनुमान ही करना और न ऐसी बात ही करना।

वसुमति की बाते सुन कर उसकी सखियां, दंग रहगईं। वे वसुमति से कहने लगीं—सखी, तुम तो ऐसी बात कह रही हो, जैसे, संसार से बिलकुल निराली ही हो। तुम कुछ भी कहो, लेकिन कोई भी व्यक्ति, यह कैसे मान सकता है, कि तुम ऐसी सुन्दरी और युवती को, पति की इच्छा और तद्विषयक चिन्ता न हो।

वसुमति—हाँ सखियो, आज की प्रथा तो यही होरही है; लेकिन जिनको इस प्रकार की चिन्ता होती है, उन कन्याओं ने किसी और ही प्रकार की शिक्षा पाई है। मेरी माता ने, मुझे वह गन्दी शिक्षा नही दी है जिसके पाने पर, विषय-भोग की लालसा उत्पन्न हो, या वृद्धि पावे। दूसरी मातायें तो, अपनी कन्या को विषय-भोग में प्रवृत्त होने की शिक्षा देती हैं, परन्तु मेरी माता ने, मुझे,विषय-भोग से बचने की शिक्षा दी है। मेरी माता ने, मुझे बताया है, कि मनुष्य-जन्म, बार-बार नहीं मिलता; इसलिए इसका उद्देश्य, पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन होना चाहिए; विषय-भोग में इस जन्म को लगाना, इसका दुरुपयोग करना है। इस प्रकार मेरी माता ने, मुझे, ब्रह्मचर्य पालन की ही शिक्षा दी है, लेकिन साथ ही यह शिक्षा भी दी है, कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति

न होने पर, दुराचार मत करना, किन्तु उस दशा में, स्थूल ब्रह्मचर्य का पालन करना। अर्थात् विवाह करके मर्यादा-पूर्वक जीवन व्यतीत करना। यह मार्ग बता कर, माता ने मुझे, कन्या-धर्म, पत्नीधर्म, मातृधर्म और विधवा धर्म की शिक्षा दी है। पूर्ण ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर, मर्यादित ग्राहस्थ्य-जीवन विताने में, किस किस अवस्था का सामना करना पड़ता है, इस बात को दृष्टि में रख, मेरी माता ने, मुझे चारों प्रकार की शिक्षा दी है। जो कन्या, पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकती, किन्तु विवाह करती है, उसे विवाह करने के पश्चात् तीन. भिन्न भिन्न जीवन मे, प्रवेश करना पड़ता है। विवाह होते ही तो, उसे वधू बनना पड़ता है। वधू बनने पर, पति, सासू, श्वसुर, पतिभगिनी (ननद), देवर, जेठ और उनकी पत्नियों आदि के साथ, कैसा व्यवहार रखने पर, जीवन सुख-पूर्वक बीत सकता है, तथा उस समय का कर्त्तव्य क्या है, यह बात माता ने, मुझे पत्नीधर्म की शिक्षा देकर, बता दी है। जब विवाह होता है, तब संतान भी होती है और माता भी बनना पड़ता है। उस समय धर्म क्या है, यह माता ने मुझे मातृधर्म की शिक्षा देकर बताया है। विवाह होने के पश्चात् किसी का पति सदा ही जीवित नहीं रहता; किन्तु विधवा भी होना पड़ता है और कभी २ तो, कई कन्याये, विवाह होते ही विधवा होजाती है। उस समय का कर्त्तव्य भी माता ने, वैधव्य धर्म की

शिक्षा देकर, मुझे भली प्रकार बता दिया है। अर्थात् माता ने पहले तो मुझे, पूर्ण ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी है, परन्तु पूर्ण ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर नीति पूर्ण, सुखमय और धार्मिकता से जीवन बिताने के लिए, माता ने मुझको चार प्रकार के धर्म की शिक्षा देकर कहा है कि यदि तुझ मे शक्ति हो, तब तो तू पूर्ण ब्रह्मचर्य ही पालना। अपने पर, ससुराल का ऋण मत करना, लेकिन पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न होने पर, ससुराल का ऋण करके, इन चार धर्म के पालन द्वारा, उस ऋण को उतारने की चेष्टा करना और विवाह को, अपनी अशक्तता का कारण, तथा अपने पर ऋण मानना; विवाह करने का उद्देश्य, विषयसुख भोगना ही मत समझ लेना। इस प्रकार मेरी माता ने मुझे, ब्रह्मचर्यपालने की शिक्षा दी है और विवाह, असमर्थ-अवस्था के लिए बताया है। ऐसी दशा मे, मेरे हृदय मे, विवाह विषयक चिन्ता हो तो कैसे ! मैं तो यही भावना करती हूँ, कि माता-पिता आदि की सेवा करके, उनके ऋण से मुक्त होऊँ, स्वयं पर नया ऋण न होने दूँ और नये ऋण से बचने के लिए, ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करूँ। जिस कन्या को, माता-पिता आदि के ऋण की उपेक्षा करने की शिक्षा मिली हो, जिसका लालन-पालन उसके माता-पिता ने विषय-भोग के लिए ही किया हो और जिसने ब्रह्मचर्य की शिक्षा न पाई हो, वही कन्या, विवाह-विषयक चिन्ता चाहे करे,

लेकिन जिसको ब्रह्मचर्य की शिक्षा मिली है, जिसका लालन-पालन ब्रह्मचर्य का आदर्श सामने रख कर हुआ है, वह कन्या कितनी भी बड़ी हो जावे, उसे विवाह की चिन्ता या इच्छा नहीं हो सकती। हाँ, यदि वह अपने में ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न देखेगी तो स्पष्ट ही अपना विवाह करने का प्रस्ताव कर देगी; चिन्ता न करेगी।

सखी—बहन वसुमति, तुमने माता से शिक्षा तो पाई है, लेकिन उस शिक्षा का मनन नहीं किया है, न उस पर भली प्रकार विचार किया है। यह ठीक है, कि महारानी ने तुम्हें ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी है लेकिन महारानी की शिक्षा का उद्देश्य यह नहीं हो सकता, कि आप अपना विवाह ही न करें। ब्रह्मचर्य को अच्छा तो सभी कहते हैं, बुरा कोई नहीं कहता, परन्तु यह कथन, स्वयं के लिए नहीं होता। कोई दूसरी, ब्रह्मचर्य का पालन करती हो तो उसकी प्रशंसा करने के लिए ही ब्रह्मचर्य को अच्छा कहा जाता है, न कि स्वयं अविवाहित रहने के लिए। आपकी बातों से, यह भी जान पड़ता है, कि आप, स्त्री-धर्म से अनभिज्ञ हैं। कन्या पर, माता-पिता आदि का जो ऋण होता है, उसे वह, विवाह से पहले ही उनकी सेवा करके उतार देती है। विवाह-योग्य होने पर, विवाह करके पति की सेवा करना, कन्या का कर्त्तव्य है। यदि ऐसा न हो, और सभी

कन्याएँ ब्रह्मचर्य पालती तथा माता की सेवा करती रहें, विवाह न करें, तब तो थोड़े ही दिनों मे, मानवसमाज की इतिश्री हो जावे। संसार मे, कोई मनुष्य ही न रहे। इसके सिवा, जिस कन्या का विवाह नहीं हुआ, जिसे पति की सेवा प्राप्त नहीं हुई, उस कन्या का जीवन, जंगल में खिल कर सूखजाने वाले पुष्प के समान, व्यर्थ है। जो कन्या, अपने विवाह की भी चिन्ता नहीं रखती, मैं तो उसे अपना लाभ-हानि न समझने वाले पशु के ही समान समझती हूँ। इसलिए, इस समय चाहे तुम अपने विवाह की चिन्ता न भी कर रही हो, तब भी, मै तो यही कहूँगी, कि तुमको भी, ऐसी चिन्ता होनी तो चाहिए।

वसुमति—सखी, तू ने नारीधर्म, मानव-समाज की रक्षा और कन्या के कर्त्तव्य आदि की दुहाई देकर जो कुछ कहा है, वह, ठीक नहीं है। जो ब्रह्मचर्य दूसरे के लिए अच्छा समझा जावे, वह अपने लिए पालनीय न माना जावे, यह कैसे उचित है! ब्रह्मचर्य को, केवल दूसरे के लिए ही अच्छा समझना, स्वयं के लिए अच्छा न समझना, मिथ्याचार है। इस प्रकार के मिथ्याचार की शिक्षा, न तो मेरी माता ने दी ही है, न मैंने पाई ही है। मैंने जो भी शिक्षा पाई है, वह स्वयं के आचरण के लिए और मेरी माता ने भी मुझे जो शिक्षा दी है, वह भी इसीलिए है। वे कपटी लोग कोई और ही होंगे, जो हृदय मे तो कुछ रखें और बाहर

कुछ दिखावे; दूसरे से कुछ कहें, स्वयं कुछ करें। दूसरे के लिए तो ब्रह्मचर्य की प्रशन्सा करें और स्वयं पालन करने के लिए यह समझें, कि अब्रह्मचर्य ही अच्छा है; ब्रह्मचर्य को अच्छा तो, केवल दूसरे के लिए कहना है। बहन, मैंने ऐसी शिक्षा नहीं पाई है, न मुझ से, इस प्रकार का पाखण्ड होगा ही। इसी प्रकार तुम कहती हो, कि संसार की सभी कन्याएँ ब्रह्मचर्य पालने लगें, तो संसार ही शून्य हो जावे! पहले तो, संसार की सब कन्याओं का ब्रह्मचर्य पालना ही असम्भव है, और दूसरे इस अनादि संसार का अन्त होना भी, असम्भव है। संसार में, अनेक कन्याएँ पति न मिलने के कारण अविवाहित रहती हैं; अनेकों ब्रह्मचर्य पालन के उद्देश्य से विवाह नहीं करती और अनेकों, विवाह होते ही, या कुछ दिन पश्चात् विधवा होजाती हैं; फिर भी, संसार में किसी प्रकार की कमी नहीं होती। ऐसी दशा में, ब्रह्मचर्य पालन के लिए विवाह न करने पर ही, संसार का अन्त क्यों हो जावेगा? इस पर भी, यदि ब्रह्मचर्य के कारण संसार का अन्त हो जावे, तो इससे बुराई की बात क्या होगी! यह तो और अच्छा होगा! तू ने कहा है, कि कन्याएँ, विवाह से पूर्व ही माता-पिता की सेवा करके उनके ऋण से मुक्त हो जाती है, लेकिन तेरा यह कथन, भूलभरा और शास्त्र-विरुद्ध है। शास्त्र में स्पष्ट कहा है, कि अनेक जन्म तक माता-पिता की सेवा करने पर भी, उनके महान्,

ऋण से सन्तान मुक्त नहीं हो सकती, तो कन्याएँ, विवाह और युवावस्था से पहले ही माता-पिता के ऋण से मुक्त हो जावे, यह कैसे सम्भव है! उस समय तक तो वे, स्वयं ही सम्हाल करने के योग्य नहीं होती है, माता-पिता को ही, उनकी सेवा सम्हाल करनी होती है—फिर वे, माता-पिता की सेवा करके, ऋण-मुक्त होने में समर्थ कैसे हो सकती है! सखी, यह अपनी विषय-लालसा न रुकने पर, इस प्रकार का बहाना बनाना है। मै, इस प्रकार का बहाना करना और माता-पिता के प्रति कृतघ्न बनना, कदापि ठीक नहीं समझती। अन्त मे तूने, विवाह न करने वाला कन्या का जीवन वनपुष्प के समान बता कर, विवाह की चिन्ता न होने के कारण उन्हें पशुवत् बताया है, जिसे तेरी उद्दण्डता के सिवा, और कुछ नही कहा जा सकता। जब तेरे को दूसरा मार्ग नहीं मिला, तब तूने, यह उल्टा मार्ग पकड़ा है और पशुओं की तरह प्रवृत्ति करने वाली को अच्छा, तथा विवाह की चिन्ता न करने वाली को, पशु के समान बताया है। तूने यह भी नहीं सोचा, कि विवाह की तरह की चिन्ता तो पशु भी करते हैं, लेकिन ब्रह्मचर्य का पालन, केवल मनुष्य ही कर सकते हैं, और कोई नहीं कर सकता। फिर मैं, ब्रह्मचर्य पालने वाली और विवाह की चिन्ता न करने वाली को, पशु के समान कैसे बताऊँ। सखी, ब्रह्मचर्य की महिमा, अनन्त है। ब्रह्मचर्य पालने वाले स्त्री

पुरुष के चरण वन्दने के लिए, देव भी लालायित रहते हैं। ऐसा करने वाले का महत्व, देवों से भी बढ़कर है। क्योंकि, ब्रह्मचर्य का पालन, देव भी नहीं कर सकते। इसलिए तू, ब्रह्मचर्य को, विवाह से कम मत बता। यह बात दूसरी है, कि ब्रह्मचर्य के न पलने पर विवाह किया जावे, लेकिन इसे अपनी कमजोरी समझना चाहिए। यह तो मेरी माता ने भी कह दिया है, कि यदि ब्रह्मचर्य न पले, तो उस दशा में, विवाह करके ससुराल का ऋण कर लेना, जबरदस्ती ब्रह्मचर्य मत पालना; लेकिन उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य को ही समझना, विवाह को उत्कृष्ट मत समझना। इस प्रकार मेरी माता ने, दोनों ही मार्ग बता दिये हैं; परन्तु मैं, विवाह नहीं करना चाहती, ब्रह्मचर्य ही पालना चाहती हूँ। मैं, उन स्त्रियों की निन्दा भी नहीं करती, जिनने, ब्रह्मचर्य न पलने के कारण, विवाह किया है। मैं, उन स्त्रियों का, अपना माता के ही समान आदर करती हूँ। मेरी माता ने भी, स्वयं पर ससुराल का ऋण किया है, इसलिए ससुराल का ऋण करने वाली की निन्दा करना, अपनी माता की निन्दा करना है।

सखी—हाँ, तो आपका अभिप्राय यह है, कि सब कन्याओं को ब्रह्मचर्य ही पालना चाहिए, विवाह को ऋण समझ कर, उससे बचना चाहिए ?

वसुमति—हाँ, जब तक हो सके तब तक तो ऐसा ही करना चाहिए,

लेकिन मैं सबको ब्रह्मचर्य पालने की सलाह नहीं देती; किन्तु यह कहती हूँ, कि जब तक हो सके, तब तक तो ससुराल के ऋण से बचना चाहिए, लेकिन ब्रह्मचर्य न पलने पर ससुराल का ऋण न करके, दुराचार भी न करना चाहिए। वैसे तो ऋण लेना बुरा है लेकिन जब बिना ऋण लिये काम न चलता हो, उस समय ऋण न लेना, अनाचार का कारण होता है। इसलिए, ऐसे समय पर तो, ऋण लेना ही अच्छा है। इसी प्रकार जब तक ब्रह्मचर्य पले, तब तक तो ससुराल का ऋण न करना ही अच्छा है लेकिन ब्रह्मचर्य पालन की शक्ति न होने पर, पति की सहायता लेकर स्वयंमे ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति बढ़ाना भी अच्छा है परन्तु इस प्रकार की अशक्त बहनो को, यह अभिमान न करना चाहिए कि हमने विवाह करके कोई बड़ा काम किया है, अथवा जिनने विवाह नही किया है, वे दुःखी या मुझसे न्यून हैं क्योकि इच्छा होने पर भी जिनका विवाह नहीं हुआ है वे चाहे दुःखी हों, लेकिन जो विवाह की भावना ही नहीं रखती वे दुःखी नहीं, किंतु महान् सुखी हैं। किसी भले आदमी को यदि कभी ऋण लेना पड़ता है तो वह अभिमान नहीं करता। इसी प्रकार, विवाह का ऋण करने वाली बहन को भी अभिमान न करना चाहिए। जो बहन पूर्ण ब्रह्मचर्य पालती हुई अपना शरीर ईश्वर को सौंप देती है उसकी तो जितनी भी प्रशंसा की जावे, कम ही है; लेकिन

जो अपने पर विवाह का ऋण करके भी पतिव्रता रहती है और धार्मिक जीवन बिताती है, वह भी निन्दा योग्य नहीं है, किंतु प्रशंसा के योग्य ही है। निन्दा के योग्य तो वह है, जो पूर्ण ब्रह्मचर्य भी नहीं पालती और अपने पर, विवाह का ऋण भी नहीं करती, किंतु दुराचार करती है। ऐसी स्त्रियाँ अवश्य ही धिक्कार के योग्य है।

वसुमति की बाते सुनकर, सखी कहने लगी—राजकुमारी आज तो आपने हमे अपूर्व बातें सुनाई। आपने हमें जो शिक्षा दी, उसके लिए हम आपका आभार मानती है और आपकी प्रशंसा करती है। जिनमे ऐसी बुद्धि है, वे आप साधारण कन्या नही है। इस प्रकार के विचार, किसी साधारण कन्या में, उत्पन्न ही नहीं हो सकते। हम तो यही समझती थी कि आप विवाह विषयक चिन्ता कर रही है, लेकिन यह हमारा भ्रम था। आपकी बातो से, हमको मालुम होगया कि आपको इस प्रकार की चिन्ता हो ही नहीं सकती। आपके लिए मैंने जो कुछ कहा उसके लिए मै क्षमा चाहती हूँ; लेकिन साथ ही यह प्रश्न होता है, कि फिर आप किस चिन्ता मे बैठी थीं ? आप ऐसी कन्या को, कोई साधारण चिन्ता तो हो नहीं सकती !

वसुमति—तुम, मेरे विचार करने को चिन्ता समझ रही हो,

यह तुम्हारी भूल है। मैं किसी प्रकार की चिन्ता में नहीं थी किंतु एक गम्भीर बात का विचार कर रही थी ।

सखी—वह बात क्या थी ?

वसुमति—हाँ, यह बात मुझसे जान सकती हो। तुम लोग मेरी सहचरी हो, अतः मैं कोई बात तुमसे छिपाना नहीं चाहती ।
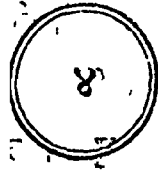
स्वप्न

अवस्था चार हैं; जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जिस समय, इन्द्रिय और मन अपना-अपना काम करते रहते हैं, उसे जाग्रतावस्था कहते हैं। जब इन्द्रियाँ काम नहीं करती हैं—सो जाती हैं—लेकिन मन नहीं सोता है किन्तु कल्पना किया ही करता है—अपनी कल्पना-सृष्टि में विचरण करता है—उस सृष्टि निर्माण एवं उसमें विचरण करने का नाम, स्वप्न है और उस दशा का नाम, स्वप्नावस्था है। जब इन्द्रियों के साथ ही मन भी सो जाता है, कल्पना नहीं करता—और व्यवहार में जिसे स्वप्न रहित प्रगाढ़ निद्रा कहते हैं—उसका नाम, सुषुप्ति अवस्था है। चौथी, तुरीयावस्था है। महात्माओं की ध्यानावस्था का नाम, तुरीयावस्था है। यहाँ, स्वप्न के विषय में ही कुछ कहना है; यह अवस्था-वर्णन तो प्रसंगवश किया गया है।

इन्द्रियों के सोने पर, स्वप्नावस्था मे मन, अपने संस्कारो के अनुसार कल्पना करता है। फिर वे संस्कार, चाहे इस जन्म के

हों, या पूर्वजन्म के और अनुभव में आये हुये हों, अथवा केवल सुने हुए हों। जो बात संस्कार में है, वही, छोटे या बड़े रूप से स्वप्न में भी आती है! हाँ, उन संस्कारों के साथ, मन की विकृति भी अवश्य रहती है; फिर भी, जो बात संस्कार में ही नहीं है, वह, स्वप्न में भी नहीं आती। अदृष्टवश कभी-कभी, स्वप्न की कल्पना भविष्य में सत्य भी हो जाती है। या यह भी कहा जा सकता है, कि कभी-कभी, भविष्य में होनेवाली घटना की सूचना, स्वप्न में मिल जाती है। ऐसा होने का कारण, अदृष्ट-पूर्व के पुण्य-पाप का संस्कार ही कहा जा सकता है; और कोई कारण नहीं कहा जा सकता।

वसुमति ने भी, एक ऐसा स्वप्न देखा था, जो आगे चलकर सत्य हुआ। वह, उस स्वप्न के विषय में ही विचार कर रही थी, परन्तु उस विचार मग्नता का अर्थ, उसकी सखियों ने, विवाह विषयक चिन्ता लगाया। फिर जब वसुमति ने अपनी सखियों को समझाया, तब उसकी सखियाँ उससे यह पूछने लगीं, कि आप क्या विचार कर रही थीं? उनके इस प्रश्न के उत्तर में वसुमति कहने लगी—सखी, आज रात को, मैंने एक विचित्र स्वप्न देखा मैं, उस स्वप्न के विषय में ही विचार कर रही थी।

सखी—वह स्वप्न क्या था?

वसुमति—मैंने देखा, कि सारी चम्पापुरी एक महान दुःख

में डूब रही है। पिता, तथा प्रजा पर, एक घोर विपत्ति छाई हुई है। उस समय मैंने चम्पापुरी पर छाई हुई विपत्ति नष्ट करके, दुःख सागर से, चम्पापुरी का उद्धार किया। यह स्वप्न देखकर, मैं जाग उठी और तभी से बैठी हुई यह विचार रही हूँ, कि इस स्वप्न का क्या अर्थ लगाऊँ! इसे अच्छा समझूँ या बुरा समझूँ! मैं, जब दुःख सागर से चम्पापुरी के डूबने पर विचार करती हूँ, तब तो दुःख होता है, लेकिन जब स्वयं के द्वारा चम्पापुरी के उद्धार पर विचार करती हूँ, तब प्रसन्नता होती है। मैंने, स्वप्न में पहले तो, चम्पापुरी पर संकट देखा है, और फिर, संकट मुक्त भी देखा है। इसलिए मैं, यह सोच रही हूँ, कि इस स्वप्न को कैसा समझूँ और इस स्वप्न के लिए प्रसन्नता मानूँ, या दुःख करूँ।

एक सखी—मैं, स्वप्न का कारण समझ गई।

वसुमति—तू क्या समझी? मुझे भी बता!

सखी—बेहन वसुमति, आपकी अवस्था विवाह योग्य हो गई है; फिर भी, आपका विवाह नहीं हुआ है और आप अकेली रहती हैं। इस अवस्था में, साधारण कन्या का भी अकेली रहना बुरा है, तो आप तो राज-कन्या हैं। जिस प्रकार के सुख में, आपका जीवन बीत रहा है, वैसे सुख में रहने वाली कन्या साधारण कन्या की अपेक्षा, शीघ्र ही युवती होती है। इस कारण, ऐसी कन्या का विवाह, साधारण कन्या के विवाह से जल्दी होना आवश्यक है और

विवाह न होने पर, उन्हें, आपकी तरह के विचित्र स्वप्न दिखाई देते हैं। इस स्वप्न के विषय में आप, कोई चिन्ता मत करिये। हम, महारानी से कह कर, शीघ्र ही आपका विवाह करा देंगी; जिसमें न तो आप अकेली रहें, न आपको स्वप्न ही हों और न आपके स्वप्न में, चम्पापुरी को दुःखसागर में ही पड़ना पड़े।

वसुमति—सखी, तुम ऐसी के कारण ही, स्त्रियों की बुद्धि की निंदा होती है। मैंने, अभी ही यह समझाया है, कि मेरे को विवाह नहीं करना है, फिर भी तू कहती है कि हम महारानी से कहकर तुम्हारा विवाह जल्दी करा देंगी! तेरे इस कथन से, मैं यह भी समझ गई, कि अब तुम लोगों को और कुछ कहना, तथा समझाना, व्यर्थ है। इसलिए तुम, माता से चाहे जो कहो, लेकिन मैंने स्वयं के जो विचार प्रकट किये हैं, वे भी माता को अवश्य सुना देना।

'जो कुछ हमारी इच्छा होगी, हम महारानी से वही कहेंगी' कहती हुई वसुमति की सखियां, वसुमति के पास से चली गई। वसुमति भी वहां से उठकर नित्य कार्य में लगी। स्वप्न के विषय में, उसने यह निश्चय किया कि मेरे मन, वचन और काय में किसी प्रकार का विकार नहीं है, अतः मुझे जो स्वप्न आया है वह अवश्य ही सत्य होगा। निश्चय ही चम्पापुरी दुःख-सागर में डूबेगी और मेरे हाथ से दुःखसागर में डूबी हुई चम्पा-

पुरी का उद्धार होगा। यह स्वप्न सम्भवतः मुझे, आने वाले भार की सूचना देने के लिए ही हुआ है; अतः मुझे सावधान होकर चम्पापुरी के उद्धार की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। मैं जहां तक समझ पाई हूँ, चम्पापुरी का उद्धार शस्त्रबल से नहीं, किंतु आत्म-बल से होगा। यदि शस्त्रबल से ही चंपापुरी का उद्धार सम्भव होता, तो यह भार मेरे पर न आता। क्योंकि मैं शस्त्रबल में किंचित् भी अधिकार नहीं रखती और दूसरी ओर, शस्त्रबल के बड़े बड़े धुरन्धर विद्यमान हैं, जो शस्त्रबल के सामने, और किसी बल को कुछ नही समझते। शस्त्रबल के आधार पर होने वाले काम के विषय में, उनके होते मुझे—चंपापुरी के उद्धार का—स्वप्न आवे यह सम्भव नहीं। मुझे स्वप्न आया है, इससे यह निश्चय है कि चंपापुरी का उद्धार शस्त्रबल से नहीं किन्तु आत्म-बल से ही होगा। इसलिए अब मेरे को वही उपाय करती रहना चाहिए, जिससे मेरा आध्यात्मिक बल बढ़े।

उधर सवेरा होने पर, धारिणी यह विचारने लगी, कि—विवाह करने, या ब्रह्मचर्य पालने के विषय में, वसुमति से पूछने का भार, पति ने मुझ पर रखा है; अतः मैं स्वयं ही वसुमति के पास जाऊँ, अथवा उसे यहाँ बुलवाऊँ! इस प्रकार के विचार के साथ ही, धारिणी को यह विचार भी होता था कि विवाह और ब्रह्मचर्य में से वसुमति, किसे पसन्द करेगी! यदि उस पर

सामयिक प्रभाव होगा, तब तो वह विवाह करना ही पसन्द करेगी, लेकिन यदि मेरी शिक्षा मानेगी, तो ब्रह्मचारिणी रहना ही पसन्द करेगी, विवाह न करेगी। धारिणी इस प्रकार विचार कर रही थी, इतने ही में वसुमति की सखियाँ भी उसके पास पहुँच गईं। जब वे, धारिणी का उचित अभिवादन कर चुकीं, तब धारिणी ने, उनसे पूछा, कि कुशल तो है ?

सखी—आपके और महाराजा के पुण्य-प्रताप से, सदा ही कुशल है।

धारिणी—तुम्हारी सखी वसुमति तो प्रसन्न है ?

सखी—राजकुमारी तो स्वयं ही प्रसन्नता रूप हैं। हाँ, आज रात को, उनने एक स्वप्न अवश्य देखा था।

धारिणी—क्या स्वप्न देखा था ?

सखी—स्वप्न में उनने सारी चम्पापुरी को घोर दुःखसागर में निमग्न और स्वयं के द्वारा उसका उद्धार देखा।

धारिणी—यह स्वप्न तो अच्छा है ! पुत्री के द्वारा ऐसा महान् कार्य सम्पन्न हो, इससे अधिक प्रसन्नता की बात क्या होगी ?

सखी—लेकिन साथ ही, स्वप्न में, चम्पापुरी को दुःखसागर में डूबती हुई को भी तो देखा !

धारिणी—चम्पापुरी का भविष्य जैसा होगा, वैसा कार्य तो

होगा ही, लेकिन साथ ही, उस बुरे समय से, हमारे द्वारा क्या कार्य होगा, यह भी देखना चाहिए! किसी अच्छे कार्य का निमित्त बनना, क्या कम प्रसन्नता की बात है! दुःखसागर में डूबी हुई चम्पापुरी का, वसुमति उद्धार करेगी, यह जानकर मेरे को बहुत प्रसन्नता हुई। मेरी भावना भी यही है, कि वसुमति के द्वारा, कोई विशेष कार्य हो। वसुमति ने जो स्वप्न देखा है, उससे यह विश्वास होता है, कि मानव-समाज के सन्मुख, वसुमति कोई उच्च आदर्श रखेगी।

सखी—लेकिन महारानी जी, स्वप्न की बात सत्य तो होती नहीं है!

धारिणी—जिनका मन, वचन और शरीर प्रपंचों में उलझा रहता है, और अपवित्र होता है, उनके तो अधिकांश स्वप्न मिथ्या ही होते है, लेकिन जिनका मन, वचन, काय पवित्र है, उनके अधिकांश स्वप्न, सत्य ही होते हैं; कोई ही स्वप्न, चाहे मिथ्या निकले। वसुमति, मन, वचन और काय से पवित्र है, इसलिए उसको जो स्वप्न आया है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता। मेरा विश्वास है, कि चम्पापुरी पर अवश्य ही आपत्ति आवेगी, तथा वसुमति द्वारा, उस आपत्ति से चम्पापुरी का उद्धार होगा।

सखी—महारानीजी, क्षमा करिये; मैं तो राजकुमारी के स्वप्न का दूसरा ही कारण समझती हूँ।

धारिणी—क्या कारण समझती हो ?

सखी—राजकुमारी, पूर्ण युवती हो गई है, फिर भी अब तक वे कुमारी ही है, इसी कारण उन्हे, इस प्रकार का स्वप्न हुआ है। इस आयु तक भी विवाह न होने पर, शारीरिक उष्णता के कारण कन्याओं को, इस प्रकार के स्वप्न आया ही करते है। इसीलिए कन्याओं का, अधिक आयु तक कुमारी रहना, निषिद्ध बताया गया है।

धारिणी—प्रत्येक व्यक्ति बात का अर्थ अपनी भावना के अनुसार लगाता है, यह स्वाभाविक ही है, आश्चर्य की बात नहीं है। तुमने अपनी भावना के अनुसार, वसुमति के स्वप्न का भी अर्थ लगाया है, लेकिन यह बात तुमने वसुमति से क्यो नहीं कही ?

सखी—कही थी।

धारिणी—फिर वसुमति ने क्या उत्तर दिया ?

सखी—उनने तो कहा कि मैं विवाह ही न करूँगी; किन्तु ब्रह्मचर्य पालती हुई, माता-पिता की सेवा करके, उनके ऋण से मुक्त होऊँगी। अपने पर, ससुराल का ऋण न करूँगी।

वसुमति की सखी द्वारा, वसुमति का उत्तर सुनकर, धारिणी बहुत प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी, कि—मैं वसुमति से जिस बात की आशा करती थी, वह आशा पूर्ण होने का समाचार तो, इन दासियों से मिल ही चुका है। मेरी भावना है, कि वसुमति,

ब्रह्मचर्य पालन करे और मानव-समाज के सामने, एक नवीन आदर्श रखे। स्वप्न और इन सखियों की बातों से, मेरी भावना, पूर्ण होती जान पड़ती है। वसुमति के हृदय के भाव तो इन दासियों द्वारा मेरे को मालूम हो ही चुके हैं। फिर भी मुझे वसुमति से मिलकर, प्रत्यक्ष में उसके विचार जान लेना चाहिएँ और तभी पति से कुछ कहना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके धारिणी ने वसुमति की सखियो से कहा कि—जब वसुमति विवाह करना ही नहीं चाहती, तब उसके स्वप्न का कारण, विवाह न होना समझना, कैसे उचित है! अच्छा, तुम लोग जाओ, अभी थोड़ी देर में, मैं वसुमति से मिलूँगी और फिर जैसा ठीक होगा वैसा करूँगी।

वसुमति की सखियाँ, चली गईं। सखियों को बिदा करके धारिणी, वसुमति के पास आई। उस समय वसुमति, वीणा बजा कर गा रही थी। धारिणी को देख कर, उसने वीणा रख दी और सामने जाकर धारिणी को प्रणाम, तथा उससे आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर उसे सम्मान-पूर्वक लाकर, आसन् पर बैठाया और हाथ जोड़ कर उससे कहने लगी कि—आज मेरा अहो भाग्य है जो आपने यहाँ पधार कर, मुझे दर्शन दिया।

धारिणी—अभी, तेरी सखियों से ज्ञात हुआ, कि आज रात को तूने एक स्वप्न देखा है। उस स्वप्न के विषय में, तेरी कुशल

पूछने के साथ ही, एक आवश्यक विषय में, तेरी सम्मति जानने के लिए, मैं आई हूँ।

वसुमति—हाँ माता, आज रात को मैंने स्वप्न में देखा, कि चम्पापुरी, दुःखसागर में डूब रही है और मैंने चम्पापुरी का उद्धार किया। यह स्वप्न देख कर, मैं असमंजस में पड़ गई, कि इस स्वप्न को कैसा समझूँ! अच्छा समझूँ या बुरा!

धारिणी—मैं तो, इस स्वप्न को अच्छा समझती हूँ और यह मानती हूँ कि इस स्वप्न के अनुसार मेरी भावना पूर्ण होगी। यद्यपि इस स्वप्न से, चम्पापुरी को अवश्य ही दुःख मे पड़ना होगा, लेकिन साथ ही, तेरे हाथ से इसका उद्धार होगा, यह प्रसन्नता की बात है। मेरे हृदय मे, यह भावना प्रारम्भ से ही है, कि तेरे द्वारा कोई महान् कार्य हो। आज रात को महाराजा से मेरी इस विषय पर बातचीत भी हुई थी, कि तेरे को किस प्रकार सुखी बनाया जावे! महाराजा की इच्छा है, कि अच्छा घर-वर देख कर तेरा विवाह कर दिया जावे। इस सम्बन्ध में तेरी इच्छा जानने के लिए महाराजा ने मुझे आज्ञा दी है। महाराजा की आज्ञा का पालन करने के लिए मैं तेरे पास आना ही चाहती थी, इतने ही में तेरी सखियों ने मुझे, तेरे स्वप्न का समाचार सुनाया, जिसे सुन कर, मुझे प्रसन्नता हुई, और मैं महाराजा की

आज्ञानुसार तेरी इच्छा जानने के साथ ही, स्वप्न के विषय में तेरे से यह कहने आई हूँ कि स्वप्नानुसार, भविष्य मे तेरे हाथ से कोई श्रेष्ठ कार्य होना है, अतः इसके लिए बल प्राप्त कर। अच्छा तो अब यह बता, कि महाराजा ने जो कुछ जानना चाहा है, उसके विषय मे तू क्या कहती है?

वसुमति—पूजनीया माता जी, भविष्य में यदि मेरे हाथ से कोई श्रेष्ठ कार्य हुआ तो उसका श्रेय, आप ही को हो सकता है। क्योंकि, मेरे मे जो भी शक्ति होगी, मैं जो भी कार्य कर सकूँगी, वह आप ही के प्रताप से। लेकिन आपका वह प्रश्न सुन कर मुझे आश्चर्य हो रहा है, जो प्रश्न आपने पिता जी की आज्ञानुसार मेरे से किया है। एक ओर तो आप, मेरे द्वारा कोई विशेष कार्य होने की इच्छा रखें, और दूसरी ओर, मुझे विवाह-बन्धन मे बाँधने की इच्छा करें, तो ये दोनो ही बातें कैसे हो सकती है? ये दोनों बातें तो परस्पर विरोध रखती है! माता जी, आपने मुझे ब्रह्मचर्य पालने की शिक्षा देकर बताया है, कि मनुष्य का कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य पालना ही है, विवाह तो तभी किया जाता है, जब ब्रह्मचर्य पालने की क्षमता न हो। यदि आपने, मेरे में इस प्रकार की क्षमता न देखी हो, तब तो आपका मेरे विवाह के विषय मे विचार करना ठीक है, अन्यथा ऐसा विचार न होना चाहिए। क्या आपको यह ज्ञात

हुआ है, कि मेरे में ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति नहीं है, इसलिए मेरा विवाह कर देना आवश्यक है ?

धारिणी—नहीं ।

वसुमति—फिर पिता जी को, मेरे विवाह का विचार क्यों हुआ ? और यदि हुआ भी था, तो आपने उसी समय समाधान क्यों नहीं कर दिया ?

धारिणी—पुत्री तेरा यह कथन ठीक है, लेकिन माता-पिता को, अपने कर्त्तव्य का पालन करना भी आवश्यक है । हमारा कर्त्तव्य है, कि हम जैसी तेरी इच्छा देखे, वैसा ही करे । बलात् न तो विवाह ही कर सकते हैं, न ब्रह्मचर्य ही पलवा सकते हैं । यदि तू कहे कि फिर मेरी इच्छा जानने के लिए, आपने विवाह का ही विचार क्यों किया, ब्रह्मचर्य का विचार क्यों नहीं किया, तो इसका भी कारण सुन । ब्रह्मचर्य का पालन करना उत्तम है, फिर भी सरल नहीं है; किन्तु खड्ग-धार पर चलने के समान कठिन है । इसकी उत्तमता एवं शक्ति को देखकर, अनेक लोग ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा तो कर लेते है, लेकिन फिर इसकी कठिनाई के कारण प्रतिज्ञा-भ्रष्ट हो जाते हैं और तब किसी भी ओर के नहीं रहते । इसके सिवा लोगों की दृष्टि में, ब्रह्मचर्य पालना कठिन कार्य है और विवाह करना, सरल कार्य है । इसी प्रकार लोग ब्रह्मचर्य में दुःख तथा विवाह में सुख मानते हैं । इन्हीं

कारणों से, ब्रह्मचर्य का विचार न करके विवाह का विचार किया परन्तु तू विवाह कर, या ब्रह्मचर्य पाल, यह तेरी इच्छा पर निर्भर है। हमारा अनुरोध न तो विवाह करने का ही है, न ब्रह्मचर्य पालने का ही। तू जो भी चाहे, उत्तर दे सकती है।

वसुमति—यह तो ठीक है, लेकिन यदि मैं अभी इन दोनों में से किसी भी एक बात का निश्चय न करूँ तो क्या कोई हानि होगी?

धारिणी—कोई हानि नहीं है।

वसुमति—फिर अभी मैं, किसी भी प्रतिज्ञा में क्यों बंध-जाऊँ! कुछ दिन और अनुभव करके दो में से किसी एक बात का निर्णय क्यों न करूँ? मैं उत्तम तो ब्रह्मचर्य को ही समझती हूं, परन्तु अपनी शक्ति का पूरी तरह विश्वास करने के पश्चात् ही, मैं आपसे स्पष्टतया यह कह सकती हूँ, कि मैं विवाह करूँगी, या ब्रह्मचर्य पालूँगी!

धारिणी—ठीक है, ऐसा ही कर; मैं भी तेरे लिए यही शुभ कामना करती हूँ कि तू पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने में समर्थ हो। मैं, तेरे द्वारा भविष्य में कोई श्रेष्ठ कार्य होने की जो भावना करती हूँ, उस भावना की सफलता भी ब्रह्मचर्य पर ही निर्भर है। अच्छा, अब मैं जाती हूँ और महाराजा से भी यह कहे देती हूँ कि वसुमति की इच्छा तो ब्रह्मचर्य पालने की ही है, फिर भी वह

अभी किसी बात का निश्चय नहीं करती। यह कहकर धारिणी वहाँ से चलदी। जाती हुई धारिणी को वसुमति ने प्रणाम किया। वसुमति के विचार सुनने से धारिणी को बहुत प्रसन्नता थी।

रात के समय महाराजा दधिवाहन, महारानी धारिणी के महल में आये। महारानी धारिणी ने, महाराजा दधिवाहन को, वसुमति के विचार एवं स्वप्न का समाचार सुनाया; जिसे सुनकर दधिवाहन को प्रसन्नता भी हुई और चिन्ता भी। वसुमति के विवाह के विषय में महाराजा दधिवाहन ने यही कहा कि जब वह अभी स्वयं का विवाह नहीं करना चाहती तब मेरा भी कोई आग्रह नहीं है। यदि वह ब्रह्मचर्य पाले, तो यह तो बहुत प्रसन्नता की बात है!

इस प्रकार वसुमति के विवाह का विचार अनिश्चित काल के लिए स्थगित होगया। इसी बीच में वसुमति के स्वप्न को सत्य करने वाली एक घटना घट गई।
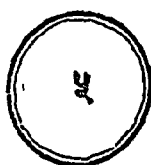
चम्पा पर चढ़ाई।

नरक का प्रधान कारण, लोभ है। मनुष्य लोभ-वश जितने पाप करता है, उतने पाप और किसी कारण से नहीं करता। फिर वह लोभ धन, जन, राज्य, वैभव आदि किसी भी बात का हो, लेकिन पाप का कारण, है लोभ ही। लोभ होने पर ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसके करने से मनुष्य हिचकिचावे। लोभ के सम्मुख, न्याय, सत्य और औचित्य को किंचित् भी स्थान नहीं मिलता; किन्तु लोभ के कारण, अन्याय और अत्याचार का ताण्डव तक होने लगता है। निरपराधियों को कष्ट में डालने, उनका वध करने, उनके रक्त की सरिता बहाने और उनका सर्वनाश करने का कारण, लोभ ही है। लोभ के कारण, अकृत्य कार्य भी कृत्य माना जाता है और उसके करने में, प्रसन्नता अनुभव की जाती है। उस समय मनुष्य में से, मनुष्यता निकल जाती है। वह, मनुष्य रूप में पिशाच ही बन जाता है। फिर उसके लिए माता पिता, भ्राता, पत्नी आदि प्रत्येक आत्मीय का संहार

करना—उनकी हानि करना—सरल बात है, तो दूसरे के संहार और दूसरे की हानि के विषय में तो कहना ही क्या है। लोभी का हृदय दुःखितों के हाहाकार और पीड़ितों के करुणा-क्रन्दन से, किंचित भी द्रवित नहीं होता, किन्तु और प्रसन्न होता है। यद्यपि ऐसी बातें, मानव-स्वभाव से बाहर की है, लेकिन लोभी मनुष्य में से, मानव-स्वभाव तो पहले ही निकल जाता है। उसमें, भयंकर बर्बरता आ जाती है, और उस बर्बरता के कारण, उसे किसी भी कार्य के करने में संकोच नहीं होता। लोभ में भी, राजाओं का लोभ तो प्रसिद्ध ही है। उसके लिए तो, नीतिकारों ने यह विधान ही कर दिया है, कि—

असन्तुष्टा द्विजानष्टा सन्तुष्टाश्च महीभृतः।

अर्थात्—असन्तोषी ब्राह्मण नष्ट हो जाता है और सन्तोष से, राजा नष्ट हो जाता है।

राजाओं को तो, इस प्रकार शिक्षा ही दी जाती है, कि राजा को कभी सन्तोष करना हीं न चाहिए। लेकिन राजाओं के असन्तोष से—राजाओं में लोभ होने से—प्रजा को किस प्रकार कष्ट भोगने पड़ते हैं; इसके अनेको उदाहरण हैं। नादिरशाही गदर, चंगेजशाही लूट, राजाओं के लोभ का ही परिणाम था। लोभ के कारण ही, कंस और औरंगजेब ने, अपने अपने बाप को क़ैद किया था; कौरवों ने, अपने भाई पाण्डवो से युद्ध किया था और

अकबर तथा अलाउद्दीन ने, चित्तौड़ में साके करवाये थे। चम्पापुरी के लिए भी ऐसा ही हुआ। एक लोभी व्यक्ति के कारण, चम्पापुरी की भी वही दशा हुई, जिसके कारण नादिरशाही और चंगेज़शाही प्रसिद्ध हैं।

चम्पापुरी के राज्य की सीमा, कौशम्बी ❀ के राज्य से मिलती ही थी। चम्पापुरी की तरह, कौशम्बी भी, धन-धान्य-समृद्ध, तथा व्यापार के लिए प्रसिद्ध नगरी थी। कौशम्बी के राजा का नाम सन्तानिक था, जो चम्पा के राजा दधिवाहन का सम्बन्धी था। दधिवाहन की रानी पदमावती और सन्तानिक की रानी मृगावती, एक ही पिता की पुत्री थीं, इस कारण दधिवाहन और सन्तानिक, आपस में साढू-साढू थे। यद्यपि सन्तानिक और दधिवाहन, साढू-साढू अवश्य थे, लेकिन दोनों के स्वभाव एवं विचारों में बहुत अन्तर था। दधिवाहन, सन्तोषी, शान्तिप्रिय तथा धार्मिकस्वभाव का बनगया था। उसका विचार सदा यह रहता था, कि किसी के द्वारा न तो मेरी प्रजा सताई जावे, और न मैं, किसी दूसरे की प्रजा को सताऊँ। उसकी राज्यलिप्सा बढ़ी हुई न थी। वह, स्वयं को प्रजा का सब से बड़ा सेवक मानता था, प्रजा को स्वयं के सुख का साधन नहीं समझता था। उसमें

❀ यह कौशम्बी—वह कच्छदेश की कौशम्बी नहीं है—दूसरी है।

मिथ्याभिमान भी नहीं था। किसी को कष्ट में डाल कर, बड़ाई प्राप्त करने, या वैभव बढ़ाने का विचार उसे स्वप्न मे भी नहीं होता था। वह जानता था, कि नाशवान् धन-सम्पत्ति के लिए किसी को कष्ट देना, महान् पाप है. और बड़ाई प्राप्त करने का साधन दूसरे को सुख देना है; दूसरे को दुःख देने से बड़ाई नहीं हो सकती, न ऐसा करने वाला व्यक्ति, यशस्वी ही बन सकता है।

दधिवाहन तो, उक्त विचार और स्वभाव का व्यक्ति था, लेकिन सन्तानिक का स्वभाव और उसके विचार, दधिवाहन के स्वभाव और विचार से भिन्न थे। सन्तानिक की राज्यलिप्सा, बढ़ी हुई थी। वह, दिन रात यही सोचा करता था, कि मेरा राज्य, किस उपाय से बढ़े! वह, राज्य-वृद्धि द्वारा यशस्वी बनने का, इच्छुक भी रहता था। उसको, धर्म-अधर्म या न्याय-अन्याय की अपेक्षा नहीं रहती थी, उसको तो केवल वैभव बढ़ाने और राज्य-सुख भोगने की ही इच्छा रहती थी। वह स्वयं को, 'प्रजा का सेवक नहीं मानता था, किन्तु प्रजा का शासक और उसका स्वामी मानता था। वह समझता था, कि राज्य और प्रजा तो राजा को सुख देने के लिए है; और राजा, इन सब के द्वारा सुख भोगने के लिए है। वह, मिथ्याभिमानी भी था। अपने मिथ्याभिमान की पूर्त्ति के लिए, वह, दूसरे के सुख, दुःख की किंचिन् भी चिन्ता नहीं करता था। वह, यश-बढ़ाई का मार्ग केवल राज्य-वृद्धि,

और जीवन को सुखी बनाने का मार्ग केवल भोगोपभोग ही मानता था। यद्यपि सन्तानिक की रानी मृगावती, प्रातः स्मरणीया सोलह सतियों में से एक थी, और वह सन्तानिक को सदा समझाया करती थी, कि यह राज्य-वैभव आपके साथ परलोक में न जावेगा, इसलिए आप इसके ममत्व में पड़ कर, न्याय-धर्म को मत भूलिऐ, किसी को कष्ट में मत डालिये, किन्तु न्याय और धर्म को आगे रख कर, इस राज्य को भार रूप मान, इसका काम करिये। इस प्रकार मृगावती, सन्तानिक को बारबार समझाया करती थी, लेकिन मदान्ध सन्तानिक को मृगावती की ये बातें, कब अच्छी लग सकती थी! वह, मृगावती को उत्तर दिया करता, कि यदि स्त्रियो की बातें पुरुष माने, तो थोड़े ही दिनों में पुरुषो का सर्वनाश ही हो जावे। धर्म और न्याय का बन्धन, गरीबो के लिए है। मुझ-सा समर्थ राजा, धर्म और न्याय के बन्धन में पड़ कर, राज्य-वृद्धि की कामना को निर्मूल नहीं कर सकता। राज्य पाने का लाभ, नित नये तथा उत्तमोत्तम सुख भोगना, अधिक से अधिक लोगो को अपनी अधीनता मे लाना और अधिक से अधिक कोष एवं भूमि को अपने अधिकार में करना ही है। जो राजा, अपने बाहुबल से राज्य नहीं बढ़ाता, किन्तु पैतृक राज्य पर ही सन्तोष करता है, राजवंश में उसका जन्म होने पर भी, वह, वीर नहीं है, किन्तु कायर है। इसी

प्रकार यदि राजा होकर भी कोई व्यक्ति सुख-भोग नहीं करता, तो उसका भी राज्य पाना न पाना समान ही है। मैं, कायर नहीं हूँ, जो न्याय तथा धर्म को लेकर बैठा रहूँ और स्वयं की वीरता एवं स्वयं के बाहुबल का उपयोग न करूँ।

इस प्रकार सन्तानिक और दधिवाहन, दोनों एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाव एवं विचार के थे। सन्तानिक की दृष्टि में, भरी-पूरी चम्पापुरी सदा खटका करती थी। न्याय-नीतिपूर्वक राज्य करने के कारण दधिवाहन की जो प्रशन्सा थी, वह उसे असह्य हो उठी थी। दधिवाहन की सुखसमृद्ध प्रजा, स्वयं की अधीनता में कैसे आवे और चम्पा के धन से कौशम्बी का कोष कैसे भरा जावे, इस बात की उसे सदा चिन्ता रहा करती थी। वह चाहता था, कि किसी भी तरह चम्पापुरी पर अपना अधिकार हो जावे, वहां का धन कौशम्बी के कोष मे आ जावे, चम्पापुरी का राज्य कौशम्बी के राज्य में मिल जावे, तथा दधिवाहन की जो बड़ाई है, वह मटियामेट हो जावे। इस इच्छा से प्रेरित होकर सन्तानिक, अपने मन्त्रियों से गुप्त मन्त्रणा भी किया करता। वह कहा करता, कि दधिवाहन धर्म ढोंगी है, उसके पास सेना भी थोड़ी है, इसलिए उस पर विजय प्राप्त करना, कुछ भी कठिन नहीं है। मुझे तभी प्रसन्नता हो सकती है, जब चम्पा पर मेरा झण्डा उड़े!

सन्तानिक के मन्त्रिगण, सन्तानिक की इस इच्छा को प्रोत्सा-

हित करते रहते थे। वे भी कहते रहते, कि हाँ, चम्पा को जीतना कुछ भी कठिन नहीं है, आप जब भी चाहे, बात-ही बात में चम्पा को जीत सकते हैं। मन्त्रियों को सहमत देख कर सन्तानिक, चम्पा पर चढ़ाई करने का बहाना सोचने लगा। वह, भीतर ही भीतर सैनिक तयारी बढ़ाता रहता और चम्पा पर किस बहाने से चढ़ाई की जावे, यह सोचा करता। वह विचारता था, कि बिना कोई कारण बताये चम्पा पर चढ़ाई करने से, लोगों में मेरी निन्दा भी होगी, लोकमत मेरे प्रतिकूल भी हो जावेगा और सम्भव है, कि उस दशा में मेरी सेना एवं प्रजा भी विरुद्ध हो जावे! इसलिए ऐसा बहाना ढूंढना चाहिए, जिसे आगे रख कर चम्पा पर चढ़ाई की जा सके और लोगों में मेरे लिए किसी प्रकार का अपवाद भी न हो।

अपनी बुरी कामना को पूर्ण करने के लिए, दूसरे पर किसी प्रकार का अपवाद लगाना और दूसरे को अपराधी बता कर इच्छित वस्तु पर अधिकार कर लेना, या दूसरे की हानि कर देना, फिर भी स्वयं निर्दोष बने रहना इसी का नाम राजनीति है। राजा लोग, ऐसी नीति का बहुत अधिक सहारा लेते हैं। यदि राजनीति को झूठ, कपट आदि कहा जावे, तो कोई हर्ज न होगा।

चम्पापुरी का राज्य हड़पने के लिये संतानिक और उसके मंत्री भी राजनैतिक चालें सोचने लगे। उधर दधिवाहन के हृदय

में किसी से युद्ध करने और किसी का राज्य जीतने की किंचित् भी भावना न थी, न किसी राजा की ओर से उसे यह भय ही था, कि कोई राजा मेरे पर चढ़ाई करके आवेगा! उसने, चंपा के आस पास के सभी राज्यों से, मित्रता पूर्ण सन्धि कर रखी थी, इसलिए वह, शत्रु की ओर से निश्चिन्त था। इन कारणों से उसने अपने यहां, राज्य का आन्तरिक प्रबंध हो सके इतनी ही सेना रख छोड़ी थी; किसी पर चढ़ाई करने, या किसी की चढ़ाई रोकने के लिए, उसके पास सेना न थी। राजा लोग, एक दूसरे के यहां का यह हाल तो गुप्त रूप से जानते ही रहते हैं, कि किसके पास कितनी सेना है, युद्ध-समय में काम आने वाली कौन कौन-सी सामग्री है तथा कितना कोष है और कैसी स्थिति है! गुप्तचरों द्वारा, दधिवाहन की सेना और उसके कोष आदि का सब समाचार, सन्तानिक को भी ज्ञात था। इस समाचार के आधार पर ही, सन्तानिक अपने मन्त्रियों से कहा करता, कि धर्म-ढोंगी दधिवाहन कमजोर है, लड़ाई से डरता है और उसके पास केवल इतनी सेना, तथा इतना कोष है! उसकी मुट्ठी भर सेना को जीतना कोई कठिन बात नहीं है। उसे जीतने इतनी सेना तो मेरे पास पहले ही थी, अब तो मैंने इतनी सेना और बढ़ाली है; इसलिए यदि कोई सरा राजा दधिवाहन की सहायता को भी आजावेगा, तो उसे भी पराजित ही होना पड़ेगा। पहले तो संधि

के अनुसार कोई राजा, मेरे विरुद्ध दधिवाहन का साथ दे ही नहीं सकता और कदाचित् किसी ने साथ दिया भी, तो उसको भी मुँह की ही खानी पड़ेगी। इसलिए चम्पा को जीतना तो कुछ कठिन नहीं है, लेकिन चम्पा पर चढ़ाई करने के लिए कोई बहाना अवश्य होना चाहिए !

जहाँ दो राज्य की सीमा मिलती है, वहाँ विवादास्पद कोई न कोई बात हुआ ही करती है। यदि उस विवादास्पद बात को निपटाया जावे तब तो वह सरलता से ही निपट जाती है और यदि उसे ही विशाल रूप दिया जावे, तो वह भयंकर युद्ध का कारण भी बन जाती है। राजा सन्तानिक ने, दधिवाहन से युद्ध करने के लिए, ऐसे ही किसी कारण का आश्रय लिया। उसने, युद्ध के लिए कौन-सा बहाना निकाला यह तो वर्णन नहीं मिलता, लेकिन उसने किसी नगण्य कारण को आगे रख कर चम्पा पर चढ़ाई करदी। दधिवाहन को यह संदेह भी न था, कि सन्तानिक कभी मुझ पर चढ़ाई कर देगा, न उसने सन्तानिक की सैनिक तैयारी की ओर ही ध्यान दिया था। उसे तो सन्तानिक की चढ़ाई का हाल तब मालूम हुआ जब सन्तानिक की सेना, युद्ध-घोषणा करती हुई चम्पापुरी के राज्य में प्रवेश कर आई।

रणभेरी बजाती हुई सन्तानिक की सेना, चम्पापुरी के राज्य में घुस आई और प्रजा को सताने लगी ! सीमा पर नियत दधि-

वाहन के सैनिक, सन्तानिक की सेना को न रोक सके। वे, दौड़-कर दधिवाहन के पास आये, और उसे संतानिक की चढ़ाई का समाचार सुनाया। साथ ही, संतानिक की सेना द्वारा सताई गई प्रजा भी, दधिवाहन के पास पुकारू आई। संतानिक की चढ़ाई का समाचार सुनकर दधिवाहन आश्चर्यचकित रह गया। वह सोचने लगा, कि सन्तानिक की और मेरी मित्रतापूर्ण सन्धि है, फिर भी उसने चढ़ाई क्यों की। उसकी इस अनायास चढ़ाई का, कोई कारण भी दिखाई नहीं देता! मेरी ओर से ऐसी कोई बात भी नही हुई है, जिसके कारण सन्तानिक को इस प्रकार अनायास चढ़ाई करनी पड़े और संधि-भंग करनी पड़े! सन्तानिक की चढ़ाई का, कुछ कारण समझ मे नहीं आता!

राजा दधिवाहन ने, उसी समय अपने मन्त्रियो की आवश्यक सभा बुलाई। दधिवाहन की आज्ञा पाकर, मन्त्रिगण, सभा मे उपस्थित हुए। सभा जुड़ जाने पर, दधिवाहन ने मन्त्रियों को सन्तानिक की चढ़ाई का वृतान्त सुना कर कहा, कि राजा सन्ता-निक मेरा संबन्धी है, उसके और मेरे बीच, मित्रता पूर्ण संधि भी है, ऐसा होते हुए भी, सन्तानिक ने चढ़ाई की और प्रजा को सता रहा है, इसका कुछ कारण समझ मे नहीं आता! इसलिए यह विचारना चाहिए कि संतानिक ने चढ़ाई क्यों की, और हमको क्या करना चाहिये!

दधिवाहन का कथन समाप्त होने पर, परराष्ट्र-सचिव कहने लगा—महाराज कौशम्बी में नियुक्त अपने यहां के राजदूत द्वारा, मुझे इस बात की सूचना बहुत पहले ही मिल चुकी थी, कि राजा सन्तानिक अपनी सेना बढ़ा रहा है और चम्पापुरी पर चढ़ाई करने वाला है। मैं, इस समाचार से सेना-सचिव को भी सूचित करतारहा हूँ।

सेना-सचिव—सन्तानिक को, अपनी सेना पर गर्व है। वह, अपनी सेना के भरोसे चम्पापुरी पर अपना झण्डा उड़ाने की इच्छा रखता है, लेकिन उसकी यह दुराशा, कदापि पूर्ण नहीं हो सकती। उसकी सेना का मुँह तोड़ने के लिए, हमारे पास सेना तैयार है। हमारी सेना किसी भी समय कम न हो, इसके लिए आज एक यह आज्ञा और जारी करदी जानी चाहिए, कि आवश्यकता पड़ने पर, प्रजा में से प्रत्येक व्यक्ति को सेना में भर्ती होना होगा!

प्रधानसचिव—सन्तानिक, किसी कारण विशेष से ही चढ़ाई करके नहीं आया है। उसकी बहुत दिनों से चल रही युद्ध की तयारी, इस बात को स्पष्ट बताती है, कि वह, निष्कारण ही चम्पा-पर चढ़ाई करने के लिए बहुत दिनों से आतुर था और अंत में, अब उसने चढ़ाई कर ही दी। इस समय ऐसा एक भी कारण नहीं था, जिससे सन्धि भंग करके इस प्रकार अनायास ही चढ़ाई करदी

जावे। सन्तानिक किसीकारण से ही चढ़ाई करके नहीं आया है, वह तो चम्पापुरी को अपने राज्य में मिलाने की दुर्भावना से प्रेरित होकर ही आया है। जिसमें इस प्रकार की दुर्भावना है, उसके लिए युद्ध का कोई कारण होना आवश्यक नही है। ऐसा व्यक्ति तो, साधारण बात को भी युद्ध का कारण बना या बता सकता है। यदि उसमें दुर्भावना न होती, किन्तु उसे किसी कारण विशेष से ही चढ़ाई करनी पड़ी होती तब तो वह चढ़ाई करने से पहले ही हमे उस कारण से सूचित करता, हमारे पास युद्ध-घोषणा की खबर भेजता और यदि उसने चढ़ाई कर भी दी होती, तब भी वह हमारी सीमा से बाहर ठहर कर हमारे पास अपना दूत भेजता, तथा जब हम युद्ध के कारण का समाधान न कर सकते, तभी वह हमारे राज्य मे घुसता। परन्तु उसने तो, सब कुछ इससे विपरीत ही किया है। उसने, युद्ध से पहले शान्ति के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया, न किसी को प्रयत्न करने का अवसर ही दिया। वह तो हमारे राज्य में इस प्रकार घुस आया, जैसे इस राज्य का स्वामी ही नहीं है या उसकी दृष्टि में, हम कमजोर है, इसी से उसने हमारी प्रजा को सता कर, हमे युद्ध के लिए चुनौती दी है। चम्पापुरी पर चढ़ाई करने के लिये सन्तानिक, बहुत दिनों से छोटी-छोटी बातों को बड़ा रूप दे रहा था और मैं उसकी ऐसी बातें महाराजा को बताकर उसकी दुर्भावना की ओर महा-

राजा का ध्यान खोचता रहता था, परन्तु महाराजा के हृदय में, सन्तानिक के प्रति किसी प्रकार का संदेह तक नही हुआ। महाराजा, उसके कार्य्यों की उपेक्षा ही करते रहे और मुझे यही आज्ञा देते रहे, कि शान्ति-रक्षा और विग्रह से बचने के लिए प्रत्येक मामले को निमटा लिया जावे। महाराजा की इस आज्ञा का पालन करने के लिए मैंने, सन्तानिक द्वारा उठाई गई किसी भी बात को ज्यादा नही बढ़ने दी, किंतु परराष्ट्रसचिव की सम्मति से, सभी बातें निपटा दी, लेकिन हमारी ओर से शान्ति के लिए जो नम्रता धारण की गई, उससे सन्तानिक का दुःसाहस बढ़ता ही गया और अंत मे उसने, हमको कमजोर समझ कर, हमारा राज्य हड़पने के लिए चढ़ाई करदी। जो हुआ सो हुआ, अब तो मुझे यही ठीक जान पड़ता है, कि उसकी सेना का मुकाबला किया जावे और उसकी युद्ध-कामना को सदा के लिए दबा दिया जावे।

युद्ध-सचिव—आपके कथन का, मैं भी समर्थन करता हूँ। जब संतानिक, बिना सूचना या शान्ति के प्रयत्न के ही अपने राज्य मे घुस आया है, तब उससे युद्ध न करना, किंतु उसे समझाने का प्रयत्न करना, व्यर्थ होगा। इसलिए हमारे वास्ते, युद्ध करना ही अच्छा हो सकता है, दूसरा कोई मार्ग ठीक नहीं है।

मन्त्रियों की सम्मति सुनकर, दधिवाहन कहने लगा—मंत्रीगण, नीति के अनुसार तो हमको सन्तानिक से युद्ध करने में

किंचित् भी विचार न होना चाहिये; जब वह स्वयं ही चढ़ आया है, तब उसके साथ युद्ध करना ही चाहिए, लेकिन केवल नीति के सहारे रहने से काम नहीं चलता। संतानिक, लोभ के वश हुआ जान पड़ता है, इसी से एक दम से चढ़ाई कर आया है। लोभी मनुष्य, औचित्य, अनौचित्य का विचार नहीं करता, वह तो, अपना लोभ पूरा करने की धुन मे रहता है। ऐसा व्यक्ति, दया-पात्र है। जब तक भी हो सके, संतानिक का लोभ मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा न करके, अपन भी युद्धके लिए तैयार होजावें, और उसका सामना करने को सेना सजादें, तो इससे धन-जन की कैसी भयंकर हानि होगी! मेरी या संतानिक की तुच्छ वासना की पूर्ति के लिए, हजारों-लाखों मनुष्यों की व्यर्थ ही हत्या होगी! हो सकता है, कि संतानिक के हृदय मे किसी ने हमारी ओर से भ्रम पैदा किया हो और इसी कारण वह, युद्ध करने को चढ़ आया हो! यदि मेरा यह अनुमान ठीक हो, तब तो उसका भ्रम मिटा कर, युद्ध की हानि से बचना चाहिये, लेकिन यदि मेरा यह अनुमान गलत हो और संतानिक के मनमें चम्पापुरी के राज्य का लोभ ही समाया हो, तो वह चम्पापुरी का राज्य चाहे लेले लेकिन युद्ध करके मनुष्यों की हत्या की स्थिति उत्पन्न करना, ठीक नहीं है, राज्य का जाना बुरा नहीं है, मनुष्यो का मारा जाना बुरा है। यदि मुझे राज्य छोड़ना पड़े, तो मैं, राज्य छोड़ने में तो प्रसन्नता

मानूँगा लेकिन युद्ध से प्रसन्नता न मानूँगा । इसके सिवा, यह भी तो नहीं कहा जा सकता, कि युद्ध करने पर विजय अपनी ही होगी । मैं युद्ध भी करूँ, उसकी और मेरी प्रजा को भेड़ बकरी की तरह कटवाऊँ भी, फिर भी यह निश्चय नहीं है, कि विजय अपनी ही होगी ! ऐसी दशा में, युद्ध से और हानि ही होगी, लाभ क्या होगा ।

दधिवाहन के कथन के उत्तर मे, प्रधान-मन्त्री कहने लगा—महाराज, राजनीति के अनुसार, आवश्यकता होने पर युद्ध करना ही पड़ता है। आवश्यकता के समय युद्ध न करने से, हानि होती है। युद्ध करना, क्षत्रियों का धर्म ही है। जो, किसी भी कारण से युद्ध से बचना चाहता है, युद्ध से भय करता है, अथवा युद्ध को टालना चाहता है, वह क्षत्रिय नहीं है। ऐसा व्यक्ति क्षत्रिय-जाति और क्षत्रिय-धर्म को कलंक लगाने वाला है। क्षत्रिय लोग, युद्ध का आह्वान करते हैं। वे घर मे पड़े २ मरने की अपेक्षा, शत्रुओं से युद्ध करते हुए मरना पसन्द करते हैं। ऐसा होते हुए भी आप, चढ़ाई करके आये हुए शत्रु से युद्ध करने के समय, इस तरह की बात क्यों कह रहे है, यह समझ मे नही आता। जब शत्रु, अपनी सेना द्वारा हमारे राज्य को मथ रहा है, हमारी प्रजा को सता रहा है, उस समय, युद्ध करने के बदले राज्य-त्याग को उद्यत होना वीरता नहीं, किन्तु कायरता है। आपने इस समय जो बातें कही हैं, वे

बातें वीरों के लिए अशोभनीय हैं। आप, इस प्रकार की बात मुख से भी मत निकालिये। आपकी ऐसी बातों से, सैनिकों में शिथिलता आना स्वाभाविक है। इस समय तो आपको ऐसी बातें कहनी चाहिए कि जिससे वीरों का उत्साह बढ़े और वे साहस पूर्वक युद्ध करें। इसलिए आप, राज्य-त्याग की भावना को अपने मे स्थान ही मत दीजिये किन्तु डरपोकपना त्याग कर, रणभेरी बजवा, युद्ध की तयारी करने की आज्ञा दीजिये। मुझे, सन्तानिक की सेना और उसके प्रबन्ध का सब भेद मालूम है। मेरे को यह विश्वास है, कि दृढ़ता तथा उत्साह पूर्वक युद्ध करने पर, अवश्य ही अपनी विजय होगी।

दधिवाहन—मन्त्री, यद्यपि राजनीति के अनुसार तो तुम्हारा कथन ठीक है—राजनीति के अनुसार, तुम्हे, ऐसे समय मे मुझ से इसी प्रकार की बातें कहनी चाहिए, लेकिन केवल राजनीति से, जीवन तथा प्रजा को कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती; अशान्ति ही बनी रहती है। इसलिए, राजनीति के साथ, धार्मिकता को और स्थान दो। धार्मिकता होने पर, ऐसी थोथी राजनीति को ही स्थान न मिलेगा, किन्तु फिर तो वही मार्ग अपनाया जावेगा जिससे प्रजा को अधिक से अधिक शान्ति मिले। उस दशा में, स्वार्थ-बुद्धि नही रह सकती। व्यर्थ ही दूसरें को कष्ट में डालने की भावना, उत्पन्न नहीं हो सकती। फिर तो वही नीति

होगी, जिससे किसी को कष्ट न हो, अपितु लोग कष्ट से बचें। मैंने, युद्ध से बचने के लिए जो कुछ कहा है, वह कायरता के वश होकर नहीं किंतु धार्मिकता से कहा है। मैं, कायर नहीं हूँ, वीर हूँ, लेकिन दूसरे को कष्ट में डालना ही, वीरता नहीं है। मैं युद्ध से भय नहीं खाता, दूसरे लोगों को कष्ट होगा, यह भय खाता हूँ। तुम समझते हो, कि महाराजा क्षत्रियोचित कर्त्तव्य से विरुद्ध बात कह रहे हैं, लेकिन मैंने जो कुछ कहा है, वह क्षात्र-धर्म की रक्षा के लिए ही। क्षत्रियों का धर्म युद्ध करना अवश्य है, लेकिन प्रजा की रक्षा के लिये। अपने स्वार्थ या अभिमान के लिये युद्ध करना और प्रजा को कष्ट में डालना क्षत्रियो का धर्म नहीं है। मैं, क्षात्रधर्म का पालन करने के लिए ही यह चाहता हूँ, कि युद्ध न हो। क्षत्रियों का धर्म, अन्याय मिटाना है, अन्याय बढ़ाना नहीं है और युद्ध द्वारा कैसा घोर अन्याय होता है, इसे तुम जानते ही हो। युद्ध के समय, निरापराध तथा शान्त प्रजा को लूट लिया जाता है, मार डाला जाता है और उसकी बहू बेटियो तक पर घोर अत्याचार किया जाता है। यह सब, स्वयं की दुर्भावना शान्त करने, अपनी लालसा पूरी करने और अपना अभिमान पुष्ट करने के लिए ही होता है, कोई दूसरे कारण से नहीं होता। प्रधान, युद्ध के समय प्रजा का क्या अपराध होता है, जो उस पर इस प्रकार अत्याचार किया जाता है? लेकिन यह बात, युद्ध के

समय नहीं देखी जाती। युद्ध के समय तो शत्रु-पक्ष की प्रजा को सताना, कष्ट देना, ही न्याय समझा जाता है और ऐसा करने को भी, क्षात्रधर्म का नाम दिया जाता है। लेकिन वास्तव मे, यह क्षात्रधर्म नहीं है। प्रजा की रक्षा के लिए युद्ध करना, क्षात्रधर्म है, प्रजा का नाश करने के लिए युद्ध करना, क्षात्रधर्म नहीं है।

प्रधान मन्त्री—सन्तानिक के सामने जितनी भी नम्रता रखी जावेगी, उसका दुःसाहस बढ़ता ही जावेगा। उसकी ओर से उठाई गई बातों में, अपनी ओर से नम्रता बताई गई, उसी का यह परिणाम है, कि आज उसकी भावना चम्पा का राज्य हड़पने की हो गई। यदि उसके सामने, पहले ही दृढ़ता से काम लिया गया होता, तो आज उसका यह दुःसाहस न होता। हमारे और उसके बीच मे, मित्रता की सन्धि थी। उस सन्धि को, उसी ने भंग किया है, इसलिए उसे दण्ड देना ही चाहिए। ऐसे समय में वीरता न रखने पर, राज्य नहीं चल सकता। इस समय यदि किसी उपाय से सन्तानिक को समझा लिया गया, तो इसके उदाहरण से दूसरे मित्र राजा भी, चम्पा पर चढ़ाई करने का साहस करेंगे और यदि इसका सामना करके इसे पराजित कर दिया तो फिर किसी का साहस, चम्पा की ओर आँख उठाने का न होगा। फिर हमारी धाक जम जावेगी, और हमारा राज्य सुरक्षित हो जावेगा। कहावत है—वैरी और सर्प को तो, उठते ही मार डालना चाहिए, अन्यथा

ये सदा, ही दुःख देते हैं। इसलिए मैं आपकी युद्ध न करने की बात से, सहमत नहीं हो सकता, न कोई दूसरा ही आपकी इस प्रकार की धार्मिकता को ठीक कह सकता है। सब लोग, इस धार्मिकता को कायरता ही कहेंगे। इसलिए आप, इस विषय में अधिक सोच विचार न करके, युद्ध का डंका बजवा दीजिये।

दधिवाहन—प्रिय प्रधान, तुम मेरी बातों का कारण कायरता समझ रहे हो, यह तुम्हारी भूल है। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह कायरता से नहीं, किन्तु क्षात्रधर्म की प्रेरणा से कह रहा हूँ। मैं चाहता हूँ, कि किसी भी तरह युद्ध न हो तो अच्छा। पहले तो, सन्तानिक की चढ़ाई का कोई स्पष्ट कारण नहीं जान पड़ता। हो सकता है, कि वह, किसी बात में भ्रम होने से ही चढ़ आया हो और उसका भ्रम मिटाने पर, वह अपनी इस चढ़ाई के लिए पश्चात्ताप करता हुआ, वापस हो जावे। यदि मेरा यह अनुमान ठीक हो, तो बिना इस बात का निर्णय किये, उसका अनुकरण करके, युद्ध द्वारा हजारों मनुष्यों की हत्या करा डालना, कैसे ठीक होगा! इसके लिए तो यही ठीक है, कि पहले उससे चढ़ाई का कारण पूछा जावे। यदि उसने कोई कारण बताया, और उस कारण का समाधान हो गया, तथा इस प्रकार युद्ध द्वारा होने वाली जनहत्या रुक गई, तब तो अच्छा ही है; और यदि वह, चढ़ाई का कोई कारण न बता सका, किन्तु यह ज्ञात हुआ कि

वह राज्यलोभ से ही चढ़ आया है, तो उसको न्याय तथा धर्म समझाया जावेगा। इन सब उपायो से यदि युद्ध टल गया तब तो अच्छा ही है, लेकिन यदि किसी भी उपाय से युद्ध न टला, युद्ध करना आवश्यक प्रतीत हुआ, तो फिर दूसरा विचार किया जावेगा! परन्तु युद्ध रोकने का प्रयत्न करने से पहले ही युद्ध के लिए तयार हो जाना, और युद्ध ठान देना, ठीक नहीं है।

प्रधान मन्त्री—सन्तानिक, निश्चय ही चम्पापुरी को अपने राज्य में मिलाने के लिए चढ़ाई कर के आया है, इसलिए वह, चढ़ाई का कुछ भी कारण बता देगा और ऐसी दशा में, उसका ध्यान न्याय, नीति या धर्म की ओर दिलाने से क्या होगा? वह, न्याय-धर्म का विचार क्यों करेगा? मुझे तो, इस प्रयत्न से कोई लाभ नही दिखता! हाँ, यह हानि अवश्य है, कि विलम्ब करने से हमारी सेना में शिथिलता, और उसकी सेना में उत्साह की वृद्धि होगी; जो युद्ध में, हमारे लिए ठीक नहीं है।

दधिवाहन—यदि सन्तानिक ने भ्रम वश चढ़ाई की होगी, तब तो भ्रम मिटने पर, वह वापस लौट ही जावेगा, और यदि उसने निश्चय-पूर्वक चढ़ाई की होगी, तथा न्याय-धर्म पर विचार न करेगा, तो कम से कम कहने के लिए तो रह जावेगा, कि सन्तानिक अन्याय-पूर्वक चढ़ आया था, और उसको समझाने के लिए इस इस तरह का प्रयत्न किया गया था, फिर भी वह

नहीं माना। इसलिए मै तो, एक बार युद्ध रोकने का प्रयत्न करना उचित समझता हूँ। श्री कृष्ण यह जानते थे, कि 'दुर्योधन, पॉच ग्राम देकर भी पॉडवों से सन्धि न करेगा, उससे भूमि प्राप्त करने के लिए युद्ध करना आवश्यक है', फिर भी वे, दुर्योधन को समझाने के लिए गये ही थे, और वह केवल इसीलिए, कि सब लोगों को यह मालूम हो जावे, कि युद्ध रोकने के लिए किस प्रकार प्रयत्न किया गया, फिर भी दुर्योधन नही माना। इसी तरह चाहे सन्तानिक माने या न माने, अपने को तो प्रयत्न करना ही चाहिए।

प्रधानमन्त्री—सन्तानिक को समझाने के लिए, आपने किसे भेजना ठीक समझा है?

दधिवाहन—तुम्हारी दृष्टि में, मैं, युद्ध और शत्रु से भय खाता हूँ, इसलिए यह बताने के लिए, कि मै कायर नहीं, किन्तु वीर हूँ, अकेला ही घोड़े पर बैठ कर, सन्तानिक के शिविर में जाऊँगा और उसे समझाऊँगा।

प्रधानमंत्री—जान पड़ता है, कि इस समय विजयलक्ष्मी सन्तानिक के ही साथ है, इसीसे आपने ऐसा विचार किया है! अकेला शत्रु अपनी सेना के बीच आ जावे, और उसे घेर लिया जावे, विजय के लिए इससे अधिक चाहिये ही क्या। जब आप संतानिक की सेना मे जावेंगे और वह भी, असहाय तथा अकेले—

तब क्या वह, आपको बन्दी न बना लेगा ? वापस आने भी देगा ? यह तो आपने, स्वयं को उसके हाथ बंदी बनाने और उसे विजय दिलाने का ही मार्ग सोचा है !

दधिवाहन—यह, तुम्हारा भ्रम है। मैं, उसके हाथ कदापि बंदी नहीं बन सकता। मैं, कायर नहीं हूँ, जो सन्तानिक मुझे बन्दी बना ले ! प्रधान, तुम विश्वास रखो, भय मत करो। अब, सभा विसर्जन करो। मै, अभी ही संतानिक के पास जाता हूँ। वहाँ से लौट कर, फिर विचार करेंगे।

यह कह कर दधिवाहन ने, सभा विसर्जन कर दी और साथ ही, सेवक को घोड़ा सजाने की आज्ञा दी। मंत्रिगण इसी विषयक बातचीत करते हुए अपने-अपने घर चले गये और दधिवाहन, अपने महल को गया।

लूट !
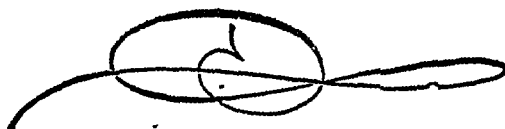
मनुष्य मे, अच्छी या बुरी, जो भी भावना पूर्णतया स्थान कर लेती है, उसको निकालने के लिए चाहे जितना प्रयत्न किया जावे, फिर वह भावना, उसमें से—मरने तक भी—नही निकलती। हाँ, जब तक किसी भी भावना का पूर्ण-रीत्या आधिपत्य नहीं हुआ है, वह व्यक्ति, उस भावना से पूरी तरह प्रभावित नही हो गया है, उसके रंग में रंगा नहीं गया है, तब तक तो प्रयत्न, घटना या स्थितिवश उस भावना का बदला जाना सम्भव है, लेकिन पूरी तरह आधिपत्य हो जाने पर, किसी भावना का निकालना, सर्वथा असम्भव है। फिर वह भावना, न तो समझाने पर ही बदलती है, न स्थिति या घटनावश ही। भगवान अरिष्टनेमि में, ब्रह्मचर्य पालने की दृढ़ भावना थी। उनकी इस भावना को बदलने के लिए, समुद्रविजय, श्रीकृष्ण आदि ने अनेको प्रयत्न किये, परन्तु उन्हे टस से मस न कर सके। राजा मेघरथ मे, अभयदान की दृढ़ भावना स्थान कर चुकी थी, इस-

लिए वे, एक कबूतर के लिए भी अपना शरीर देने को तय्यार हो गये, लेकिन रानियों, मन्त्री और प्रजा के समझाने पर भी उन्होंने कबूतर को तुच्छ नहीं माना, और उसकी रक्षा के लिए शरीर दिया ही। गजसुकुमार में, संयम लेने की दृढ़ भावना स्थान कर चुकी थी, इसलिए श्रीकृष्ण का तीन खण्ड का राज्य भी, उन्हे संयम से रोकने मे समर्थ नहीं हुआ। इसी तरह के और भी अनेकों उदाहरण हैं।

यह तो, शुभ या उत्तम भावना की बात हुई। अशुभ या नीच भावना के लिए भी, यही बात है। नीच भावना भी यदि दृढ़ हो चुकी है, उसने पूरी तरह अधिकार कर लिया है, तो फिर वह भी, यावज्जीवन नहीं निकलती। काल सूरीया कसाई में, हिंसा की भावना दृढ़ रूप से जमी हुई थी; इसलिए राजा श्रेणिक के अनेक प्रयत्न करने पर भी, वह अहिंसक नहीं बना। कपिला दासी के हृदय में, साधुओं को दान न देने की भावना पूरी तरह जम गई थी, इसलिए वह भावना, किसी भी तरह नहीं बदली। कंस में, अन्याय-अधर्म की भावना घर कर चुकी थी, वह भावना, उसमें से मरते समय तक नहीं निकली। दुर्योधन में, पाण्डवों से विरोध करने की भावना दृढ़ हो चुकी थी, जिसे श्रीकृष्ण, विदुर, और भीष्म आदि कोई भी न पलटा सका। मतलब यह, कि एक बार जो भी भावना पूरी तरह जम जाती है, वह भावना फिर

किसी भी तरह, कैसे भी प्रयत्न करने पर—नहीं निकलती। यह बात दूसरी है, कि किन्हीं असाधारण महापुरुष की कृपा से, बुरी भावना तो निकल जावे और उसके स्थान पर अच्छी भावना आ जावे, लेकिन अच्छी भावना तो, असाधारण दुष्ट पुरुष के मिलने पर भी—उसके द्वारा किये गये अनेक अत्याचार सहने पर भी—नहीं निकलती। सन्तानिक में, चम्पा का राज्य लेने की भावना पूरी तरह घर कर चुकी है, और दधिवाहन में, धर्म की दृढ़ भावना स्थान कर चुकी है। इसलिए यह देखना है, कि इन दोनो की भावना भी बदलती है, या नहीं।

सभा-विसर्जन करके दधिवाहन, घोड़े पर सवार होकर, अकेला ही सन्तानिक के पास चला। दधिवाहन को अकेला ही सन्तानिक की सेना में जाते देखकर, राज-कर्मचारी और प्रजा हाहाकार करने लगी, लेकिन दधिवाहन ने किसी की बात पर ध्यान नही दिया। वह, अकेला ही सन्तानिक के शिविर में, सन्तानिक के सामने जा पहुँचा। दधिवाहन को, अकेला और अचानक आया देखकर, सन्तानिक प्रसन्न हुआ। यह विचार कर उसका अहंकार बढ़ गया, कि दधिवाहन डर कर मेरी शरण आया है। लेकिन इस विचार से उसे निराशा भी हुई, कि दधिवाहन मेरी शरण आ गया है, इसने मेरे से युद्ध नही किया है, इसलिए अब मैं, चम्पापुरी का अपनी इच्छानुसार विध्वन्स न करा सकूँगा।

अब ऐसा करने पर लोगों में मेरी महान् निन्दा होगी और मेरा ऐसा कार्य, कलंक के योग्य होगा !

सन्तानिक के सामने पहुँच कर, दधिवाहन कहने लगा— महाराजा, आपके और मेरे बीच मित्रतापूर्ण सन्धि है, आप मेरे सम्बन्धी हैं, अब तक एक दूसरे से मिलते रहे हैं, तथा अनेक बार साथ ही भोजन किया है, फिर आज ऐसा कौन-सा कारण उपस्थित हुआ, जो आपने एक दम से चढ़ाई कर दी ? हमारी ओर से, ऐसी कौन-सी बात हुई है, जो आपको ऐसा करना पड़ा ? यदि आप निष्कारण ही चढ़ाई करके आये हो, तो क्या आपके लिए ऐसा करना उचित है ? क्या आपका यह कार्य, क्षत्रियोचित है ? क्षत्रियों का काम, शान्ति रखना और प्रजा को सुख देना है, अशान्ति फैला कर प्रजा को कष्ट में डालना, क्षत्रियों का काम नहीं है। ऐसा होते हुए भी, आपने, युद्ध द्वारा अशान्ति फैलाने का विचार क्यों किया ? मेरी ओर से, आपकी प्रजा को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं दिया गया, आपके राज्य की भूमि नहीं दबाई गई, न सन्धि-विरुद्ध कोई काम ही किया गया। फिर आपने, चढ़ाई क्यों कर दी ? क्या आपका ऐसा करना, न्याय है ? मैं, न्याय-नीति-पूर्वक चम्पा की प्रजा का पालन कर रहा हूँ। यदि मेरी ओर से यहाँ का प्रजा को कष्ट होता, और उस दशा में, प्रजा की रक्षा के लिए आपने चढ़ाई की होती, तब भी

आपकी चढ़ाई को अनुचित न कहा जाता, लेकिन मेरी प्रजा को, मेरी ओर से किसी भी तरह का कष्ट नहीं है! फिर आपने, किस विचार से चढ़ाई की? आप, ज़रा न्याय की ओर दृष्टि-पात कीजिये। अन्याय पर उतारू होकर, युद्ध द्वारा मनुष्यों की हत्या का कारण मत बनिये; किन्तु अब तक आपका और हमारा जैसा सम्बन्ध रहा है, वैसा ही सम्बन्ध बनाये रखिये। जिस प्रकार आप युद्ध के लिए चढ़ आये, उसी प्रकार मैं भी युद्ध के लिए चढ़ाई कर सकता था; परन्तु मैंने, एक बार आप से अकेले में मिलकर बात-चीत कर लेना उचित समझा। इसीलिए मै, आपके पास आया हूँ!

इस प्रकार सन्तानिक के सामने दधिवाहन ने, न्याय और धर्म की बहुत दुहाई दी, लेकिन युद्ध-पिपासु सन्तानिक के हृदय पर उसका कोई प्रभाव नही पड़ा। उसके हृदय मे तो, चम्पापुरी पर आधिपत्य करने का लोभ समाया हुआ था; इसलिए वह दधिवाहन की बातो को कैसे मान सकता था! सन्तानिक के पास दधिवाहन की बातों का कोई उचित उत्तर भी न था; इसलिए उसने चढ़ाई का कारण बताने आदि में पड़ना उचित न समझा; किन्तु उसने दूसरे ही मार्ग का सहारा लिया। वह दधिवाहन से कहने लगा, कि युद्ध के समय इस प्रकार न्याय पूछने का काम कोई आप ऐसा कायर या धर्म-ढोंगी ही कर सकता है, वीर तो

ऐसा कदापि नहीं कर सकता। युद्ध के समय न्याय अन्याय का प्रश्न कैसा ! उस समय तो सामने आये हुए शत्रु से युद्ध करना ही-न्याय है; परन्तु आपमे युद्ध करने की क्षमता नहीं है, आप वीर नहीं किंतु कायर हैं इसी से न्याय-अन्याय पूछने के लिए आये हैं। लो, मैं न्याय भी बताये देता हूँ। क्षत्रियों के लिए युद्ध करना, देश जीतना, तथा राज्य बढ़ाना, यही न्याय है और इसके विरुद्ध सब अन्याय है। हम राजा हैं, क्षत्रिय हैं हमारे न्याय-अन्याय का निर्णय तो युद्ध में ही हो सकता है।

दधिवाहन—तब तो जान पड़ता है कि आप लोभ-वश युद्ध करने को चढ़ आये है; लेकिन आपके अनुचित लोभ के कारण कितने मनुष्यो का रक्त बहेगा, जरा इसे भी सोच लीजिये। अपनी तृष्णा को शांत करने के लिए किये गये युद्ध की कदापि प्रशंसा नहीं हो सकती। ऐसे युद्ध की प्रशन्सा तो, भाट या भाँड लोग ही भले करें, दूसरा कोई नही कर सकता। इसके सिवा आप राजा हैं। जब आप मे ही तृष्णा का इतना आधिक्य रहेगा, तब दूसरे की तो बात ही क्या है। राजा में तृष्णा होने पर, प्रजा में कैसी तृष्णा होगी और उस दशा में, कितनी भयंकर अशान्ति रहेगी, इस पर विचार कीजिये।

सन्तानिक—मुझे संतोष की आवश्यकता नहीं है। उसे तो मैंने, आप ऐसे कायरों तथा धर्म-ढोंगियों के लिये ही रहने दिया

है। मैं अपने लिए तो यही समझता हूँ कि सन्तोषी राजा नष्ट हो जाता है। जिनमे वीरता नही है, वे कायर लोग ही संतोष लेकर बैठते है। हम मे, यदि बल, वीर्य और साहस है, तो हम, सारी पृथ्वी का राज्य लेने का प्रयत्न कर सकते है। इसमें अन्याय का कोई प्रश्न नहीं हो सकता। हमारे लिए तलवार ही न्याय है और नवीन नवीन राज्य प्राप्त करना ही हमारा धर्म है। हममे शक्ति है, इसी से हम, चम्पा का राज्य लेने के लिए चढ़ाई करके आये है। यदि आपमे शक्ति है तो हमारा सामना करिये और यदि शक्ति नही है, तो आत्म-समर्पण करके हमारी अधीनता स्वीकार कीजिये। यदि इन दोनों बातो में से एक भी नही कर सकते, तो जंगल को भाग जाना चाहिये था, इस प्रकार न्याय की दुहाई देने के लिए आकर क्षत्रियकुल को कलंक तो न लगाना चाहिए था। हम आपकी तरह कायर नही है, जो न्याय अन्याय के विचार से, प्राप्त शक्ति का उपयोग न करें!

मन्त्रियों आदि के रोकने पर भी दधिवाहन इस आशा से सन्तानिक के पास आया था, कि प्रयत्न करने से युद्ध रुक जावेगा; लेकिन सन्तानिक के उत्तर से उसको यह निश्चय होगया कि सन्तानिक पूरी तरह लोभ-ग्रस्त है, चम्पा पर अपना आधिपत्य करने की इच्छा से ही यह चढ़ाई करके आया है, और इसीलिए मेरे कथन का इस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ है; किन्तु और

उल्टी बातें करके यह, जैसे मुझे युद्ध के लिए उत्तेजित करता है। संतानिक ने, दधिवाहन से जिस तरह की बाते की और जैसे अपमान-पूर्ण शब्द कहे थे, उनसे, यदि कोई दूसरा होता तो अवश्य ही उत्तेजित हो उठता और अपने बलाबल का निर्णय भूल कर युद्ध ठान देता, लेकिन दधिवाहन, बुद्धिमान, दूरदर्शी और धर्मज्ञ था। इसलिए उसने सोचा, कि यह मुझे युद्ध के लिए उत्तेजित कर रहा है, फिर भी इसकी बातों से उत्तेजित होकर मुझे, विवेक की उपेक्षा न करनी चाहिए। मुझे प्रत्येक बात के विषय मे, गम्भीरता-पूर्वक विचार कर लेना चाहिये। अविचार-पूर्वक उत्तेजित होकर किये गये कार्य का परिणाम, सदा ही पश्चात्ताप-पूर्ण होता है। सन्तानिक प्रचंड सेना लेकर युद्ध की पूरी तैयारी से आया है। यह, भारी कर द्वारा प्राप्त प्रजा की गाढ़ी कमाई के धन का अधिकान्श भाग, अपनी सैनिक तैयारी मे ही लगाता रहा है, लेकिन मैने तो प्रजा से केवल उतना ही कर लिया है, जितना उसकी रक्षा के लिए आवश्यक था। इसलिए मेरे यहां, न तो इसकी सेना का सामना करने योग्य सेना ही है, न युद्ध संबन्धी दूसरी तयारी ही है। यद्यपि मेरी प्रजा कायर नहीं है, किंतु वीर है, और राज्यभक्त भी है, लेकिन वह, युद्ध-शिक्षा पाये हुये सन्तानिक के सैनिकों से विजय प्राप्त नहीं कर सकती। ऐसी दशा में, युद्ध करके अनावश्यक जन-हत्या से कोई लाभ नहीं है। इसने मुझे

दूसरा मार्ग अधीनता स्वीकार करने का बताया है, परन्तु इस मार्ग को कोई भी प्रजा-हितैषी और स्वतन्त्रा प्रिय वीर स्वीकार नहीं कर सकता। ऐसा करने पर मुझे, इसकी आज्ञानुसार इसके हित के लिए और इसकी धन-पिपासा शान्त करने के लिए प्रजा पर अत्याचार करना होगा, तथा उस पर भारी टेक्स लगाना होगा फिर तो मैं नाम-मात्र का राजा होऊँगा। प्रजा की रक्षा, और उसका हित करने की सत्ता, मेरे पास न रहेगी। इन सबके सिवा अब तक मैं इसकी समानता का राजा रहा हूँ, यह मुझे और मैं इसे मित्र मानता रहा हूँ, तथा मित्र एवं संबंधी होने के कारण यह मेरा आदर करता रहा है, लेकिन अधीनता स्वीकार करने पर तो, इस व्यवहार के स्थान पर स्वामि-सेवक का व्यवहार होगा। इन बातो को दृष्टि में रखकर, इसका बताया हुआ तीसरा मार्ग—वनगमन—ही अच्छा है। इस मार्ग को अपनाने पर इस तरह के किसी भी झंझट का भय नहीं रहता।

इस तरह विचार कर, और बन जाने का निश्चय करके दधिवाहन ने, स्वयं के घोड़े पर सवार होते हुए कहा—'अच्छा महाराज, यदि आपकी इच्छा चम्पा पर अपना अधिकार करने की है तो आप मजे से चम्पा पर अधिकार करिये। अब तक चम्पा का राज्य और वहाँ की प्रजा का पालन मैंने किया, अब आप करिये। मैं सोचा करता था कि मैं वृद्ध हुआ हूँ, मेरे कोई पुत्र

भी नहीं है, केवल एक कन्या ही है इसलिए प्रजा का भार किसे सौंपूँगा ! और यदि यह भार कन्या पर डालूँगा तो वह :खी हो जावेगी। मुझे इस प्रकार की चिंता थी, लेकिन आपने चम्पा की प्रजा की रक्षा का भार स्वयं पर लेकर मुझे चिन्तामुक्त करदिया,- यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है। यह कहते हुए महाराजा दधिवाहन, घोड़े पर बैठ कर जंगल को चल दिया।

दधिवाहन को, इस तरह कह कर जंगल की ओर जाते देख सन्तानिक बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने, उसी समय अपने सेनापति आदि को बुलाया और उनसे कहने लगा कि मेरी विजय तो बिना युद्ध किये ही हुई है। मेरी चढ़ाई से भय खाकर, अभी दधिवाहन यहाँ आया था। मेरी और उसकी जो बातचीत हुई, उसका सार यही है कि वह चंपा का राज्य मुझे सौंप कर स्वयं जंगल को भाग गया है। इसलिए अब तो युद्ध की आवश्यकता ही नहीं रही। अब तो चम्पा में जाकर, वहाँ अपना झंडा फहरा देना है और वहाँ के कोष आदि पर, अधिकार कर लेना है। मेरा भाग्य प्रबल है, विजय लक्ष्मी मेरी सहायता को सदा तयार रहती है, इसी कारण, बिना एक भी सैनिक कटाये—केवल मेरी धाक से- ही मुझे, चम्पा का राज्य प्राप्त हुआ है।

यह कह कर सन्तानिक, जैसे ही चुप हुआ, वैसे ही सेनापति लोग उसकी प्रशन्सा करने लगे। वे कहने लगे कि वास्तव में

आपका प्रताप ऐसा ही है। शत्रुगण, आपकी धाक से ही आप के सामने नतमस्तक हो जाते हैं। आपकी सुशिक्षित और विशाल सेना से युद्ध करने का साहस तो किसी का हो ही नहीं सकता। यह बड़े हर्ष की बात है कि चम्पा का राज्य विना श्रम के ही प्राप्त हो गया, लेकिन साथ ही आपने एक गलती भी की है। आप ऐसे चतुर और राजनीतिज्ञ से, इस प्रकार की भयंकर भूल होना बडे ही आश्चर्य की बात है। नीति मे कहा है कि शत्रु को जीवित तो रहने ही न देना चाहिये। चाहे प्रबल शत्रु हो, या निर्बल, जीवित रहने पर, वह समय समय पर उसी प्रकार कष्ट दिया करता, है जिस प्रकार शरीर में चुभा हुआ कांटा दुःख देता है, इसलिये अपने शत्रु को उसी प्रकार आमूल नष्ट कर देना चाहिये जिस प्रकार शरीर में चुभा हुआ कांटा निकाल कर फेंक दिय जाता है। आपने, दधिवाहन को जीवित ही जाने देकर, इस नीति का पालन नहीं किया। दधिवाहन, आपकी विशाल सेना के सन्मुख स्वयं को निर्बल समझ कर, इस समय तो चुपचाप वन को चला गया है लेकिन हमारा अनुमान है कि वह चुप न रहेगा। कौन क्षत्रिय ऐसा होगा, जो अपना राज्य जाने पर चुप चाप बैठ जावे, और उसको पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न न करे। दधिवाहन भी, क्षत्रिय है। क्षत्रिय लोग, सांप की तरह जीवन भर वैर नहीं भूलते। वे, समय देख कर नम्र चाहे हो जावें।

चाहे अधीनता स्वीकार करलें अथवा अपना राज्य शत्रु को सौंप दें, लेकिन उनके हृदय में वैर की ज्वाला तो धधका ही करती है, जिसे शान्त करने के लिये वे गुप्त या प्रकट प्रयत्न करते ही रहते हैं। दधिवाहन इस क्षत्रिय-स्वभाव के प्रतिकूल व्यवहार कैसे कर सकता है! क्या विश्वास है, कि वह स्वयं सैन्य-संग्रह द्वारा, अथवा अन्य राजाओं की सहायता द्वारा पुनः अपना राज्य प्राप्त करने की चेष्टा न करे! इस तरह आपने दधिवाहन को जीवित जाने देकर अपने लिये एक कांटा बाकी रहने दिया है। यदि उस समय हम लोग उपस्थित होते तो या तो दधिवाहन को कैद कर लेते, अथवा मार डालते। उसको स्वतन्त्रता पूर्वक जीवित कदापि न रहने देते।

सेनापति और मन्त्रियों का यह कथन सुन कर सन्तानिक कहने लगा—वास्तव में उस समय मुझे इन वातों का ध्यान नहीं रहा। मैंने दधिवाहन को जाने देकर अवश्य ही भूल की है; लेकिन वह अभी ही गया है, इसलिये अधिक दूर न गया होगा। सैनिकों को भेजा जाने पर, सम्भव है कि वह मिल जावे।

सन्तानिक की आज्ञानुसार सेनापति और मन्त्रियों ने, तत्क्षण कुछ घुड़सवार सैनिकों को दधिवाहन की खोज में दौड़ाया, और उनसे कह दिया, कि जब तक हो सके दधिवाहन को जीवित ही पकड़ लाना, किन्तु यदि ऐसा सम्भव न हो, तो

उसका सिर काट लाना, लेकिन वह बच कर न जाने पावे। आज्ञा पाकर सैनिक लोग, दधिवाहन की खोज में दौड़े, परन्तु उन्हे दधिवाहन का पता न मिला; इससे निराश होकर लौट आये।

सैनिको के लौट आने पर, सेनापति लोग सन्तानिक से कहने लगे कि वह कहीं छिप गया होगा। इसीसे हाथ नहीं आया। खैर, देखा जावेगा, सावधानी पूर्वक उसका पता चलाया जावेगा, तथा वह क्या करता है, कहां जाता है आदि उसकी गति-विधि की भी निगरानी रखी जावेगी। अब तो अपने को, अविलम्ब चम्पा पर अधिकार कर लेना चाहिये। हां, एक बात आवश्यक है। सैनिक लोग, इसी आशा से प्राणों की बाजी लगा कर आये हैं, कि युद्ध के पश्चात् चम्पा लूटी जावेगी, और हमें द्रव्य प्राप्त होगा। सैनिको की यह आशा पूरी करने के लिये, चम्पा की लूट तो होनी ही चाहिए।

सेनापतियो के इस कथन के उत्तर में सन्तानिक कहने लगा, कि—जब युद्ध ही नहीं हुआ, तब लूट कैसी! क्या निष्कारण ही लूट होगी? ऐसा करना तो घोर अन्याय माना जावेगा!

सेनापतिगण—युद्ध न होने का कारण दधिवाहन की कायरता है, इस में सेना का क्या अपराध है? दधिवाहन की कायरता के कारण सेना, लूट के माल से क्यों वंचित रहे। सेना

तो, युद्ध के लिये तैयार ही है, और यदि दधिवाहन अभी आ फिर—किसी की सहायता से चढ़ाई करके सामना करने आया; तो सेना उससे लड़ेगी ही। ऐसी दशा मे सेना को निराश करना उचित नहीं होगा। यदि सेना निराश हो जावेगी, तो उसके द्वारा विद्रोह होने का भय रहेगा; वह, किसी भी समय अपना साथ छोड़ कर अपने को संकट में डाल देगी, और यदि दधिवाहन चढ़ाई करके आया तो उससे भी न लड़ेगी। इसलिये सैनिकों को रुष्ट करना ठीक नहीं। यदि अधिक नहीं, तो तीन दिन के लिऐ तो यह लूट होनी ही चाहिए, कि तीन दिन तक सेना जिस तरह चाहे चम्पा को लूटे। हम तो, इसी में हित समझते हैं, आगे आप जैसा उचित समझें और जो आज्ञा देंगे, उसी के अनुसार कार्य किया जावेगा।

सेनापति लोगों की बातें सुन कर सन्तानिक, क्षण भर के लिए विचार में पड़ गया। अन्त में, सेनापति लोगों के अनुरोध से उसने—सेना विद्रोह कर देगी, इस भय से—अनिच्छा पूर्वक यह स्वीकार किया, कि "अच्छा, तुम लोग जैसा कहते हो, वैसा ही किया जावेगा।"

इधर सन्तानिक की सेना मे तो, यह हुआ। उधर सन्तानिक के पास से रवाना होकर दधिवाहन ने, स्वयं के किसी सीमा-रक्षक सैनिक द्वारा—अथवा प्रजा में से किसी व्यक्ति द्वारा—मन्त्रियों

के पास अपने वनगमन की सूचना भेज दी। साथ ही यह भी कहला दिया, कि सन्तानिक की सेना बहुत है, उससे युद्ध करके अपनी सेना, किसी भी दशा मे विजय प्राप्त नहीं कर सकती, इस कारण, युद्धकरके उसकी सेना द्वारा, अपनी सेना और प्रजा की हत्या कराना, उचित नही है। अब तक चम्पा की रक्षा मैने की, लेकिन अब सन्तानिक, वहाँ का राजा बनकर स्वयं पर प्रजा की रक्षा का भार लेना चाहता है, इसलिए अब से, मेरी जगह सन्तानिक को राजा मानना !

दधिवान की भेजी हुई यह खबर, जैसे ही चम्पा में पहुँची, वैसे ही वहाँ तहलका मच गया। मन्त्रियो सहित सब लोग, दधिवाहन को कायर कह कर उसकी निन्दा करने लगे और विचारने लगे, कि अब क्या करना चाहिए ! अन्त में सब ने मिलकर यही निश्चय किया, कि सन्तानिक के साथ युद्ध करना चाहिए, फिर चाहे परिणाम कुछ भी हो। राजा की तरह अपन लोग भी कायर होकर चम्पा पर सन्तानिक का अधिकार हो जाने दें, यह ठीक नही। अपने पास, सेना है। युद्ध न करने पर, सेना का क्या उपयोग होगा ! इसलिए सन्तानिक से दृढता-पूर्वक युद्ध करके चम्पा की रक्षा करनी चाहिए। राजा तो ऐसा कायर निकला, कि वह यहाँ लौट कर भी नहीं आया। पहले तो हम सब की सम्मति के विरुद्ध, राजा को शत्रु-सेना में जाना ही न चाहिए था

और कदाचित गया भी था तो फिर लौट कर तो आना चाहिए था! लेकिन वह तो, सन्तानिक की सेना से भय खाकर, उधर ही जंगल को भाग गया। प्रजा की रक्षा का प्रयत्न करना तो दूर रहा उसने अपनी रानी और राजकुमारी की रक्षा की भी कोई चिन्ता नहीं की! राजा ने तो कायरता दिखाई ही, लेकिन अपने को कायरता न दिखा कर, सन्तानिक से युद्ध करना चाहिए और उसकी युद्ध कामना को सदा के लिए मिटा देना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके प्रधानमन्त्री ने, युद्ध की घोषणा कर दी। सेना को सुसज्जित करके उसे युद्ध के लिए उत्साहित किया। उससे कहा, कि चम्पा की रक्षा का भार तुम्हीं लोगों पर है। अपने महाराजा यहाँ पर नहीं है। चम्पा की रक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व, अपने पर ही है। इस लिऐ तुम सब वीरता-पूर्वक ऐसा युद्ध करो कि सन्तानिक को परास्त होकर लौटना ही पड़े! इस प्रकार सेना को उत्साहित करके, प्रधानमन्त्री और सेनापति ने, सेना को, युद्ध के लिए नगर से बाहर निकाला। उधर सेना सहित सन्तानिक, चम्पा पर अपना झन्डा फहराने के लिए, चम्पा की ओर रवाना हुआ। उसको विश्वास था, कि मैं जाते ही चम्पा पर अधिकार कर लूँगा और वहाँ अपना झण्डा उड़ा दूँगा। सेना भी, इसी आशा से बढ़ती हुई आ रही थी; कि हम लोग; जाते ही चम्पा में लूट मचा देंगे और हमें, विपुल धन-राशि प्राप्त होगी।

इस प्रकार सेना-सहित सन्तानिक, सोचता कुछ था, लेकिन चम्पा पहुँचने पर सब को, अपनी आशा से विपरीत स्थिति का सामना करना पड़ा। उन्होंने देखा, कि नगर का फाटक बन्द है, तथा चम्पा की सेना युद्ध के लिए तयार है। यह देखकर, सन्तानिक ने भी अपनी सेना को युद्ध करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सन्तानिक की सेना, दधिवाहन की सेना से युद्ध करने लगी।

दधिवाहन की सेना ने, सन्तानिक की सेना पर, उग्र आक्रमण किया। वह, वीरता-पूर्वक घोर युद्ध करने लगी। रणभूमि, रक्त से लाल हो गई। जहाँ तहाँ, रुण्ड मुण्ड ही दिखाई देने लगे। थोड़ी देर के लिए तो दधिवाहन की सेना ने सन्तानिक की सेना के छक्के छुड़ा दिये, लेकिन सन्तानिक की विशाल सेना के सन्मुख, वह मुट्ठी भर और बिना नायक की सेना कब तक ठहर सकती थी! सन्तानिक की सेना से परास्त होकर, चम्पा की सेना रणभूमि छोड़ कर भागी। चम्पा की सेना के भागते ही सन्तानिक ने स्वयं को विजयी माना। उसने, सेना को फाटक तोड़ कर नगर मे घुसने और नगर को लूट लेने की आज्ञा दी!

सन्तानिक की आज्ञा पाकर, विजय-मदमत्त उसकी सेना ने, चम्पापुरी का फाटक तोड़ डाला। वह, चम्पापुरी मे घुस कर प्रजा पर उसी तरह टूट पड़ी, जैसे भूखा बाज, पक्षियों पर टूट पड़ता है। उसके द्वारा, चम्पा-निवासी लोगों की सम्पत्ति लूटी

जाने लगी। उसके इस कार्य में बाधक होने वाला, मौत के घाट उतारा जाने लगा। प्रजा, जिधर भी मार्ग मिला, उधर ही प्राण बचा कर भागी। चम्पापुरी में, एक मात्र सैनिक राज्य हो गया। उस समय चम्पापुरी की क्या दशा थी, यह बात विक्रम सम्वत् १९१४ के गदर का इतिहास पढ़ने से सहज ही जानी जा सकती है। गदर के समय जो कुछ होता है, वही हाल चम्पापुरी और वहाँ की प्रजा का भी हुआ। उस समय का वीभत्स दृश्य और करुण-क्रन्दन, पाषाण-हृदय को भी द्रवित करने वाला था, परन्तु संतानिक और उसकी सेना के वज्र-हृदय पर, उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ। उस त्राहि-त्राहि और हाहाकार में भी, संतानिक की सेना, अमानुषिक कृत्य करती जा रही थी, और नर-पिशाच संतानिक, उसे देख देख कर प्रसन्न हो रहा था।
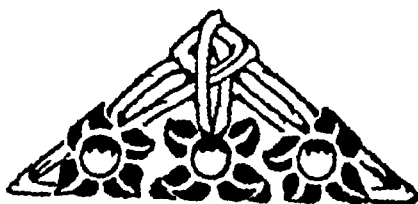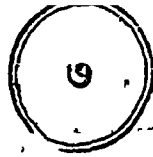
उपदेश

शान्ति-समर

शान्ति-समर मे कभी भूल कर धैर्य नहीं खोना होगा।
वज्र-प्रहार भले सिर पर हो किन्तु नहीं रोना होगा॥
अरि से बदला लेने का, मन बीज नहीं बोना होगा।
घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा॥
देश-दाग को रुधिर-वारि से हर्षित हो धोना होगा।
देश-कार्य की भारी गठड़ी सिर पर रख ढोना होगा॥
आँखें लाल, भवें टेढ़ी कर क्रोध नहीं करना होगा।
बलि-वेदी पर तुझे हर्ष से चढ कर कट मरना होगा॥
नश्वर है नर-देह, मौत से कभी नहीं डरना होगा।
सत्य-मार्ग का छोड़, स्वार्थ-पथ पर पैर नहीं धरना होगा॥
होगी निश्चय जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा।
मातृभूमि के लिये, हर्ष से जीना या मरना होगा॥

उपदेशक का मार्ग, बहुत कठिन है। तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलना तो सरल भी कहा जा सकता है। लेकिन सच्चे उपदेशक का मार्ग, उससे भी कठिन है। उपदेशक को, अनेक विरोधी विचारों, एवं कार्यों का सामना करना पड़ता है। उन सबको शमन करने—उन सबको मिटाने—उन पर विजय प्राप्त करने, और अपने उपदेश का प्रभाव दूसरे पर डालने के लिए, उसे, प्रत्येक त्याग-पूर्ण तथा सम्भव उपाय से, काम लेना होता है। उपदेशक का बल, त्याग है। जिस उपदेशक में, जितना अधिक त्याग है, या जो उपदेशक, जितना अधिक त्याग कर सकता है, उसी के उपदेश का प्रभाव भी पड़ता है। जिसमें त्याग नहीं है, जो त्याग-रहित थोथा उपदेश देता है, उसका उपदेश भी, व्यर्थ ही होता है; और जो उपदेशक त्याग में बढ़ा हुआ है, जो आवश्यकता के समय अपने प्रिय प्राणों को भी त्याग सकता है, उसका उपदेश भी, निश्चय ही सफल होता है। फिर चाहे वह उपदेश, उपदेशक की मृत्यु के पश्चात् ही सफल क्यों न हो, लेकिन सफल अवश्य होता है। देशभक्त महाराणा प्रताप, और उनके भाई शक्तसिंह में जंगल में, एक शिकार के लिये झगड़ा होगया था। महाराणा प्रताप कहते थे, कि यह शिकार मैंने लगाया है और शक्तसिंह कहते थे कि मैंने लगाया! बस इसी विवाद ने, भयंकर कलह का रूप धारण कर लिया।

दोनो ने, अपनी-अपनी तलवारें खींचलीं; और तलवार द्वारा, इस विवाद को मिटाने के लिये तयार होगये। उस समय वहाँ, राज-पुरोहित भी उपस्थित था। राज-पुरोहित ने, दोनों भाइयों को वहुत उपदेश दिया, धर्म-ग्रन्थों के अनेक शिक्षा-वाक्य सुनाये, और इस प्रकार कलह मिटाने का वहुत प्रयत्न किया, लेकिन उस भीषण समय मे, उसका उपदेश दोनो में से किसी को भी शान्त न कर सका। दोनो ही अपने को शिकार लगाने वाला कहते थे, और दोनों ही इस विवाद को, तलवार द्वारा मिटा लेने के लिए तयार थे, दोनो की तलवारें, म्यान से बाहर हो चुकी थीं। दोनो ही, एक दूसरे पर वार करने के लिए उतारू थे। पुरोहित ने देखा, कि इस समय मेरा मौखिक उपदेश काम न देगा; इस समय तो त्याग की ही आवश्यकता है, और वह भी साधारण त्याग की नहीं, किन्तु इन दोनों का हृदय वदला देने वाले त्याग की। उसने सोचा, कि मैंने इस राज-वंश का नमक खाया है। यह शरीर, इस राज कुल के अन्न से ही पला है! ये दोनों भाई वीर है, अत. इस आपस के कलह मे दोनो ही मारे जावेगे यदि इस समय मैं, एक महान् त्याग पूर्ण उपदेश द्वारा इन दोनों को वचा सकूँ, तो इन दोनो भाइयों की रक्षा भी होगी, और मैं भी इस राज-परिवार के ऋण से मुक्त हो जाऊँगा!

इस प्रकार विचार कर पुरोहित, युद्ध के लिए तत्पर प्रताप

और शक्त के बीच में खड़ा होगया। पहले तो उसने यही कहा, कि आप दोनों अपनी अपनी तलवार मुझ पर चलाइये, परन्तु जब उसने देखा, कि ये दोनों भाई किसी भी तरह नहीं मानते हैं और मुझे एक ओर छोड़ कर लड़ मरने को उद्यत हैं, तब उसने छुरा निकाल कर स्वयं के पेट मे मार लिया! पुरोहित के उस बलिदान ने, किसी भी तरह न मानने वाले शक्तसिंह और प्रताप सिंह को कँपा दिया। वृद्ध पुरोहित के मृत शरीर ने, दोनो को आगे बढ़ने से रोक दिया। दोनों की तलवारे, एक दूसरे पर आघात करने के बदले म्यान में छिप गई, और इस प्रकार दोनों भाइयों का तात्कालिक कलह मिट गया।

यह तो इतिहास की बात हुई। धर्म-कथाओं में भी, कुछ रूपान्तर से ऐसी अनेक घटनायें पाई जाती हैं। उनमें से, धारिणी के बलिदान की घटना, अनुपम है। अपना उपदेश सफल करने के लिये धारिणी ने, स्वयं का जैसा बलिदान किया, और उपदेशकों को जो मार्ग बताया उसका उदाहरण किसी भी साहित्य में नहीं मिल सकता।

चम्पा की सेना, रण-क्षेत्र त्याग कर भाग गई। सन्तानिक की सेना, फाटक तोड़कर चम्पा में घुस गई। सन्तानिक की क्रूर आज्ञा के फलस्वरूप चम्पापुरी, गुण्डों द्वारा लूटी जानेवाली अनाथ-स्त्री के समान लूटी जाने लगी। चम्पापुरी में अराजकता

का ताण्डव हो रहा था। गरीब प्रजा, या तो सन्तानिक के सैनिकों की रक्त-तृषा शान्त करने के लिए, सदा के वास्ते धरा-शायी हो रही थी, या भाग कर किसी जगह अपने प्राण बचा रही थी।

चम्पापुरी में, एक ओर तो यह सब कुछ हो रहा था, और दूसरी ओर राजमहल में बैठी हुई महारानी धारिणी, वसु-मति को कुछ दूसरा ही उपदेश दे रही थी। धारिणी को, दधि-वाहन के वन-गमन का समाचार मिल चुका था, फिर भी उसने स्वाभाविक धैर्य नहीं त्यागा। फिर जब उसे चम्पापुरी की लूट और प्रजा पर होने वाले अत्याचार का पता लगा तब भी उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं हुआ। सेवकों ने, उसे यह भी जता दिया, कि दुष्ट सन्तानिक की सेना कुछ ही देर मे राजमहल को भी लूटने वाली है, तब भी वह नहीं घबराई। इन सब कारणो से उसका हृदय किंचित भी विचलित नहीं हुआ। वह तो, वसुमति को उपदेश ही देती रही। वास्तव में वीर-हृदय लोग, वर्त्तमान की विपत्ति से घबराते नहीं है, किन्तु वे दृढ़ता-पूर्वक भविष्य का विचार करते हैं।

धारिणी के सामने, वसुमति बैठी हुई है, और धारिणी उसे शिक्षा दे रही है। वह कह रही है—पुत्री, तेरे स्वप्न का एक भाग तो सत्य हो रहा है। चम्पापुरी दुःखसागर में डूब रही है!

तेरे पिता, वन को चले गये हैं, इसलिए अब मेरा और तेरा रक्षक या सहायक कोई नहीं रहा है; लेकिन इस कारण घबरा मत जाना! अपने को धर्म की जो शिक्षा मिली है, उसको कार्य रूप में परिणत होने का समय तो यही है। धर्म, यह शिक्षा देता है, कि आपत्ति के समय धैर्य रखो। अपन इस शिक्षा का पालन करती हैं, या नहीं, इसकी कसौटी तो यह विपत्ति का समय ही करेगा। यदि इस समय हमने धैर्य त्याग दिया तो हमारे किये कुछ भी न होगा। अधीर और घबराया हुआ व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिए इस समय धैर्य मत त्यागना, किन्तु धैर्य-पूर्वक इस बात का विचार करना, कि स्वप्न का शेष भाग कैसे सत्य हो। तेरे लिए यह समय घबराने का नहीं है, किन्तु यह विचार कर प्रसन्न होने का है, कि मेरे द्वारा महान् कार्य होने के लिए ही, मेरे स्वप्न का एक भाग सत्य हो रहा है। तेरे पिता, किसी उच्च विचार से ही जंगल को चले गये होंगे। उनके लिए किसी प्रकार की उचित अनुचित बातें कह कर बैठ रहना, ठीक नहीं है। वे गये तो गये, अपन धर्म की गोद में बैठी हैं। चाहे और सब कुछ चला जावे, लेकिन धर्म न जावे तो सब अच्छा ही होगा। जो चम्पापुरी आज नष्ट हो रही है, वह फिर कभी बस भी सकती है, और अभी थी उससे भी अच्छी हो सकती है, परन्तु यदि धर्म चला गया,

तो गया हुआ धर्म वापस न आवेगा। यदि अपने में धर्म रहा, तो तेरे स्वप्न का शेष भाग भी सत्य होगा; अर्थात् तू दुःखसागर से चम्पापुरी का उद्धार भी कर सकेगी; लेकिन यदि विपत्ति के कारण धर्म छूट गया, तो फिर मेरे या तेरे किये कुछ भी न होगा तू, यह समझ कर अपने हृदय में कभी भी कायरता मत लाना, कि हम स्त्री हैं, स्वाभावतः दुर्बल हृदय हैं, अतः हम क्या कर सकती है! वास्तव मे स्त्रियां, पुरुषों से बढ़कर होती हैं। स्त्रियों की शक्ति से ही, पुरुप काम कर सकते हैं, और करते हैं। पुरुषों को जन्म देने वाली भी, स्त्रियां ही हैं; इसलिए अपने हृदय में कायरता मत लाना! यह समय सन्तानिक को बुरा कहने, या उसे कोसने का भी नहीं है। इस समय तो धैर्यपूर्वक विचार करना चाहिए, कि दुःखसागर में पड़ी हुई चम्पापुरी का उद्धार कैसे हो!

धारिणी, इस प्रकार वसुमति को उपदेश दे रही थी, इतने ही मे वहाँ, सन्तानिक की सेना का एक रथी आ गया। चम्पापुरी को लूटते-लूटते, उसने विचार किया, "कि प्रजा को लूटने से जो कुछ मिलेगा, वह बहुत थोड़ा होगा। यदि राजमहल को लूटूँ, तो अवश्य ही विशाल सम्पत्ति हाथ लगेगी। दधिवाहन की सेना तो, भाग ही गई है, इसलिए राजमहल को लूटने में, किसी प्रकार की बाधा भी नही हो सकती; और राजमहल की सम्पत्ति

उसे ही प्राप्त हो सकेगी, जो वहाँ पहले पहुँचेगा। इसलिए मैं जाकर, राजमहल को ही लूटूँ। वहाँ जो सम्पत्ति मिलेगी, वह मूल्यवान होगी और भारी भी न होगी।" इस प्रकार विचार कर वह, नागरिकों को लूटना छोड़, सीधा राजमहल को आया। राजमहल की रक्षा के लिए नियुक्त सेना, पहले से ही भाग गई थी। राजमहल, बिलकुल ही अरक्षित था। वहाँ रहने वाले सेवक भी, प्राणों के भय से या तो भाग गये थे, या छिप गये थे। राजमहल में प्रवेश करने में रथी को किसी भी प्रकार की बाधा नहीं हुई। वह, रथ को खड़ा करके सरलता पूर्वक राजमहल में घुस गया। वहां अनेक प्रकार के रत्न देखकर, रथी बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपने भाग्य की सराहना करने लगा, और मन में कहने लगा, कि मुझे अच्छी बुद्धि हुई, जो मैं यहाँ आगया; नहीं तो मुझे ऐसी सम्पत्ति प्राप्त न होती। जान पड़ता है, कि मेरे ही सद्भाग्य से यह युद्ध हुआ है। यदि युद्ध न हुआ होता, तो यह विपुल सम्पत्ति मुझे कैसे प्राप्त होती!

इस प्रकार प्रसन्न होता हुआ रथी, रत्न लेने का विचार कर ही रहा था, इतने ही में उसकी दृष्टि, धारिणी पर पड़ी। धारिणी को देखकर वह थकित-थकित-सा रह गया। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, वह, सामने पड़े हुए रत्नों को भूल गया। वह सोचने लगा, कि यह स्त्री दधिवाहन की स्त्री जान पड़ती है! वास्तव में

दधिवाहन बड़ा ही भाग्यशाली था, जिसके यहाँ, अप्सराओं को भी लज्जित करनेवाली यह स्त्री है। इस सौन्दर्य की प्रतिमा के संमुख, ये रत्न कंकर-पत्थर के समान त्याज्य हैं। इन सब रत्नों को तो, इसके एकही अंग पर न्योछावर किया जा सकता है। मैं, इन पत्थर-रत्न और इस स्त्री-रत्न में से किसे लूँ? किसको महत्व दूँ! वास्तव में इस चैतन्य रत्न के संमुख, इन कंकर-पत्थर का महत्व देना, मूर्खता ही होगी। मुझे उचित है, कि मैं, अप्सराओं का मान मर्दन करने वाली इस स्त्री को ही लूँ। यदि इस स्त्री ने, मुझे अपना प्रेम-भाजन बना लिया, तो मैं अवश्य ही भाग्यशाली होऊँगा! लेकिन यह, राजरानी है। क्षत्रिय कन्या है। मेरी प्रार्थना पर, सरलता से ही मेरे साथ हो जावे, यह सम्भव नहीं। इसलिए इसको, भय द्वारा अपने अधीन करना चाहिए। भय के सिवा, और किसी उपाय से इसको वश में नहीं किया जा सकता। चाहे कुछ हो, चाहे सर्वस्व जावे, परन्तु यह स्त्री-रत्न प्राप्त हो जावे, तो मेरा युद्ध करना सफल है। किसी भी तरह यह मेरी प्रेयसी बन जावे, तो अच्छा।

इस प्रकार विचार कर रथी, तलवार निकाल कर, धारिणी के सामने, कृतान्त के समान जा खड़ा हुआ। वह धारिणी को नग्न तलवार बताकर कहने लगा, कि—उठो, और मेरे साथ चलो! अब यहाँ तुम्हारा कुछ नहीं है। तुम्हारा पति दधिवाहन

जंगल को भाग गया है। अब चम्पापुरी मे महाराजा सन्तानिक का राज्य है, और यहाँ की सब सम्पत्ति, सैनिको की है। यहाँ जितनी भी सम्पत्ति है, वह सब, सैनिको द्वारा लूटी जा रही है। मेरे हाथ, सम्पत्तिरूपा तुम लगी हो, इसलिए उठो, और बाहर रथ खड़ा है, उसमें मेरे साथ चुपचाप बैठ जाओ। यदि आना-कानी की, या विलम्ब किया, तो कुशल नही है। यह तलवार देख लो! इसके द्वारा, धड़ से मस्तक जुदा कर दूँगा। इस तलवार ने, जिस तरह चम्पापुरी के अन्य अनेको मनुष्य का रक्त पिया है, उसी तरह तुम्हारा भी रक्त पीलेगी!

रथी की क्रूरता भरी आँखें देखकर, धारिणी समझ गई, कि इस समय इसके हृदय में दया नहीं है। यह, मार डालने में जरा भी विलम्ब नही करेगा! वह सोचने लगी, कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए? यदि मैं इसके साथ नहीं जाती हूँ, तो यह अभी मारे डालता है। मैं, पुत्री वसुमति को जो शिक्षा दे रही थी, वह शिक्षा पूरी तरह दे भी नहीं पाई, और यह आ खड़ा हुआ। अब इसके साथ न जाने से, और इसकी तलवार द्वारा इसी समय मर जाने से, वसुमति को शेष उपदेश न दे सकूँगी; और यदि साथ जाती हूँ, तो यह सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा करेगा! परन्तु इसके साथ न जाकर, इसी समय इसकी तलवार से मरने में कुछ लाभ नहीं है। इस प्रकार का मरण

भी, कायरतापूर्ण होगा। जब मुझे मरना ही है, तब मेरा शेष काम पूरा करके, वीरता-पूर्वक ही क्यो न मरूं। इस समय इसके साथ जाने से, एक तो मै वसुमति को शेष उपदेश दे लूंगी, दूसरे वसुमति को जो उपदेश दूंगी, उसको सफल करने के लिए, उसके सामने कोई आदर्श भी रख सकूंगी। रही सतीत्व-रक्षा की बात। यह रथी, इस समय क्रूर बना हुआ है, लेकिन इसकी आंखो से प्रकट है, कि यह वीर है। इस वीर को मै जो उपदेश दूगी, उसका प्रभाव इस पर अवश्य ही पड़ेगा। वीर को सुधारना, कोई कठिन कार्य नही है। मेरे उपदेश से यदि यह सुधर गया, तब तो मुझे मरना भी न पड़ेगा, तथा इसका सुधार भी हो जावेगा; परन्तु कदाचित यह नही सुधरा; तो सतीत्व-रक्षा के लिए प्राण-त्याग का जो मार्ग मेरे सामने इस समय है, वह, उस समय भी रहेगा ही! जिस तरह अभी प्राण देकर सतीत्व बचा सकती हूं, उसी तरह फिर भी बचा सकूंगी! परन्तु इस समय मरने मे, और इसके साथ जाकर, इसके न सुधरने पर मरने में बहुत अन्तर होगा। अभी प्राण देने पर, मैं न तो वसुमति को शेष शिक्षा दे सकूंगी, न इस वीर रथी को सुधारने का प्रयत्न ही कर सकूंगी। लेकिन इसके साथ जाने पर, वसुमति को शेष शिक्षा भी दे सकूंगी इसमे दृढ़ता भी भर सकूंगी, इसे स्वयं का सतीत्व बचाने के लिए मार्ग भी बता सकूंगी, इस वीर रथी को

सुधारने का प्रयत्न भी कर सकूँगी, और अन्त में जब सतीत्व की रक्षा न देखूँगी, तब प्राण त्याग कर, वसुमति के सन्मुख बलिदान का एक आदर्श भी रख सकूँगी। इसलिए, इस रथी की तलवार से इस समय मरने की अपेक्षा, इसके साथ जाना ही अच्छा है। यह वीर है, इसीसे इस के सामने पड़े हुए रत्नों को न लेकर मुझे ले रहा है। वीर के सिवा, और किसी से ऐसा नहीं हो सकता। इस वीर में, इस समय विकार आ गया है, इससे यह अन्धा हो रहा है। इस समय इसकी बुद्धि, किसी दूसरी बात को ग्रहण नहीं कर सकती, इसलिए अभी तो इसका कथन मान लेना ही अच्छा है। यदि मेरे उपदेश से यह सुधर गया, तो मुझे, एक वीर भ्राता का लाभ भी होगा।

इस प्रकार विचार कर धारिणी, वसुमति को लेकर उठ खड़ी हुई। उसके मुख पर, न तो चिन्ता थी, न दुःख था। वह सदा की ही भाँति प्रसन्न थी। वसुमति को साथ लिये धारिणी, महल से बाहर को चली। तलवार लिये हुए रथी, उन दोनो के पीछे चला। रथी के आगे आगे वसुमति और धारिणी रथ के पास आई, तथा रथी के कहने पर, उसके रथ में उसी प्रकार निः संकोच बैठ गई, जिस प्रकार भाई के साथ जाने मे, या भाई के रथ में बैठने में, बहन को संकोच नही होता। पुत्री-सहित धारिणी को, इस प्रकार निः संकोच भाव से रथ में बैठती देख कर, रथी

बहुत प्रसन्न हुआ। वह, कभी तो अपने भाग्य की प्रशंसा करता था, कभी भय-प्रदर्शन की नीति की बड़ाई करता था, और कभी अपनी वीरता-भरी आकृति, सुन्दर शरीर, तथा युवावस्था की सराहना करता था। कभी सोचता था, कि यदि मैंने इसे मरण का भय न बताया होता, तो यह स्त्री-रत्न, मेरे हाथ न लगता। अच्छा हुआ, कि मैने किसी और उपाय से काम लेने के बदले, तलवार को ही आगे किया। कभी सोचता था, कि मेरा भाग्य ही अच्छा है, इसी से सब अच्छा हो रहा है। यदि मेरा भाग्य अच्छा न होता, तो प्रजा का लूटना छोड़ कर यहाँ आने, तथा इसे अपनाने आदि की बुद्धि ही मुझमे क्यो होती! कभी सोचता था, कि मेरी विरता-भरी आकृति, सुन्दर शरीर, और युवावस्था पर यदि यह मुग्ध हुई, तो यह आश्चर्य की बात नही है। इसका पति तो भाग ही गया है, इसलिये इसे, किसी न किसी पुरुष की शरण लेनी ही होती। ऐसी दशा मे, इसे, मुझसा दूसरा पुरुष कौन मिल सकता था! मेरे साथ चलने में, इसने अपना स्वार्थ देखा है, इसी लिए यह, प्रसन्नता पूर्वक मेरे साथ चलने को तयार हो गई, और मेरे रथ में बैठ गई है। मैं तो यही कहता हूँ, कि यह लड़ाई और लूट, मेरे भाग्य से ही हुई है। यदि युद्ध न होता, या युद्ध होने पर भी, सन्तानिक, चम्पा-पुरी को लूटने की आज्ञा न देता, तो मुझे यह सौन्दर्य की

प्रतिमाएँ कैसे प्राप्त होतीं। ये दोनों, कैसी अनुपम सुन्दरी हैं! इनमें से एक तो अभी, अविकसित कली के समान ही है! वह समय धन्य होगा, जव मैं इनका आलिङ्गन करूंगा।

इस प्रकार स्वयं की कल्पनाओं से उन्मत्त बना हुआ रथी, रथ की चारों ओर पर्दा डाल कर, और रथ लेकर चला। उसने सोचा, कि इन सुन्दरियो को लेकर, चम्पापुरी में होकर जाना ठीक नहीं है। क्योंकि, यदि सन्तानिक—या दूसरा कोई—इन्हें देख लेगा तो फिर ये मुझसे छीनली जावेगी और सन्तानिक के महल की शोभा वढ़ाने वाली हो जावेगी। इन सुन्दरियों को देख कर,किसका मन स्थिर रह सकता है! इसलिए इन्हें लेकर, न तो चम्पापुरी में होकर जाना ही ठीक है, न एक दम से कौशाम्वी को जाना ही ठीक है। अभी तो इन्हें लेकर, जंगल में जाना ही अच्छा है। वहाँ, किसी भी उपाय से, इस एक रमणी से सुख भोग कर सकूँगा, इसे मेरी पत्नी वना सकूँगा, और तभी इनको लेकर कौशाम्वी जाना ठीक होगा। जिसमें फिर किसी प्रकार की गड़-वड़ भी न होगी, न ये, मेरे विरुद्ध किसी से किसी प्रकार की शिकायत ही करेंगी। ये, दो हैं। मुझे पहले इन में से एक को ही अपनी वनाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब एक मुझे स्वीकार कर लेगी, मेरी वन जावेगी, तव दूसरी तो मेरी है ही!

धारिणी और वसुमति छिन जावेंगी, इस भय से, तथा

अपनी अधीरता मिटाने, अपनी कामवासना पूरी करने के लिए रथी, रथ को सीधा जंगल की ओर ले चला। मार्ग में वह, अनेक कल्पनाएँ करता जा रहा था, और उनके साथ बहता भी जा रहा था। उस कामान्ध को, सब अनुकूल ही अनुकूल बातें सूझ रही थीं, प्रतिकूल बातो की ओर तो उसका ध्यान भी नहीं जाता था।

रथी, इस प्रकार कल्पना-जगत में उन्मत्त विचर रहा है, और उधर रथ में बैठी हुई धारिणी, वसुमति को उपदेश-जगत में भ्रमण करा रही है। वह, वसुमति से कह रही है—पुत्री, तू सोचती होगी, कि पिता जी हमको छोड़ कर न मालूम कहाँ चले गये, और यह दुष्ट, हमको न मालूम कहाँ लिये जा रहा है! अब हमारी, न मालूम क्या दशा होगी! लेकिन इस प्रकार के विचार होना कायरता की बातें है। ऐसे विचार, कायरों में ही हो सकते हैं। भविष्य में तेरे को महान् कार्य करना है, इसलिए तेरे में वीरता होनी चाहिए, किंचित् भी कायरता न होनी चाहिए। जिसमे वीरता है, वह किसी भी समय, और किसी भी दशा में घबराता नहीं है, न दूसरे का सहारा ही देखता है। दूसरे का सहारा देखने वाला, स्वयं को दूसरे के आश्रित समझने वाला, कायर है। वीर तो, अपनी रक्षा स्वयं ही करता है, किसी दूसरे के द्वारा अपनी रक्षा नहीं चाहता! इसलिए तू तेरे पिता के

जाने का किंचित् भी दुःख मत कर। तेरे पिता तो गये ही, लेकिन मैं भी तेरे साथ अधिक समय तक न रह सकूँगी। देख, तेरे सामने ही मैं, इस रथी के कहने पर, इसके रथ मे बैठ कर चली आई। इसी तरह, न मालूम किस समय तेरा साथ भी छोड़ दूँगी। यदि तू अपने में वीरता रखेगी, तब तो तुझे अकेली रहने से किंचित् भी दुःख न होगा, तुझे जो कार्य करने हैं, वे कार्य भी कर सकेगी, तथा तेरे को जो स्वप्न आया था, उस स्वप्न का शेष भाग भी सत्य कर सकेगी, लेकिन यदि तू अपने पैरों पर खड़ी न रही, स्वावलम्बिनी न बनी, तो तेरे किये कुछ भी न होगा, और तू, दुःख करके ही मर जावेगी। इसलिए तेरे को, इस बात का दुःख तो होना ही न चाहिए, कि मैं अकेली रह गई।

पुत्री वसुमति, अब मै तेरे को कुछ ऐसा उपदेश देना चाहती हूँ, जो तेरे जीवन का साथी, तेरे कार्य का सहायक, और स्वप्न के शेष भाग को सत्य करने का साधन होगा। यदि तू मेरे उपदेश के अनुसार ही कार्य करती रही, तो तू स्वयं तो सुखी रहेगी ही, साथ ही तेरे में इतना अधिक सुख होगा, कि जो दूसरे को भी दे सकेगी! मैं आशा करती हूँ, कि मेरे उपदेश के विरुद्ध तू, किसी भी दशा में व्यवहार न करेगी!

देख वसुमति, तूने जो स्वप्न देखा था, उसका एक भाग सत्य हो गया। चम्पापुरी, दुःखसागर मे डूब रही है। उस पर,

एक महान् कलंक लगा है। निष्कारण ही उसकी छाती पर सहस्रों लक्षो मनुष्यों का रक्त बहा है। शान्त प्रजा की सम्पत्ति, लूटी गई है। उसे, पीड़ा पहुँचाई गई है, और अधिकांश लोगों को, जान तक से मार डाला गया है। जन्मभूमि चम्पापुरी पर, यह एक घोर कलंक है। इस कलंक का लगना ही, चम्पापुरी का दुःखसागर मे डूबना है। चम्पापुरी, तेरी जन्मभूमि है। तेरा यह शरीर वही के अन्न-जल से बना है। तू. वहीं उत्पन्न हुई और इतनी बड़ी हुई है। चम्पा की भूमि की तू, चिरऋणी है। यदि उस पर लगे हुए कलंक को तूने न मिटाया, तो तेरा जीवन धिक्कार-योग्य माना जावेगा। इसलिए, जन्मभूमि चम्पापुरी पर लगे हुए कलंक को मिटाने का भार, तू अपने पर समझ। चम्पा-पुरी पर लगे हुए कलंक को मिटाना ही दुःखसागर में डूबी हुई चम्पापुरी का उद्धार है, और ऐसा होने पर ही तेरे स्वप्न का शेष-भाग सत्य होगा।

बेटी, जन्मभूमि चम्पापुरी का उद्धार करने के लिए—उस पर लगा हुआ कलंक मिटाने के लिए—तुझे महान् युद्ध करना होगा। युद्ध करने का मतलब, तू वैसा ही युद्ध मत समझ लेना, जैसा युद्ध चम्पापुरी में हुआ है, और जिसके कारण चम्पापुरी पर कलंक लगा है। चम्पापुरी में जो हिंसात्मक युद्ध हुआ, और उससे जो हानि हुई, वह तूने देखी ही है। इस प्रकार का युद्ध

करना पशुता, है। ऐसा युद्ध तो पशु भी करते है। बल्कि मनुष्यो का ऐसा युद्ध पशुओं के युद्ध से भी बुरा है। पशु किसी कृत्रिम अस्त्र शस्त्र की सहायता नही लेते। वे उन्ही साधनो से युद्ध करते हैं, जो उन्हे प्रकृति-दत्त प्राप्त है। हाँ, वे यह गल्ती अवश्य करते हैं, कि प्रकृतिदत्त साधन दूसरे को मारने काटने में लगाते हैं लेकिन वे पशु है। पशुओ में विवेक नही होता, इसीसे ऐसा करते हैं; परन्तु मनुष्यो मे विवेक है, फिर भी मनुष्य, प्राप्त साधनो को दूसरे की हानि में लगाता है, और दूसरे की हानि करने के लिये—दूसरे को मारने काटने के लिए—प्राप्तविवेक का दुरुपयोग करके, कृत्रिम साधनों का निर्माण, एवं उनका उपयोग करता है। इसलिए शस्त्र-संग्राम करना, पशुता से भी बुरा है। इस प्रकार के संग्राम से, न तो कभी शान्ति हुई ही है, न हो ही सकती है। उत्तेजित होकर, किसी को शत्रु मान उससे लड़ना, किसी की हानि करना, किसी के प्राण हरण करना आदि प्रकार की पशुता रखने वाले, स्वयं भी सुखी नहीं रह पाते, तो दूसरे को सुख कहाँ से दे सकते है! वे तो और, दूसरे को निष्कारण ही दुःखी बनाते हैं। चम्पापुरी की प्रजा की जो दुर्दशा हुई है, उसे जिस कष्ट में पड़ना पड़ा है, वह सब, हिंसात्मक युद्ध की पशुता का ही परिणाम है। यदि अपराध रहा होगा, तो तेरे पिता या सन्तानिक का रहा होगा; प्रजा का क्या अपराध था,

जो उस पर अत्याचार किया गया! लेकिन हिंसात्मक युद्ध की पशुता, न्याय अन्याय नहीं देखती। इसके सिवा, इस प्रकार के युद्ध से विजयी और पराजित, दोनो ही अधिकाधिक दुःख मे पड़ जाते है। जो हारता है, वह तो दुःखी होता ही है; लेकिन जो जीतता है वह भी सुखो नहीं होता; किंतु रही सही मनुष्यता भी खो देता है, और सन्तानिक की तरह निरपराधी लोगो पर अत्याचार करता है, तथा अपने लिए परलोक को अधिक दुःखमय बनाता है। इसलिए तू, शस्त्र-संग्राम से चम्पापुरी का उद्धार करने की कल्पना भी मत करना! तुझे, चम्पापुरी का उद्धार करने, अपनी जन्म-भूमि, अपने स्वदेश पर लगा हुआ कलंक मिटाने, संसार के सम्मुख एक नूतन आदर्श रखने, और लोगो को शस्त्र-संग्राम की बुराई—एवं निरूपयोगिता—समझाने के लिए, अहिंसात्मक संग्राम करना होगा। अहिंसात्मक संग्राम से ही तू, चम्पापुरी को दुःखसागर से भी निकाल सकती है, और उस पर लगा हुआ कलंक भी मिटा सकती है।

पुत्री, अहिंसात्मक संग्रास मे, हिसात्मक संग्राम की तरह की कोई बुराई नहीं है, किन्तु अहिसात्मक संग्राम मे, हिंसात्मक संग्राम से बिलकुल ही वैपरीत्य है। इसमें, हिसात्मक युद्ध की तरह की पशुता को, किंचित भी स्थान नहीं है। इसके द्वारा, किसी भी समय अपने या दूसरे को, न तो अशान्ति

होती है, न दुःख। इसमे विजय पराजय मिलने पर, किसी तरह दुःख, पश्चाताप, या अभिमान भी नहीं होता। हिंसात्मक संग्राम में तो सब बुराई ही बुराई है, लेकिन अहिंसात्मक संग्राम में, सब अच्छाई ही हैं। इसमे, हारने-जीतने से, दुःख या प्रसन्नता नहीं होती। जीतने पर गर्व नही होता, और हारने पर ग्लानि नही होती। इसलिए तुझे, अपनी जन्म-भूमि का उद्धार करने के लिए, अहिंसात्मक युद्ध ही करना चाहिए। इस युद्ध के द्वारा तू, महान् से महान् विरोधी को भी अपना अनुशासन मनवा सकती है। उसे अपना हितचिन्तक बना सकती है, और उसमे भी शत्रुता के स्थान पर मित्रता का प्रादुर्भाव कर सकती है, हिंसात्मक युद्ध मे तो पराजित प्रतिपक्षी पुनः विजय प्राप्त करने के लिए अवसर की प्रतीक्षा मे रहता है, उसमें वैर की वृद्धि होती है, और अवसर पाकर वह, अपने पर विजय प्राप्त करने वाले को पराजित करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार हिंसात्मक युद्ध मे विजयी भी भय रहित नहीं होता, लेकिन अहिंसात्मक युद्ध में, ऐसा भय किंचित भी नही है। अहिंसात्मक युद्ध मे, विजय-पराजय की भावना ही नहीं रहती, वैर का चिन्ह भी नही रहता और न किसी को नीचा दिखाने का ही विचार रहता है।

बेटी वसुमति, अहिंसात्मक युद्ध में, सब से पहले धैर्य की आवश्यकता है। चाहे कैसी भी विषम परिस्थिति सामने आवे

कैसे भी कष्ट सिर पर हो, धैर्य कदापि न त्यागना चाहिए । और तो और, यदि मस्तक पर वज्र-प्रहार हों, शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जावें, तब भी धैर्य ही बना रहे, अधीरता को पास भी न आने दे । धैर्य, इस संग्राम की पहिली सीढ़ी है । इस संग्राम के लिए पूरी तरह सहिष्णु रहने की आवश्यकता है । जिसमे सहिष्णुता नहीं है, जो किसी भी समय अधीर हो उठता है, जो कष्टों के कारण रोने लगता है, वह कायर व्यक्ति, इस संग्राम के लिए अयोग्य है । इस संग्राम मे, धैर्य के साथ ही भावना का शुद्ध और पवित्र रहना आवश्यक है । अपना अहित करने वाले, अपने को कष्ट देने वाले, और अपना सर्वनाश करने वाले तक को, न तो शत्रु ही मानना चाहिए, न उससे किसी प्रकार का बदला लेने की भावना का बीज ही अपने मे पड़ने देना चाहिए । कोई घोर से घोर अहित करने वाला हो, तब भी उसे मित्र समझ कर, उसके साथ मित्रता का ही व्यवहार करे । उसके प्रति, शत्रुता का तो भाव ही न रखे । अपने देश का, अपनी जन्म भूमि का उद्धार करने के लिए तुझे, धीर, सहिष्णु तथा निर्वैर रहना होगा । देश का कलंक मिटाने के लिए, अहिंसात्मक संग्राम छेड़ने के पश्चात्, विश्राम का तो स्वप्न भी मत देखना । तुझे अविराम काम करना होगा । भय या थकावट के कारण, कभी भी शिथिलता न होने देनी चाहिए, न कान में रुई देकर

घर में सोना ही चाहिए। अर्थात् निश्चिन्तिता भी न होनी चाहिए। अपने कार्य को सफल करने की चिन्ता, सदैव बनी रहे। तुझे इस बात का सदा ध्यान रहे, कि मेरे सिर देश के उद्धार का भार है; इसलिए जब तक मैं अपने पर से यह भार न उतार दूँ, तब तक विश्राम या निश्चिन्तिता कैसी! इस प्रकार विचार रख कर तुझे, देश का कलंक मिटाने के लिए, अहिंसात्मक युद्ध करना होगा। अहिंसात्मक युद्ध द्वारा, दूसरे का रक्त नहीं बहाना होगा, किन्तु स्वयं के रक्त को पानी समझ कर, उससे, देश पर लगा हुआ कलंक का दाग धोना होगा। वह भी क्रोध करके नहीं, आँखें लाल करके, और भौंहे चढ़ा कर नहीं, किन्तु प्रसन्नता से, हर्ष से। अर्थात् देश पर लगे हुए कलंक का दाग मिटाने के लिए तुझे, अपना रक्त बहाने को भी तयार रहना होगा। मौत से कदापि न डरना होगा, किन्तु यह समझना होगा, कि यह शरीर तो नाशवान ही है; इसलिए इसके नाश से, मेरी कोई हानि नहीं है। मैं, अविनाशी हूँ। मेरा नाश, कोई भी नहीं कर सकता। इस प्रकार आत्मा और शरीर को भिन्न-भिन्न मान कर, आत्मा को अविनाशी, तथा शरीर को नाशवान समझना, और देश पर लगे दाग को, रुधिर-जल से धोने के लिए सदा तयार रहना। देश का दाग मिटाने के लिए दिये जाने वाले बलिदान की बलि-वेदी पर चढ़ कर तुझे, प्रसन्नता-पूर्वक

कट मरने के लिए तयार रहना होगा; तभी तू देश पर लगा हुआ दाग धो सकेगी। तुझे, केवल वही मार्ग अपनाना होगा, जो सत्यानुमोदित हो। सत्य-रहित, और स्वार्थ-भरे मार्ग पर तो तुझे भूल कर भी पाँव न रखना चाहिए। यह सब करती हुई, अपने में सदा यही भावना भरती रहना, कि धर्म की अवश्य ही जय होगी और जीवित हूँ तो मातृभूमि के लिए, तथा मरूँगी तो मातृभूमि के लिए।

पुत्री, तू कह सकती है, 'कि आपने जो बातें अहिंसात्मक युद्ध के लिए बताई हैं, हिंसात्मक युद्ध में भी उनका होना आवश्यक माना जाता है। हिंसात्मक युद्ध—शस्त्र- संग्राम—के लिए भी, धर्म एवं सहिष्णुता की आवश्यकता है और जिस में ये नहीं हैं, वह शस्त्र-संग्राम भी नहीं कर सकता। इसी प्रकार हिंसात्मक युद्ध में भी भय थकावट, विश्राम, और निश्चिन्तिता को स्थान नहीं है। ऐसा युद्ध करने वाला भी, अपने पर किसी कार्य विशेष का भार समझता है। वह भी, मौत से नहीं डरता है, प्राणों की पर्वाह नहीं करता है और मरने के लिए—अपना बलिदान करने के लिए—सदा, हर्ष सहित तयार रहता है। ऐसी दशा में, हिंसात्मक युद्ध और अहिंसात्मक युद्ध में क्या अन्तर रहा! इस प्रकार कहा जा सकता है, परन्तु यदि तू ऐसा कहे, तो मै यही कहूँगी कि तूने हिसात्मक युद्ध और अहिसात्मक युद्ध का

भेद नहीं समझा है। यद्यपि हिंसात्मक युद्ध में भी धैर्यादि बातें अवश्य होती है, लेकिन वे दूसरे को मारने के लिए; दूसरे की हानि करने के लिए। उसकी भावना यही रहती है, कि मै दूसरे बहुत शत्रु- पुरुषो को मारूँ। उसमें, क्रोध होता है, वैर होता है, और होती है दूसरे पर विजय प्राप्त करने की—दूसरे को आधीन करने की, दूसरे का अपमान करने की और दूसरे से बदला लेने की—इच्छा। अहिंसात्मक संग्राम में, इन बातो को स्थान नहीं है। अहिंसात्मक युद्ध करने वाला, स्वयं तो मरने के लिए तयार रहता है, लेकिन दूसरे को मारने की इच्छा नही रखता। वह सोचता है, कि मै चाहे मर जाऊँ, पर किसी को मारूँ नहीं। वह किसी से वैर नही रखता। किसी से बदला नहीं लेना चाहता। किसी को अपने अधीन करनेवाले को भी, इस लोक या परलोक का भय नहीं दिखाता। हिंसात्मक संग्राम करनेवाला, कभी तो आगे बढ़ जाता है, और कभी पीछे को भी भाग जाता है। अहिंसात्मक संग्राम में, हार खा कर भागने की जरूरत नही है, न किसी के किये हुए आघात से घबरा कर रोने, या उसे उपालम्भ देने की। इस प्रकार, हिंसात्मक संग्राम करने वाले में, और अहिसात्मक संग्राम करने वाले में, ठीक वैसा ही अन्तर होता है, जैसा अन्तर ३६ के और ६३ के अंक में है। हिंसात्मक युद्ध करने वाला, ९ के सिवा शेष अंकों

की भाँति घटने बढ़ने वाला होता है। वह, कभी अपने को बड़ा और सुखी समझता है, तथा कभी हीन, और दुःखी। लेकिन अहिंसात्मक युद्ध करने वाला, ९ के अक की तरह होता है जो, चाहे जितने से गुणा किया जाने पर भी, जोड़ मे ९ ही रहता है, कम ज्यादा नही होता। चाहे कैसी भी विषम स्थिति हो चाहे जैसा घोर कष्ट हो, वह अपना स्वभाव नहीं त्यागता; दुःखी नही होता, और चाहे जैसा यशस्वी हो जावे, तब भी प्रसन्न होकर बढ़ता नही है; किन्तु वैसा ही बना रहता है। हिंसात्मक युद्ध और अहिंसात्मक युद्ध, तथा इन दोनो के करने वालों में इसी प्रकार के और भी बहुत से अन्तर हैं।

वसुमति, अब तू यह भूल जाना कि मैं राजकुमारी हूँ। साथ ही यह भी मत समझ, कि मै दीन हीन हूँ। अपने आप को, दीन दुःखी, या राजकुमारी न समझ कर, सब छोटे बड़े काम स्वयं के हाथ से करने होंगे। किसी भी काम के करने में, दुःख मत मानना और अहिंसात्मक संग्राम मे आगे बढ़ती ही जाना। हाथ से काम करने में, अपने पर किसी आपत्ति के आने के समय, और स्वयं का बलिदान करने का अवसर होने पर, तू यह विचार मत लाना कि मै राजकुमारी हूँ, परन्तु आज कैसी विपत्ति में हूँ! इस प्रकार का विचार होने पर, तू स्वयं ही दुःख-सागर मे डूब जावेगी, दूसरे का उद्धार क्या करेगी! तुझे क्रोध को तो सदा के लिए

विदा करना होगा। दुःख और क्रोध को तो, अपने पास फटकने ही मत देना। इसी प्रकार सदा निर्भय भी रहना। किसी दूसरे से भय खाना तो अलग बात है, लेकिन साक्षात् मृत्यु भी तेरे सामने आ जावे, तो उससे भी भय मत खाना। इस नश्वर शरीर के लिए, किसी से भयभीत होने की क्या आवश्यकता है ? और यदि इसको अविनाशी माना जावे, तब भी भय क्यो! इसलिए कभी भी, भय तो करना ही मत। शरीर नाशवान है, और सत्य अविनाशी है। शरीर देकर सत्य की रक्षा तो अवश्य करना, लेकिन सत्य देकर शरीर की रक्षा करने का विचार तक भी मत लाना। जय, सदा सत्य के अधीन है। जहाँ सत्य है, वहीं विजय है, वही लक्ष्मी है, वही सुख है। इसलिए सत्य के वास्ते शरीर को तुच्छ समझ कर मरने के लिए भी तयार रहना। कायरों की भाँति आत्महत्या की आवश्यकता नहीं है, लेकिन सत्य की रक्षा के लिए—जन्म भूमि पर लगा हुआ कलंक मिटाने के लिये—अपना वलिदान करने को, अपने प्राण न्योछावर करने को, सदा तत्पर रहना। मातृभूमि के हित के समय, मरण-भय, या जीवन की आश मत रखना, यदि मेरे मे भय होता, तो मैं रथ में बैठ कर इस प्रकार निर्भयता से न चली आती, और तुझे जो शिक्षा दी है, वह भी न दे पाती। अब भी, आगे क्या होगा, यह मैं नही कह सकती, लेकिन तेरे से तो यही कहती हूँ,

कि चाहे मैं रहूँ, या न रहूँ, मेरी इस शिक्षा को कदापि मत भूलना! यदि तूने, मेरी शिक्षा के अनुसार ही व्यवहार किया, तो तू देश पर लगा हुआ कलंक मिटाने में भी समर्थ होगी, दुःख-सागर में डूबी हुई चम्पापुरी का उद्धार करके स्वयं का स्वप्न भी सत्य कर सकेगी और अपने आत्मा का उत्थान भी कर सकेगी। इसलिए स्वयं मे वीरता रख कर, धर्म के लिए जीने या मरने को तयार रहना।

देह धारिणी वीरता की तरह, रथ में बैठी हुई धारिणी, वसुमति को इसी प्रकार का उपदेश देती जा रही है, और सामने बैठी वसुमति, एकटक माता की ओर देखती हुई, माता की शिक्षा को हृदयंगम करती जा रही है। वह, उस समय माता की आकृति पर ऐसा तेज देख रही है, माता से वीरता की वे बातें सुन रही है, और माता में ऐसा साहस देख रही है, जैसा तेज और साहस, उसने पहले कभी नहीं देखा था, न ऐसी वीरता की बातें ही पहले कभी सुनी थीं। वह, माता का उपदेश, अतृप्त बन कर सुन रही थी, और उस शिक्षा को अपने हृदय में उसी प्रकार स्थान दे रही थी, जिस प्रकार शिक्षक की बातो को विद्यार्थी अपने हृदय में स्थान देता है।
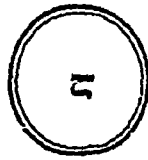
बलिदान

सतीत्व-रक्षा के लिए, भारत की स्त्रियां सदा से प्रसिद्ध ही रही हैं। भारत मे ऐसी अनेक स्त्रियाँ हुई हैं, जिनने अपना सर्वस्व, यहाँ तक कि अपने प्राण, तो हँसते-हँसते दे दिये, लेकिन अपना सतीत्व नहीं दिया। उनको सतीत्व से विचलित करने में, कोई भी शक्ति समर्थ नहीं हुई। साम, दाम, दण्ड और भेद, चारों ही नीति उनके सामने असफल रही। वे, जीवन भर घोर यातनाएँ तो सहती रहीं, उन्होंने अपने सामने ही अपने प्रियजनोंका करुणवध तो देखा, फिर भी सतीत्व त्यागने का विचार तक नहीं किया। इसके अनेकों उदाहरण हैं। सीता को, रावण ने भय भी दिखाया, कष्ट भी दिया, और सब तरह का प्रलोभन भी दिया, यहाँ तक कि, एक ओर तो राम को मार-डालने का भय, और दूसरी ओर उसे पटरानी बनाने का लोभ दिया, लेकिन वह, सीता को अपने अनुकूल न कर सका। अपने पति के मरने पर, असहाय मदनरेखा ने सतीत्व-रक्षा के लिए वन

की शरण तो ली, लेकिन सतीत्व के बदले राज-सुख लेना स्वीकार नहीं किया। चित्तौड़ की रानी पद्मिनी, आग में कूद कर भस्म तो हो गई, परन्तु सतीत्व खोकर जीवित रहना पसन्द नही किया। देवल देवी ने, स्वयं को जीवित ही दीवार मे चुनवा लिया, परन्तु सतीत्व न जाने दिया। रायखेगार की रानी राणक देवी ने, अपनी आँखों से अपने पति और पुत्र की मृत्यु तो देखी, लेकिन सतीत्व देकर उनकी रक्षा न चाही। जसमा ओड़नी मजदूरी करती थी, परन्तु उसने सतीत्वके बदले रानी बनकर सुख करना स्वीकार नहीं किया, और अन्त में सतीत्व की रक्षा के लिए ही, पति-सहित कट मरी। इसी प्रकार के सैकड़ो हज़ारों उदाहरण ऐसे है, जिनसे यह स्पष्ट है, कि भारत की रमणियाँ, सतीत्व के संमुख संसार के समस्त पदार्थों—समस्त सुखो—को तुच्छ समझती थी और सतीत्व की रक्षाके लिए, महान् से महान् कष्ट को भी हर्ष से सहती थी। महारानी धारिणी का उदाहरण भी, इस विषय मे एक ही है, लेकिन यह उदाहरण, दूसरे समस्त उदाहरणो से भिन्न है। धारिणी का उदाहरण, कुछ दूसरी ही विशेषता रखता है।

जिस रथ में वसुमति सहित धारिणी बैठी हुई थी, वह रथ, वन की ओर चला जा रहा था। रथी, उस रथ को घोर तथा निर्जन वन में ले गया। अपने कार्य के लिए उस स्थान को उपयुक्त समझ कर, रथी ने, रथ को वहाँ रोक दिया। उसने सोचा,

कि यहाँ पर और कोई नहीं है, इसलिए नीति के साम, दाम, दण्ड और भेद, इन चारों अंग से काम लेकर, स्वर्गीय अप्सरा के रूप को भी लज्जित करने वाली इस सुन्दरी से, सुख भोगना चाहिए। मेरा जन्म तभी सार्थक है, मेरा युद्ध करना तभी सफल है, और मेरा रत्नों का लोभ त्यागना, तथा इस सुन्दरी को लेकर वन में आना तभी लाभप्रद है, जब यह मोहिनी मुझ से प्रेम करे। इस समय यह, मेरे अधीन है। यहाँ, इसका कोई रक्षक नहीं है, न इसे किसी ओर से कोई आशा ही है; अतः यह मुझे वैसे भी स्वीकार कर लेगी; और यदि इसने सीधी तरह से मुझे स्वीकार न किया, तो फिर मैं नीति का प्रयोग करूँगा। बड़े बड़े योद्धा और त्यागी लोग भी नीति के जाल में फँस जाते हैं, तो इस स्त्री का फँसना क्या कठिन है! लेकिन नीति का प्रयोग करने में, दण्ड नीति को पहिले ही काम में लाना ठीक न होगा। चाहे दण्डनीति सफल भी हो जावे, और दण्ड के भय से यह मुझे स्वीकार भी करले, तब भी दण्ड नीति से विवश होकर मुझे स्वीकार करने पर, इसके साथ किये गये संभोग सहवास से वैसा आनन्द नहीं मिल सकता, जैसा आनन्द, दण्ड के सिवा नीति के शेष अंगों के प्रयोग से वश होने पर मिल सकता है। इसलिए पहले दण्डनीति का सहारा न लेना चाहिए, किन्तु साम, दाम, और भेद नीति से ही काम लेना चाहिए। दण्डनीति से तो तभी

काम लेना चाहिए, जब और किसी उपाय से काम न चले।

इस प्रकार का विचार कर रथी ने, रथ के पर्दे खोले और धारिणी से नीचे उतरने के लिए कहा। रथी के कहने पर, वसुमति सहित धारिणी, रथ से उतर कर समीप के एक वृक्ष की छाया में बैठ गई। रथी, निःशंक था, अतः उसने धारिणी पर नजर गड़ा कर, उसे भली भाँति देखा, और मनही मन उसके रूप लावण्य की प्रशन्सा करके, यह विचारकर प्रसन्न होने लगा, कि अभी कुछ ही देर में यह मूर्त्तिमान सुन्दरता मुझे पति रूप स्वीकार करेगी, और मैं इसका आलिगन करके अपने जीवन को सफल बनाऊँगा। इस प्रकार अनेक दुर्भावनाओं से घिरा हुआ रथी, धारिणी से कहने लगा—हे सुन्दरी, हे सुमुखी, हे सुलोचना, मैं तुम्हारे अनुपम रूप पर मुग्ध हूँ। हे मीनाक्षी, तुम्हारे नयन-बाण ने मुझे व्यथित कर दिया है। हे सुन्दरी, तुम्हारे इस सुन्दर शरीर का आलिंगन करने के लिए, मैं बहुत उत्कंठित हूँ। तुम्हे पाकर मै अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। तुमको इस वन मे, मै जिस उद्देश्य से लाया हूँ, उसे तो तुम समझ ही गई होओगी, इसलिए अब विलम्ब मत करो, और तुम जैसी सुन्दरी हो, वैसाही सुन्दर विचार करो, तथा मुझे अपनाओ। तुम बुद्धिमती हो, इसलिए यह तो समझती ही होओगी, कि इस समय तुम किस स्थिति में हो। इस स्थिति में तुम्हें, किसी न किसी पुरुष का आश्रय ग्रहण करना ही

होगा ! मेरी इच्छा है कि यह सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हो। मुझे सौभाग्यशाली बनाना, तुम्हारे ही हाथ है।

किसी कामी और व्यभिचारी की ऐसी बातोंको सुनकर, प्राय: प्रत्येक सदाचारिणी की आँखें लाल हो आना, और ऐसा करने वाले पर क्रोध होना, एवं अपने असमय के कारण दुःख होना स्वाभाविक है, लेकिन रथी की बाते सुन कर, धारिणी के मुख पर सल भी नहीं आया। उसे न तो दुःख हुआ, न क्रोध। वह सोचती है, कि मेरे सदाचार की परीक्षाका समय तो यही है। यही समय, मेरे धैर्य, मेरे साहस, और मेरी शक्ति की कसौटी है। जिस समय तक कोई विषम परिस्थिति सामने नहीं आई है, जब तक किसी विपत्ति का सामना नहीं करना पड़ा है, और जब तक कोई अन्य पुरुष इस प्रकार प्रार्थना नही करता है, तब तक तो प्राय: प्रत्येक स्त्री धैर्यवती, साहसिन तथा सदाचारिणी भी रह सकती है। विशेषता तो उसी स्त्री की है, जो ऐसे समय मे साहस रखे, धैर्य न त्यागे, सदाचारिणी रहे, और अपना धर्म नष्ट न होने दे। यह रथी, वीर है, इसी से मुझे बड़ाई प्रदान कर रहा है। इस समय इसकी दृष्टि मे विकार भरा हुआ है, इससे यह इस तरह की बातें कर रहा है, फिर भी इसका वीर स्वभाव, इसके मुख से मेरे लिए उपदेश भी निकलवा रहा है और इसी से यह कह रहा है, कि 'तुम जैसी सुन्दरी हो, वैसा ही सुन्दर

विचार करो ! यह मेरा ध्यान, इस विषम स्थिति की ओर भी खींच रहा है। मुझे, इसकी विकार-भरी बातें न देख कर, उन बातों के साथ कर्त्तव्य पर दृढ़ करने वाला जो उपदेश मिल रहा है, उसे ही उसी प्रकार ग्रहण करना चाहिए, जिस प्रकार मिले हुए दूधपानी में से, हंस, पानी को छोड़ कर, दूध को ही ग्रहण करता है। यह मेरे द्वारा अपना जीवन सफल करना चाहता है। वास्तव में, जब मै इसको अपना भाई मानती हूँ, तो मुझे इसका जीवन सफल करना ही चाहिए, और इसमें जो विकार घुस गया है वह निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। इसका यह कथन ठीक ही है, कि तुम्हे, पाकर मै स्वयं को भाग्य शाली मानता हूँ। जो बहन, भाई को सुधारने के लिए स्वयं का बलिदान करने तक को तयार रहे, उस बहन के मिलने पर, भाई को अपने भाग्य की सराहना करना उचित ही है। वास्तव में मैं इसे इसके सौभाग्य से ही मिली हूँ, अन्तर है तो केवल यही, कि यह स्वयं को बुरे मार्ग से सद् भागी बनाना चाहता है, और मै इसे बुरे मार्ग से बचा कर, अच्छे मार्ग द्वारा सद् भागी बनाना चाहती हूँ।

इस प्रकार विचारती हुई धारिणी, मुसकराई। धारिणी को मुसकराती देख कर, रथी के हृदय में, प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। इस विचार से वह प्रसन्न हो उठा, कि इसने मेरे कथन पर ध्यान दिया है, उसे ठीक समझ कर ही यह मुसकराई है, और अब

थोड़े ही अनुरोध पर, मेरी प्रेयसी बनना स्वीकार कर लेगी।

इस प्रकार की आशा से प्रफुल्लित होकर रथी, धारिणी से फिर कहने लगा—हे हृदयेश्वरी, कमल- पुष्प के समान विकसित तुम्हारे सुन्दर नेत्र देख कर, मेरे हृदय के हर्ष का पार नही रहा। तुम्हारे विकसित कमल-नेत्र देख कर, मैं, भ्रमर की तरह उन्मत्त हो उठा हूँ। तुम्हारी मधुर मुसकान यह बता रही है, कि तुम मेरी प्रार्थना को अनुचित नहीं समझतीं. फिर भी तुमने, मेरी प्रार्थना की स्पष्ट स्वीकृति नही दी। इसका कारण भी मैं समझ गया हूँ। तुम समझती हो ओगी कि मैं राजपुत्री हूँ, अब तक एक राजा को रानी रही, और अनेक दास-दासियों से सेवित रही हूँ। कभी किसी ने भी मुझ पर अनुशासन नही किया। इसी प्रकार अब तक मैने सब तरह के सुख भोगे है। अब इस पुरुष के यहाँ, मेरे साथ न मालूम कैसा व्यवहार हो, और न मालूम मुझे सुख मिले या दुःख! मैं समझता हूँ, कि ऐसे ही संशयों के कारण, तुमने मेरी प्रार्थना की स्वीकृति प्रकट न की होगी। वास्तव में तुम बुद्धिमती हो, इससे तुम्हारे हृदय मे, इस प्रकार का सन्शय होना स्वाभाविक है। लेकिन मैं, तुम्हारा सन्शय मिटाये देता हूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि तुमको अपनी प्रेयसी बना कर भी, मैं, तुम पर अपनी आज्ञा नहीं चलाऊँगा, किन्तु स्वयं तुम्हारा आज्ञाकारी रहूँगा। मैं, तुम्हे मेरे प्राणों की

स्वामिनी बना रहा हूँ। इसलिए मेरा शरीर ही नही, किन्तु मेरे प्राण भी, तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। वे भी, तुम्हारे संकेत पर ही इस शरीर मे रहेंगे, और इससे बाहर होंगे। जब मेरे प्राण भी तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे, तो शरीर तो प्राणों के ही अधीन है, इस लिए वह तो तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा ही! मै, तुम्हारे साथ कदापि विश्वासघात न करूँगा, किन्तु जो कुछ कह रहा हूँ, उसका अक्षरश' पालन करूँगा। मै, वीर क्षत्रिय हूँ। मै जो प्रतिज्ञा करता हूँ, उसको पूरी तरह निभाता हूँ। तुम, मेरे द्वारा की गई प्रतिज्ञा पर विश्वास करो। यदि तुम्हे ऐसे विश्वास न हो, तो लो, मै शपथ पूर्वक कहता हूँ, कि यदि मैं तुम पर आज्ञा चलाऊँ, तुम्हारा आज्ञाकारी न रहूँ, और तुम्हारे सुख का पूर्णतः ध्यान न रखूँ, तो मै क्षत्रिय नहीं; मुझे गोहत्या, स्त्री-हत्या और बालहत्या का पातक लगे। मैं ईश्वर और धर्म को साक्षी करके कहता हूँ, कि मेरी विशाल सम्पत्ति की एक मात्र स्वामिनी तुम्ही होओगी। तुम, उसका जिस तरह भी चाहो, उपयोग कर सकती हो। मै, तुम्हारे किसी कार्य मे हस्तक्षेप न करूंगा, तुम्हारी किसी भी बात को अनुचित न कहूँगा. किन्तु सदा उसी तरह तुम्हारा सेवक रहूँगा, जिस तरह आज्ञाकारी और स्वामिभक्त भृत्य रहता है। लो, अब तो तुम्हारे हृदय का संशय मिट गया न? अब तो मेरी प्रार्थना स्वीकार करके, मुझे अपनी सेवा का सुयोग प्रदान करो!'

रथी की इन बातों को सुनकर भी, धारिणी पहले की ही भाँति प्रसन्न थी, और अपने मन में सोच रही थी, कि काम की महिमा विचित्र है ! यह पुरुष, सन्तानिक का महारथी है, इसकी वीरता पर सन्तानिक विश्वास करता है, और इसकी आकृति बताती है कि यह वीर है भी, तथा यह स्वयं को वीर समझता भी है। फिर भी यह मेरे बिना कहे सुने ही मेरा आज्ञाकारी सेवक बनने के लिए तयार हुआ है, और इस प्रकार की शपथें खा रहा है। वैसे तो कोई इससे कहता, कि तुम मेरे आज्ञाकारी सेवक बनो, और इसको अपना आज्ञाकारी सेवक बनाने के लिए, कोई इसे बड़ी बड़ी सम्पदा भी देने लगता, तब भी शायद यह ऐसा प्रस्ताव स्वीकार न करता, और आश्चर्य नहीं, कि ऐसे प्रस्ताव से अपना अपमान समझकर, प्रस्तावक का शिरोच्छेद करने को तयार हो जाता ! लेकिन इस समय यह स्वयं ही, मेरा आज्ञाकारी सेवक बनने की प्रतिज्ञा करता है, तथा शपथ खा रहा है ! यह सब क्यो कर रहा है ? केवल काम के वश होकर, अपनी दुर्भावना पूरी करने के लिये। धिक्कार है काम को ! जो ऐसे वीर भाई को भी, इस तरह पतित कर रहा है, कायर बना रहा है, और भ्रष्ट करा रहा है ! इस समय, मेरा यह कर्त्तव्य है कि इसे पतित न होने दूँ, कायर न बनने दूँ, और इस की गणना भ्रष्टों में न होने दूँ, यह मेरा आज्ञाकारी सेवक बनने को तयार है, फिर भी

यदि मैं कोई उपकार और बहन का कर्त्तव्य पूरा न करूँ, तो यह ठीक न होगा। जब यह मेरे लिए सब कुछ करने को तयार है, तो मुझे भी इसका कल्याण करना चाहिये।

बिना किसी दुःख के, स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ धारिणी, इस प्रकार विचार रही थी। उसके चेहरे का उतार-चढ़ाव, तथा उसकी स्वाभाविक प्रसन्न मुखमुद्रा देख कर, रथी, प्रसन्न हो रहा था; और सोच रहा था, कि यह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करने के विषय मे ही विचार कर रही है! कुछ ही क्षण मे, इसके मुख से ये शब्द सुनाई देंगे, कि 'मै तुम्हारी बात स्वीकार करती हूँ।' इस प्रकार की आशा करता हुआ रथी, इस प्रतीक्षा मे था कि इस रमणी का मुँह कब खुले, और उसमे से, मुझे सुख देने वाले अमृत वचन कब निकले! वह धारिणी का उत्तर सुनने के लिए, अधीर हो रहा था। इतने ही में उसने देखा, कि धारिणी का मुँह खुल रहा है, और वह कुछ कहना चाहती है! आशा नदी की तरङ्गो में गोते लगाता हुआ रथी, धारिणी के मुँह से, अनुकूल उत्तर सुनना चाहता था; लेकिन धारिणी ने जो उत्तर दिया, उससे रथी की आशा को बड़ा धक्का लगा। रथी की प्रार्थना के उत्तर में धारिणी कहने लगी—भाई, तुम अपने आप को कहते रहे हो वीर! पर ऐसी अनुचित बातो से जान पड़ता है, कि इस समय तुमको अपनी वीरता एवं उचित अनुचितता का ध्यान नहीं है! तुम,

मुझे सुन्दरी कह रहे हो,मेरी प्रशंसा कर रहे हो, और कहते हो कि सुन्दर विचार करो, परन्तु मुझसे तुम चाहते हो इसके विपरीत ! मैं,तुम्ही से पूछती हूँ,कि नियम—धर्म—पालन का विचार सुन्दर कहा जावेगा,या नियम—धर्म—भंग करने का विचार सुन्दर माना जावेगा ? मुझे सुन्दरी बता कर, और मुझसे सुन्दर विचार करने का कहकर भी, तुम मुझसे यह चाहते हो , कि मैं, धर्मनियम को विदा करके तुम्हारी दुर्वासना पूरी करूं ! तुम्हारी बुद्धि मे, यही बुराई आगई है, और इसीसे तुम कहते कुछ हो, तथा चाहते कुछ हो । यदि तुम वीर हो, तो वीरोचित वाते तथा कार्य करो । इस प्रकार की वाते, कायरोचित ही कही जा सकती है, वीरोचित कदापि नहीं हो सकती । जो वीर है, वह इस प्रकार परस्पर विरुद्ध वातें कदापि नही कह सकता । इसलिए तुम, अपनी बुद्धि को ठीक करो, अपने को सम्हालो, और ऐसी वाते न कहो, न ऐसा कार्य करनेका ही विचार करो, जो वीरता को कलंक लगाने वाला है । कदाचित तुम मेरी वात न मानो, तव भी—मै तुम्हारी बहन हूँ इसलिऐ—मेरा कर्त्तव्य है, कि मै तुम्हारी रक्षा करूँ ! मेरी वाते,तुम्हारी समझ मे तभी आ सकती है, जव तुम अपनी वुद्धि को ठीक करो, अपने मे उन्मत्तता न रहने दो, और स्वयं द्वारा पहले की गई प्रतिज्ञा का विचार करो । तुमने, मेरे आज्ञावर्ती सेवक रहने, मेरे साथ विश्वासघात न करने आदि की

प्रतिज्ञाएँ की, और उन पर दृढ़ रहने के लिए शपथें भी खाईं, परन्तु तुम्हारी प्रतिज्ञाओं और शपथों पर, कौन विश्वास करेगा ! जो व्यक्ति, पूर्व की प्रतिज्ञा और शपथ तोड़ डालता है, उसकी नवीन प्रतिज्ञा या शपथ पर, कोई विश्वास नहीं करता। यही बात, तुम अपने लिए भी समझो। मेरे समीप, तुम्हारी प्रतिज्ञा या शपथ का, कोई मूल्य नही है। क्योंकि, जिस तरह तुम मेरे से प्रतिज्ञा कर रहे हो, मेरे सामने शपथ खा रहे हो, उसी तरह, मेरी भौजाई—अर्थात् तुम्हारी पत्नी—के सामने भी तो तुमने वही प्रतिज्ञा की थी, और शपथ खाई थी ! लेकिन आज तुम उस प्रतिज्ञा, तथा शपथ को तोड़ने के लिए तैयार हो गये या नही ? क्या यही तुम्हारी वीरता है ? ऐसी दशा में, तुम्हारी अब की जाने वाली प्रतिज्ञा, तथा शपथ पर कौन विश्वास करेगा ? तुमने अपने विवाह के समय, अनेक लोगों के सामने, धर्म, ईश्वर, अग्नि, नदियाँ, और देवताओं का आह्वान करके, अपनी पत्नी से इन सब की साक्षी में जो प्रतिज्ञाएँ की थी, उनके पालन मे ही जब तुम वीरता छोड़ रहे हो, कायरता धारण कर रहे हो, तब, अब की जाने वाली प्रतिज्ञा के लिए वीर कैसे रह सकते हो ! भाई, यदि तुम वीर हो, यदि तुम प्रतिज्ञा और शपथ भंग नहीं करते हो, यदि तुम धर्म को जानते हो, तो उन प्रतिज्ञाओं से पतित होने का विचार भी मत करो, जो तुमने विवाह के

समय अपनी पत्नी से की थी। तुम्हारी पत्नी ने तुमसे वचन लिया था, कि तुम पर-स्त्री का—चाहे वह रम्भा और रमा के समान ही सुन्दरी क्यों न हो—सेवन न करोगे, किन्तु उसे माता या बहन मानोगे। तुमने अपनी पत्नी को यह वचन दिया था, और वचन का पालन करने की प्रतिज्ञा की थी। फिर आज उस प्रतिज्ञा को तोड़ कर दूसरी प्रतिज्ञा कैसे कर रहे हो ? और यदि तुम उस प्रतिज्ञा को तोड़ना भी चाहो, तो मै तुम्हारी बहन, तुमको पतित कैसे होने दूँगी। वीर ! कदाचित तुम मेरे समझाने को न भी मानो, पहले की हुई प्रतिज्ञा की अवहेलना करने को तयार भी हो जाओ, वीरता का परित्याग भी कर दो, तब भी मैं तो अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ ही रहूँगी। मैं, पत्नी तो महाराज दधिवाहन की ही हूँ, तुम्हारी तो बहन ही हूँ। तुमने जो प्रतिज्ञा अपनी पत्नी से की थी, उसके अनुसार मैं भी तुम्हारी बहन हूँ, और मैंने अपने पति से जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार भी तुम्हारी बहन हूँ। तुमने अपनी पत्नी से कहा था, कि मेरे लिए पर-स्त्री, माता और बहन के समान है। इसी प्रकार मैंने भी पति से प्रतिज्ञा की थी, कि मेरे लिए पर-पुरुष पिता, भ्राता और पुत्र के समान हैं। इन दोनों ही प्रतिज्ञा के अनुसार, तुम मेरे भाई हो और मैं तुम्हारी बहन हूँ। तुम चाहो अपनी प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हो जाओ, लेकिन मैं क्षत्रिय कन्या हूँ, वीर पुत्री हूँ, और वीर पत्नी हूँ, इस

लिए मैं अपनी प्रतिज्ञा पर, मेरु पर्वत से भी अधिक दृढ़ रहूँगी। मैंने पति को जो वचन दिया है, वह कदापि भंग न होने दूँगी, चाहे मेरे प्राण ही क्यो न चले जावें ! मैं, तुमसे भी यही कहती हूँ, कि तुमने तुम्हारी पत्नी को जो वचन दिया है, उसका पालन करो, उसे भंग मत करो। वचन का पालन करने से ही, तुम्हारा कल्याण है। वीर क्षत्रिय एक बार जो प्रतिज्ञा करते हैं, उस प्रतिज्ञा पर, प्राण जाने तक भी स्थिर रहते हैं। फिर तुम निष्कारण ही भ्रष्ट-प्रतिज्ञा क्यों वन रहे हो ! और अपने मुख से अशोभनीय वचन निकाल कर मुख को दूषित क्यो कर रहे हो ? भाई, अपने को सम्हालो, अपनी पहले की प्रतिज्ञाओं को याद करो, और बहन से न कहने योग्य बात मत कहो।

धारिणी की बाते सुनकर रथी, कुछ लज्जित तो हुआ, लेकिन कामुकता के कारण उसकी लज्जा, अधिक समय तक न ठहर सकी। उत्पन्न लज्जा के जाते ही, वह सोचने लगा, कि मेरी—साम दाम—नीति का प्रयोग तो व्यर्थ गया ! इसने तो मुझे ही निरुत्तर कर दिया ! इसकी बुद्धिमत्तापूर्ण बातो ने मुझे और अधिक मुग्ध कर लिया है लेकिन कुछ भी हो, इस बुद्धिमती और सुन्दरी को तो, अपनी प्रेयसी बनाना ही चाहिये।

इस प्रकार निश्चय करके रथी, फिर धारिणी से कहने लगा, कि तुमने जो कुछ कहा वह उचित है। मै, तुम्हारे इस कथन को

स्वीकार करता हूँ, कि मैंने अपनी पत्नी को जो वचन दिया है, उसका पालन करूँ। मैं, उस प्रतिज्ञा का पालन भी अवश्य करूँगा। यदि तुम मुझ से यह कहती, कि तुम मेरे से प्रेम करने के लिए पहले अपनी पत्नी को त्याग दो, तब तो मैं, तुमको हृदयहीना और स्वार्थिनी समझता, लेकिन तुमने ऐसा नहीं कहा, किन्तु तुमने जो कुछ कहा है, वह तुम्हारे उदार हृदय, और निःस्वार्थ-पने का परिचायक है। तुम्हारी बातों से, मैं तुम पर और अधिक मुग्ध हो गया हूँ। मैं, तुम्हारी बुद्धिमत्ता की भूरि-भूरि प्रशन्सा करता हूँ, और तुम्हें, विश्वास दिलाता हूँ, कि तुमको अपना कर भी—तुम्हारा सेवक रह कर भी—मैं, अपनी पत्नी को दिये गये वचन का पालन करूँगा, उसका परित्याग कदापि न करूँगा। मैं, न तो तुम्हे ही धोखा दूँगा, न उसे ही; किन्तु दोनों ही को अपनी दो आँखों के समान आदर से रखूँगा। मैं, धर्म की मर्यादा को जानता हूँ, इसलिए उस मर्यादा का उल्लंघन कदापि न करूँगा; लेकिन इस समय मेरे एक ही पत्नी है, और वह भी तुम्हारी तरह की सुन्दरी नहीं है। अतः मै चाहता हूँ, कि एक तुम, और एक वह, ऐसी दो पत्नी हो जावे। इस समय तक, मैं—एक ही पत्नी होने के कारण—जैसा एक आँखवाला ही हूँ। जब तुम भी मुझे अपना सेवक बना लोगी तब जैसे मेरी दोनो आँखें हो जावेंगी। इसलिए तुम किसी दूसरी तरह का

विचार मत करो, किन्तु मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सत्य समझो।

रथी की बातों के उत्तर मे, धारिणी ने उससे कहा—भैया, इस समय तुम इतने अधिक स्वार्थ के अधीन हो रहे हो, कि तुम को न्याय-अन्याय, और उचित अनुचित सूझ ही नहीं पड़ता है। यदि ऐसा न होता, तो तुम यह न कहते, कि मैं पहली प्रतिज्ञा भी भंग न करूँगा, और अब जो प्रतिज्ञा कर रहा हूँ, वह भी भंग न करूँगा! मै तुम से पूछती हूँ, कि तुमने विवाह के समय अपनी स्त्री से जो प्रतिज्ञा की थी, क्या उसमें यह बात थी, कि मैं तुमको भी रखूँगा, और दूसरी स्त्री लाऊँगा, उसको भी रखूँगा? यदि उस समय कीगई प्रतिज्ञा मे यह बात नही थी, तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है, कि तुम उस प्रतिज्ञा को भंग नहीं करना चाहते! भाई, इस समय आपकी बुद्धि ही विपरीत हो रही है; इसी से परस्त्री—जो तुम्हारी बहन है, उसे भी—अपनी स्त्री बनाना चाहते हो, और ऊपर से धर्म को बीच में डाल कर कह रहे हो, कि मै भ्रष्ट-प्रतिज्ञ नही होरहा हूँ! मैं तो, पर-स्त्री को अपनी बनाने की इच्छा रखने वाले पुरुष की, बार-बार निन्दा करती हूँ, उसे कायर समझती हूँ, और पुनः पुनः धिक्कार देती हूँ!

धारिणी की बातों का, रथी पर, कोई अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा। वह सोचने लगा, कि यह इस तरह नही मानती तो क्या हुआ, किसी न किसी तरह तो मानेगी ही! इस समय यह

सर्वथा मेरे अधीन है, इसलिए जैसे भी मानेगी, वैसे ही मना-ऊँगा। मैं चाहता हूँ, कि दण्डनीति का आश्रय न लेना पड़े, इसी से मैंने साम, दाम का प्रयोग किया था, लेकिन मेरा यह प्रयोग तो इस पर सर्वथा निष्फल हुआ। इसलिए अब भेद-नीति से काम लेना चाहिए, और जब वह भी सफल न होगी, तब दण्डनीति तो है ही!

इस प्रकार निश्चय कर के रथी, फिर धारिणी से कहने लगा—हे मधुर भाषिणी, तुम्हारी बातें तो बुद्धिमानी की हैं, लेकिन इस समय तुम्हारा ध्यान केवल एक ही ओर है, दूसरी ओर नहीं है। तुम, मेरी प्रतिज्ञा को तो देख रही हो, लेकिन स्वयं के हिताहित को नहीं देखती! इस बात को नहीं सोचती, कि मैं जो कुछ भी करना चाहता हूँ, वह किस लिए! मैं, तुम्हारा उपकार करने के लिए ही, तुमको अप-नाना चाहता हूँ, और इसी लिए तुम्हारा सेवक बनने को तयार हूँ, तथा तुमसे अनेक प्रतिज्ञा कर रहा हूँ। मै, यदि अपनी पहली प्रतिज्ञा से भ्रष्ट भी होता हूँ—उसका उल्लंघन भी करता हूँ—तो वह तुम्हारा उपकार करने की बुद्धि से ही। मैं सोचता हूँ, कि कौए के गले में रत्न शोभा नहीं देता। कौए के गले में रत्न देखकर भी, उसे कौए के गले मे ही रहने देना, रत्न का अपमान करना है। कोई महान् मूर्ख भी, मूल्यवान् और सुन्दर रत्न को ऐसे

स्थान पर न रहने देगा, जहाँ उसका अपमान हो। कोई व्यक्ति, यदि कौए के गले में पड़ी हुई रत्न-माल प्राप्त करके उसका सम्मान बढ़ावे, तो यह कोई अपराध नहीं है, किन्तु रत्न पर उसका उपकार है। यही बात, मेरे और तुम्हारे विषय में भी समझो। तुम ऐसी सुन्दरी और वीर पुत्री, कायर दधिवाहन के पाले पड़े, यह तुम्हारा अपमान है। तुम्हारी शोभा, दधिवाहन ऐसे कायर व्यक्ति के साथ नहीं हो सकती। दधिवाहन, बिलकुल कायर है। उसमें, वीरता का अन्श भी नहीं है। जिसमें वीरता है, वह क्षत्रिय-पुत्र, युद्ध स्थल में लड़ता हुआ चाहे मर तो जावे, लेकिन रण के भय से भाग नहीं सकता। दधिवाहन तो, सेना देख कर ही ऐसा भागा, कि उसका कहीं पता भी नहीं है। वह, तुमको भी छोड़ गया। प्राणों के लोभ से उसने, तुम्हारी भी उपेक्षा कर दी। यह भी नहीं सोचा, कि मैं तो भाग रहा हूँ, लेकिन मेरे पीछे मेरी स्त्री की क्या दशा होगी। उस पर, कैसी मुसीबत बीतेगी। उसके ऊपर तुम्हारी रक्षा का भार था, इसलिए उसका कर्त्तव्य था, कि वह प्राण रहने तक तुम्हारी रक्षा करता तुम्हे, अरक्षित न होने देता; परन्तु उसने इस कर्त्तव्य का पालन नहीं किया, और तुम्हे अरक्षित छोड़ कर, जंगल में भाग गया। यह तो अच्छा हुआ, कि तुम्हारे महलमें मैं ही पहुँचा, और तुम्हे सुरक्षित यहाँ ले आया, अन्यथा कहीं दूसरे,

सैनिक पहुँच जाते, तो तुम्हारी न मालूम क्या दशा होती ! अब तुम्हीं बताओ, कि जो अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं कर सकता, जो अपने प्राणो के लोभ से अपनी स्त्री को भी अरक्षित त्याग गया है, और जिसने युद्ध के भय से भाग कर जान बचाई है, उस कायर के पास तुम्हारा रहना, सौन्दर्य और वीरता का अपमान है, या नहीं ! तुम्हें इस अपमान से मुक्त करने के लिए ही, मैं तुमको अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ।

इस प्रकार रथी, धारिणी पर भेद नीति का प्रयोग करने लगा। वह, दधिवाहन को कायर बता कर, उसकी ओर से धारिणी के हृदय में घृणा उत्पन्न करने की चेष्टा करने लगा, लेकिन शुद्ध सत्य के सामने, न दण्डनीति काम कर सकती है, न भेद नीति। धारिणी, ऐसी दुर्बल हृदय की न थी, जो वह रथी के नीति जाल में फँस जाती। उसमे दधिवाहन के प्रति अनन्य प्रेम था, और वह पतिव्रत-धर्म को जानने वाली, एवं उसका पालन करने वाली थी। पतिव्रता, अपने पति के सामने, संसार के किसी भी पुरुष को न तो सुन्दर मानती है, न वीर समझती है, न वैभवशाली स्वीकार करती है। उसकी दृष्टि में तो, उसका पति ही सब कुछ है, पति से बढ़ कर संसार का कोई पुरुष नहीं है। पतिव्रता स्त्री, पति के किसी दुर्गुण या बुराई की ओर तो ध्यान ही नहीं देती। उसका ध्यान तो, पति के सदगुणों एवं

अच्छाई की ओर ही रहता है। प्रेमी का, यह स्वभाव ही होता है। वह, अपने प्रेमास्पद द्वारा किये गये किसी दुर्व्यवहार को, अपने हृदय में एक क्षण के लिए भी स्थान नही देता, अपने प्रेमास्पद की किसी भी बुराई को नहीं देखता, न संसार में किसी भी बात के विषय में, किसी को अपने प्रेमास्पद से बढ़ कर मानता ही है। यही बात धारिणी के लिए भी है। दधिवाहन के प्रति धारणी के हृदय मे जो प्रेम है, उसे निकालने के लिए रथी, दधिवाहन की बुराइयाँ वर्णन करता है, लेकिन दधिवाहन के प्रेम में रंगी हुई धारिणी पर, कोई दूसरा रंग कैसे चढ़ सकता था।

रथी का कथन सुन कर, धारिणी को वड़ा ही दुःख हुआ। उसके लिए, पति की निन्दा सुनना असह्य था, फिर भी उसने अपना स्वाभाविक धैर्य नही त्यागा; और उत्तर में रथी से कहने लगी—भाई, अपनी जबान बन्द करो, पति के लिए अनुचित शव्द मत कहो। भाई के लिए यह उचित नहीं है, कि वह बहन के पति के विषय में अनुचित शब्द कह कर बहन का हृदय दुःखित करे। पति के विषय में तुम जो कुछ कह रहे हो, वह गलत भी है। इस समय, तुम्हारी बुद्धि में ही वैपरीत्य आ रहा है, इसी से तुम्हे, पति के गुण भी दुर्गुण रूप दिखाई दे रहे हैं। तुम पति को कौआ बता कर स्वयं को हंस बता रहे हो, लेकिन तुम्हारी हंस बनने की चेष्टा, व्यर्थ है। हंस और कौए की पह-

चान, गुण-दुर्गुण ही हैं. केवल मुख से कह देने से, न तो कोई हंस बन सकता है, न कौआ। तुम, अपने मुख से हंस बनते हो, लेकिन वस्तुतः हंस नहीं हो, किन्तु काग हो। दूसरे का जूठा खाने के लिये, काग ही तयार रहता है; हंस, दूसरे का जूठा कदापि नहीं खा सकता। तुम जानते हो, कि मै दधिवाहन की स्त्री हूँ, फिर भी तुम, मुझ (दधिवाहन द्वारा जूठी) को अपनाने के लिए तयार हो, और फिर भी हंस बनना चाहते हो! धिक्कार है, तुम्हारे इस हंस बनने को! भाई, तुम मेरे पति को कायर बता रहे हो, और स्वयं को वीर कह रहे हो, परन्तु तुम्हारा यह कथन भी, सर्वथा विपरीत है। मेरे पति, कायर नहीं हैं, किन्तु वीर हैं। कायर तो वह है, जो धर्म त्यागता है। धर्म को न त्यागने वाला, वीर है। यदि मेरे पति वीर न होते—किन्तु कायर होते—तो अकेले ही शत्रु-सेना में कदापि न जाते। पति, युद्ध द्वारा होने वाली हिंसा को अवांछनीय मानते हैं, इसी कारण उन्होंने युद्ध नहीं किया, और वे जंगल को चले गये। पति, अहिंसा के उच्चध्येय को सामने रख कर ही वन को गये है, इसलिए तुम्हारा, मेरे पति को कायर कहना गल्त है, और इसी प्रकार स्वयं वीर बनना भी. मिथ्या है। यदि तुम वीर होते, तो अन्याय का साथ कदापि न देते; किंतु अन्याय का विरोध करते। मैं पूछती हूँ कि मेरे पति का क्या

अपराध था, जो सन्तानिक ने उन पर चढ़ाई करदी ? और यदि कोई अपराध नहीं था, किन्तु सन्तानिक की चढ़ाई अन्याय पूर्ण थी तो तुमने उसका साथ कैसे दिया ? उसका विरोध क्यों नहीं किया ? थोड़ी देर के लिये यह मान भी लिया जावे, कि मेरे पति का कोई अपराध था, और सन्तानिक की चढ़ाई, निष्कारण नहीं थी, तब भी प्रजा का क्या अपराध था, जो उसे मारा, काटा और लूटा-खसोटा गया ? और उस लूट में तुम कैसे सम्मिलित हो गये ? अन्याय करना, दूसरे को व्यर्थ ही कष्ट में डालना, दूसरे के प्राण, या दूसरे की सम्पत्ति लूटना ही क्या वीरता है ? क्या इसे ही वीरता कहते हैं ? इसे तो, कोई भी व्यक्ति वीरता नहीं कह सकता, हां, क्रूरता अवश्य है। तुम, अन्याय का विरोध भी न कर सके, जो का-पुरुष का लक्षण है, और फिर भी स्वयं को वीर मान रहे हो ? हत्या, लूट, चोरी, और परदार-हरण करके अपने को वीर समझ रहे हो ! इसी से तो मैं कहती हूँ कि इस समय तुम्हारी बुद्धि ही उल्टी होरही है।

भाई, तुम मेरे पर जो उपकार करना चाहते हो, उसे अपने पास ही रहने दो। तुम्हे मेरे लिए किसी प्रकार का कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है, न प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होने की ही आवश्यकता है। मेरे पति चाहे वीर हों या कायर; उनने अपना कर्त्तव्य पाला हो या न पाला हो और वे मुझे सुरक्षित रख छोड़ गये हों, या अरक्षित छोड़

गये हों, तुमको इस बात की व्यर्थ ही चिन्ता क्यों? यदि मेरे पति ने कायरता की है, और उन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया है, तो इस कारण मैं कायरता क्यों बताऊँ, मैं अपना कर्तव्य क्यों त्यागूँ और मैं धर्म की मर्यादा का उल्लङ्घन क्यों करूँ? मैं वीर पुत्री हूँ। विवाह समय, मैंने यह प्रतिज्ञा की है, कि जिनके साथ मेरा विवाह हो रहा है, उन महाराजा दधिवाहन के सिवा मेरे लिये संसार के सब पुरुष पिता, भ्राता, और पुत्र के समान हैं। मैं, इस प्रतिज्ञा का अंत तक पालन करूंगी। पति पर, उनके धर्म का भार है और मुझ पर मेरा धर्म पालने का भार है। अपना धर्म, अपने से ही पाला जा सकता है। इसके लिए, यह देखना सर्वथा अनुचित है कि वह आदमी भी तो अपने धर्म से पतित होगया है। मैं, अपने धर्म का पालन करती हुई, उसकी रक्षा के लिये प्राण तो चाहे देदूँ, लेकिन धर्म त्याग कर जीवित रहना कदापि पसंद न करूँगी। अपनी दुर्भावना की पूर्त्ति के लिए मुझे धर्मभ्रष्ट करने का तुम्हारा सब प्रयत्न, व्यर्थ है। मैं, मर्यादा का उल्लंघन कदापि नहीं कर सकती। इसलिए मैं, अपना अन्तिम निर्णय सुनाये देती हूँ, कि सूर्य चाहे प्रकाश के बदले अन्धेरा देने लगे, वह आकाश से नीचे गिर जावे; सबको आधार देने वाली पृथ्वी किसी को आधार न दे, और रसातल को चली जावे; चन्द्र, शीतलता के स्थान पर ताप देने लगे, लेकिन मैं अपनी प्रतिज्ञा

से विमुख नहीं हो सकती; अपने धर्म से भ्रष्ट नही हो सकती; न किसी अन्य पुरुष को पति रूप स्वीकार कर ही सकती हूँ। गंगा का प्रवाह समुद्र के बदले हिमालय की ओर होजावे, तब भी, मेरे प्रेम का जो प्रवाह महाराजा दधिवाहन की ओर है, वह दूसरे पुरुष की ओर नही हो सकता। भाई, तुम चाहे नल-कूबर के समान सुन्दर होओ, अर्जुन के समान वीर होओ, और वैश्रमण धनपति के समान समृद्ध होओ, तब भी मै तुमको पति रूप स्वीकार नहीं कर सकती। इसलिए तुम, पाप के गड्ढे में डालने वाली, और नरक में ले जाने वाली अपनी दुर्भावना मिटाओ; अपने में से, विषय-लोलुपता को निकाल दो; और सदाचार पर दृढ़ रह कर, अपनी पहले की गई प्रतिज्ञाओं का पालन करो।

धारिणी की वीरता-भरी बातों को सुन सुन कर, रथी का मन, धारिणी की ओर अधिकाधिक खिचता जाता था, लेकिन धारिणी की अंतिम बातो ने, उसके हृदय में निराशा और क्रोध उत्पन्न कर दिया। वह सोचने लगा कि राजमहल से मैं बड़े मूल्य-वान रत्न नहीं लाया, और उनके बदले इसको इस आशा से लाया, कि इसके साथ सहवास करके, इसको अपनी प्रेयसी बना-कर मै अपना जन्म सफल करूँगा, लेकिन यह तो किसी तरह मानती ही नहीं है! मैंने, साम, दाम, और भेद, इन तीनों ही

नीति से काम लिया, परन्तु इसने तो, मेरी सभी नीति असफल करदी ! यदि यह मेरे वश न हुई, तो इस युद्ध से तो मुझे कुछ भी लाभ न होगा ! मैंने रत्न भी खोये, और यह भी मेरे हाथ में नहीं आ रही है ! यदि इसकी बात मान कर, मैं इस पर से अपना प्रेम हटालूँ, तब तो मेरा सब परिश्रम, व्यर्थ ही हुआ ! कुछ भी हो, मैं, इसके साथ सहवास करके, अपनी इच्छा तो पूरी करूँगा ही ! साम, दाम, और भेद से काम नहीं हुआ, तो दण्ड नीति से काम लूँगा, परन्तु इसे तो अवश्य अपनाऊंगा। दण्ड नीति के सामने, बड़े-बड़े धनुर्धर योद्धा भी कांप उठते हैं, वे भी अपनी प्रतिज्ञा त्याग देते हैं, तो इस बेचारी स्त्री की क्या शक्ति है, जो यह मेरी दण्ड नीति को असफल करदे ! अब इसको वश करने के लिये, दण्ड नीति के सिवा, और कोई मार्ग नहीं है। दण्ड नीति अवश्य ही सफल होगी। दण्ड नीति को अपनाने से ही, यह, राज महल से मेरे साथ आई है, नहीं तो कदापि न आती।

इस प्रकार विचार कर रथी, लाल-लाल आंखें करके, धारिणी से, क्रोध पूर्वक कहने लगा बस-बस ! तेरी बाते रहने दे ! बड़ी पतिव्रता और बुद्धिमती बन रही है ! यदि ऐसी ही पतिव्रता होती, तो पति का वियोग होते ही मरजाती। मेरे साथ यहां तक न आती। वहां से तो मेरे साथ चली आई, और अब यहां

पतिव्रत का ढोंग करके, त्रियाचरित्र बता रही है। मैं, तेरे को इसलिये नही लाया हूँ, कि तुझे बहन मान कर तेरी सेवा-टहल करूँ; किन्तु तुझे अपनी प्रेयसी बनाने के लिए लाया हूँ, और जिस उद्देश्य से तुझे लाया हूँ, उसे पूरा भी अवश्य करूँगा। मैं सोचता था, कि तू सीधी तरह मेरी बात मानले, मैं, तेरा हृदय न दुःखाऊँ परन्तु मैं नहीं समझता था, कि तू इस प्रकार की है। मैं, तेरे को बुद्धिमती जानता था, लेकिन अनुभव ने बताया, कि स्त्रियो मे बुद्धि तो होती ही नही है, उनकी मति तो, सदा नाश-कारिणी ही रहती है; ऐसी दशा में तू इस नियम से कैसे बच सकती है। मै, तेरे से फिर कहता हूँ, कि मैं वीर-क्षत्रिय-हूँ। एक बार जो विचार कर लेता हूँ, वह पूरा करके ही रहता हूँ; फिर चाहे उसे पूरा करने को, किसी भी उपाय का अवलम्बन क्यों न लेना पड़े! इसलिए तू सीधी तरह मेरी बात मानले। मैं, मेरे अनुकूल रहने वाले का ही रक्षक हूँ, और जो मेरे प्रतिकूल है, उसके लिए तो काल के समान भक्षक ही हूँ। यदि तू प्रसन्नता से मेरी बात मान गई, तब तो मैं तेरा रक्षक ही नहीं, किन्तु आज्ञाकारी सेवक रहूँगा, अन्यथा तेरा शत्रु बन कर तुझसे अपनी बात मनवाऊँगा। यहां, तेरा कोई रक्षक नही है। तुझे किसी भी तरह की सहायता नही मिल सकती। अब तू चाहे मुझे अपना रक्षक बनाले, अथवा भक्षक बनाले। मैं, उन कायरों में से नहीं हूँ, जो थोड़ा प्रयत्न करके—

असफलता का लक्षण दिखते ही, कार्य छोड़दे। जहां प्राणों की वाजी लगी होती है, वैसे भयानक संग्राम मे भी, मैं कायरता नहीं दिखाता, तो तेरी वातो से, मै कायर कैसे वन सकता हूँ! देख, यह तलवार देखले! यह वही तलवार है, जिसको देख कर भय की मारी तू विना चूँ चा किये चुपचाप रथ में बैठ कर मेरे साथ यहाँ आई है। यदि तूने अभी की भाँति फिर मेरी वात को अस्वीकार करने का दुःसाहस किया, तो मैं, इस तलवार से तेरा मस्तक काट डालूँगा, और तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। मैं, इतना करके ही सन्तुष्ट न होऊँगा, किन्तु ऐसा करने से पहले तेरे साथ भोग भोग कर, अपनी इच्छा तो पूरी करूँगा ही! इस वन में, तू असहाय स्त्री मेरी वात अस्वीकार करे, यह मैं कदापि नहीं सह सकता। इसलिए मै कहता हूँ, कि मेरी वात स्वीकार करले। ऐसा करने पर ही, तेरा कल्याण है, और तेरे जीवन की कुशल है।

रथी की इन भयोत्पादक वातों का, धारिणी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा! धारिणी, किंचित भी भयभीत नहीं हुई; न उसके मुख की स्वाभाविक प्रसन्नता ही नष्ट हुई। वह, पहले की ही तरह प्रसन्न, और गम्भीर वनी रही। रथी की वात समाप्त होने पर, वह कहने लगी—भाई, वास्तव में वीरों के लिए यही उचित है, कि जो वात, एक वार मुंह से कह दी जावे, वह पूरी

की ही जावे। मैं, तुमसे यही करने के लिए तो कहती हूँ. कि तुमने अपनी पत्नी से जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करके वीरता की रक्षा करो, लेकिन मेरी यह बात, तुम्हारी समझ में नहीं आती, और तुम अपना दुराग्रह नही छोड़ते। परन्तु जब तुम, अपने बुरे विचार, और अपना दुराग्रह नहीं छोड़ सकते, तब मैं, अच्छी, और सत्य तथा धर्म से अनुमोदित बात को कैसे त्याग सकती हूँ! तुम मेरे शरीर को नष्ट कर सकते हो। इस पर, तलवार चला सकते हो। मैं, तुम्हारे द्वारा चलाई गई तलवार का तो प्रसन्नता से आलिङ्गन करूँगी, उसका तो अवश्य स्वागत करूँगी, लेकिन पर-पुरुष का स्पर्श, कदापि नहीं कर सकती। हाँ, जीवन न रहने पर तो, इस शरीर का स्पर्श गीदड़ भी कर सकते हैं

धारिणी की बातें सुन कर, रथी का क्रोध उमड़ा पड़ता था। उस समय वह मूर्तिमान क्रोध ही बन रहा था। क्रोध के कारण, उसकी आकृति ऐसी वीभत्स हो गई थी, कि देखने वाले को भय मालुम हो! धारिणी का उत्तर समाप्त भी नहीं हो पाया था, कि 'देख मैं तुझे जीवित ही स्पर्श करता हूँ!' कह कर, रथी, धारिणी को पकड़ने, और उस पर बलात्कार करने के लिए उद्यत हुआ। रथी को, इस प्रकार पाशविक व्यवहार करने के लिए उद्यत देख, धारिणी नें उससे कहा--भाई, तुम वीर हो। वीर लोग, एक

असहाय स्त्री को वन मे लेजाकर, उस पर इस तरह अत्याचार तो नहीं किया करते, परन्तु तुम तो ऐसा करने के लिए भी उद्यत हुये हो ! मैंने, तुम्हे जो कुछ समझाया, वह तुम्हारी समझ में नहीं आया; और अब तुम्हे समझाने के लिए कोई प्रयत्न करना, व्यर्थ है। तुम्हारे हृदय मे, जिस दुर्भावना ने स्थान कर लिया है, उसे निकालने के लिए, किसी असाधारण प्रयत्न की आवश्यकता है। साधारण उपदेश से, तुम्हारी भावना न बदलेगी। मैं, अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुकी, और तुम्हे समझा चुकी। यह वात दूसरी है, कि मुझे अपने प्रयत्न में सफलता नहीं मिली, और समझाने पर भी, तुम्हारा हृदय ज्योंका त्यो वना रहा, लेकिन मैं तो तुम्हे समझाने का अपना कर्त्तव्य पूरा करही चुकी। अव तो यह प्रश्न है, कि मैं अपना सतीत्व तुम्हे समर्पण करदूँ, या उसकी रक्षा का कोई दूसरा उपाय भी है ! थोड़ी देर के लिए तुम ठहर जाओ, और मुझे, इस विषय में विचार करने का समय दो ! इस समय मुझे क्या करना चाहिये, यह मै सोचलूं, तथा यह भी जान लूँ, कि जिस धर्म और परमात्मा पर मुझे विश्वास है, वे मुझे क्या सम्मति देते हैं ! तुम, यदि थोड़ी देर के लिए मुझे अकेली छोड़ दो, स्वयं, जरा दूर हट जाओ;. तो मैं शान्त हृदय से विचार भी कर सकूं, तथा धर्म और ईश्वर से भी सम्मति ले-सकूँ ! फिर, जैसा निश्चय होगा, वैसाही करूँगी। तव तक, तुम,

भी ईश्वर की प्रार्थना करो। ऐसा करने से, तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो जावेगी, और फिर सम्भव है कि तुमको इस प्रकार बलात्कार करने का कष्ट न उठाना पड़े।

धारिणी का कथन सुन कर, रथी ने सोचा, कि यह विचार करने के लिए कुछ समय चाहती है, फिर भी इसको समय न देकर, इस पर बलात्कार करना ठीक नहीं। जो काम सरलता से हो सकता है, उसको कठिन बनाना, या उसके लिए विषम प्रयत्न करना, व्यर्थ है। जो गुड़ से ही मर सकता है, उसको विष देने की क्या आवश्यकता है। इसी प्रकार जब यह आप ही, स्वयं को मेरे समर्पण कर दे, तो मैं इस पर बलात्कार क्यों करूँ! यद्यपि यह अब तक समझाने पर भी नहीं मानी है, लेकिन अब यह स्वयं ही समय मांगती है; इससे सम्भव है, कि इसने अपनी रक्षा का कोई मार्ग न देख कर, मुझे पति रूप स्वीकार करने का विचार करने के लिए समय मांगा हो। यह न तो यहां से जा ही सकती है; न मेरे प्रतिकूल किसी प्रकार का विचार करने में ही कल्याण समझती है। इसलिए, इसकी इच्छानुसार समय देना ही अच्छा होगा।

रथी ने इस प्रकार विचार कर धारिणी से कहा, कि मैं तेरी प्रार्थना स्वीकार करके, तुझे एक घड़ी का समय देता हूँ। तुझे जो कुछ विचार करना है, वह, इतने समय मे कर ले; लेकिन मैं अपना जो निश्चय सुना चुका हूँ, उसे याद रख कर ही विचार करना।

इस प्रकार कह कर रथी, धारिणी के पास से, कुछ दूर हठकर खड़ा होगया। वह, अपने मन में यही आशा कर रहा था, कि एक घड़ी के पश्चात् इसके मुँह से यही निकलेगा, कि 'मुझे तुम्हारी बात स्वीकार है।' और इस प्रकार, यह रमणी मेरी पत्नी बन जावेगी, तथा मैं, इसका पति बन जाऊँगा। इस प्रकार एक ओर, खड़ा हुआ रथी तो, धारिणी का पति बनने का स्वप्न देख रहा था, और दूसरी ओर कुछ दूरि पर बैठी हुई वसुमति, दूसरा ही विचार कर रही थी। वह सोच रही थी, कि घर पर और मार्ग में माता ने मुझे, आपत्ति के समय धैर्य रखने, और किसी पर क्रोध न करने का जो उपदेश दिया था, उसे वह स्वयं ही कार्यान्वित करके बता रही है! इस घोर आपत्ति के समय भी माता न तो घबराई है, न रोई है! इसी प्रकार, इस रथी द्वारा कहे गये दुर्वचनों को सुनकर भी, माता ने, इस पर क्रोध नहीं किया। माता, वीर-पुत्री है, अतः यदि वह चाहे तो, इस रथी से युद्ध भी कर सकती है; तथा वह चाहे, तो अपनी सतीत्व की शक्ति द्वारा, दृष्टि मात्र से इस रथी को भस्म भी कर सकती है, लेकिन माता, इस प्रकार हिंसा करना या बदला लेना, उचित नहीं समझती। माता ने, मुझे भी ऐसी ही शिक्षा दी है, और मुझे जो शिक्षा दी है, उसका आचरण माता स्वयं भी कर रही है। अब, माता के मांगने से इस रथी ने, माता को एक घड़ी का समय

दिया है। देखती हूँ, कि माता इस समय का उपयोग किस तरह करती है। इस प्रकार विचारती हुई वसुमति, माता की ओर एक टक देख रही है।

रथी, कुछ और सोच रहा था, वसुमती कुछ और सोच रही थी, तथा तीसरी ओर बैठी हुई धारिणी, कुछ और ही कर रही थी। सामने से रथी के हटते ही, धारिणी ने, परमात्मा को नमस्कार किया और उसकी अन्तिम प्रार्थना की। फिर कहने लगी- प्रभो, इस वीर रथी ने, तेरी प्रार्थना करने के लिए एक घड़ी का समय देकर, मुझ पर बड़ा उपकार किया है। यही नही, यह मुझे कठिन तपस्या का उपदेश देने के साथ ही, मेरी यह परीक्षा ले रहा है, कि मुझे ईश्वर और धर्म पर कैसा विश्वास है। इस प्रकार यह मेरे पर उपकार करने वाला है; लेकिन मैं, इसके उपकार का बदला चुकाने मे असमर्थ हूँ। क्योकि यह मेरा भाई, सतीत्व नष्ट करना चाहता है। मोह के वश होकर, मेरे इस अशुद्ध शरीर पर मुग्ध हो गया है। मैंने, इसे बहुत समझाया, लेकिन इसे मेरा समझाना उसी प्रकार नही रुचा, जिस प्रकार सन्निपात के रोगी को, वैद्य की औषध नही रुचती। यह कामान्ध हो रहा है। इस कारण इसे, धर्म, कर्त्तव्य, और तेरी शक्ति का भी ध्यान नहीं है। इसमें, निरा इसी का अपराध नहीं है। इस समय के अधिकान्श पुरुषों की, भावना ही ऐसी हो रही है। ऐसे ही लोगों में से यह रथी

भी एक है, और इसी कारण यह मेरे इस तुच्छ शरीर पर ऐसा मोहित हो रहा है, कि इसे दूसरी कोई बात पसन्द ही नहीं पड़ती! इसलिए मैं यह उचित समझती हूँ, कि यह नश्वर शरीर इसको सौंप दूँ, और जो आत्मा, अब तक इस शरीर में रहता हुआ तेरी यत्किञ्चित सेवा करता है, वह इससे निकल कर तेरी शरण में आ जावे। मैं, तेरे से और कुछ नहीं चाहती हूँ, केवल यही चाहती हूँ, कि मुझे इस मेरे भाई पर किंचित भी क्रोध न आवे; मेरे हृदय में, इस भाई के प्रति जरा भी वैर-भाव न रहे, और जो पुरुष, स्त्री रूपी दीपक पर पतंग की तरह प्राण देते हैं, उनका सुधार हो। इस रथी की तरह, केवल शरीर को ही देखने वाले, आत्मा को विस्मृत करने वाले पुरुष, आत्मा को पहचान कर कामुकता को त्यागें, यही तेरे से चाहती हूँ। मुझे, अनुभव हुआ है कि इस रथी ऐसे भाइयों को सुधारने का कार्य बिना बलिदान के नहीं हो सकता। इसी प्रकार, मैंने वसुमति को जो उपदेश दिया है, उसे क्रियात्मक रूप देकर, वह उपदेश वसुमति को पूर्णतः हृदयंगम कराना है, और वसुमति का मार्ग साफ कराना है। मैं वसुमति को इस बात पर प्रत्यक्ष विश्वास कराना चाहती हूँ, कि धर्म की शक्ति महान् है और धर्म, सदैव, तथा सर्वत्र रक्षक है। इस प्रकार मैं, उसे धर्म की गोद में बैठा कर, अभय बनाना चाहती हूँ। हे प्रभो, तू मुझे ऐसा करने की शक्ति दे, यही मेरी प्रार्थना है।

इस प्रकार परमात्मा की प्रार्थना करके धारिणी ने अठारह पाप त्याग कर, तथा सब जीवों से क्षमा मांग कर, एवं सब जीवो को क्षमा देकर, सागारी-संथारा किया, और ध्यान किया। ध्यान समाप्त होने पर, उसने आँखें खोल कर कहा, कि हे प्रभो, मैं अपनी ओर से यह शरीर त्याग चुकी हूँ। यदि यह शरीर रहा, तबतो आत्मा इसमें रह कर, कुछ दिन और तेरी सेवा करेगा, लेकिन यदि यह न रहा तो इसे, मैं अपनी ओर से उत्सर्ग कर ही चुकी हूँ।

कुछ दूर खड़ा हुआ रथी, धारिणी की ओर देख रहा था, तथा मनही मन यह मना रहा था, कि इसकी बुद्धि निर्मल हो, और यह मेरी बात मान ले। धारिणी का ध्यान समाप्त होते ही, रथी, उसके सामने—कृतान्त की तरह—फिर जा खड़ा हुआ और धारिणी से कहने लगा, कि— मैंने तुझे जो समय दिया था वह समाप्त हो चुका। अब बता, कि तूने क्या निश्चय किया है? रथी की बात सुन कर धारिणी उसकी ओर प्रेम-पूर्ण दृष्टि से देखती हुई कहने लगी—वीर, मैंने परमात्मा से परामर्श कर लिया है! उसने मेरे और तुम्हारे लिए जो आज्ञा दी है, उस पर मै तो विश्वास करूँगी ही, लेकिन तुम भी विश्वास करो, तो अच्छा है। उसने मुझे तो यह आज्ञा दी है, कि जिस शरीर को देख कर यह रथी मोहान्ध हो रहा है, अपना कर्त्तव्य भूल रहा है,

और पथ-भ्रष्ट होने के लिए तत्पर है, बस, उस शरीर से ममत्व त्याग दे। इसी प्रकार तुम्हारे लिए, उसकी यह आज्ञा है, कि तुम जिस शरीर पर मुग्ध हुए हो, वह अपवित्र है, अशुचि का भण्डार है, क्षणिक है, नाशवान है, अतः उस पर मोह मत करो। शरीर पर मोह करने, और आत्मा को भूलने से, नरक की महान् कठोर यातना सहनी पड़ती है।

धारिणी की बात समाप्त होने से पहले ही, रथी उससे कहने लगा, हे छलना—तूने मेरा इतना समय भी खराब किया, और अब मुझे ईश्वर की आज्ञा सुना रही है ! इस तरह की आज्ञा देने वाले ईश्वर का, कहीं अस्तित्व भी है ! यदि उसका अस्तित्व है, तो उसे बुलाती क्यों नहीं ? वह स्वयं ही आकर, मुझे अपनी आज्ञा क्यों नहीं देता ? तू, तेरे छलकपट को रहने दे, ईश्वर को भूलजा, और मुझे ही ईश्वर मान !

रथी की बात के उत्तर में, धारिणी बोली—भाई, मोह के वश होने पर, ईश्वर को न मानना, और इस प्रकार नास्तिकता आना स्वाभाविक है, लेकिन मोह के वश तुम हो; मैं, मोह के वश नहीं हूँ। इस वास्ते मेरे लिए तो उसकी आज्ञा का पालन करना आवश्यक है ! तुम, मोह के वश होकर ही उसे बुलाने का कह रहे हो। वह, कहाँ नहीं है, जो उसको बुलाऊँ ? वह, सब जगह है, अनन्त शक्तिमान है, और ज्ञानगम्य है, लेकिन तुम, उसे

इन्द्रियों द्वारा देखना चाहते हो ! यह उसी मोह का प्रताप है, जिसके वश होकर, तुम परमात्मा के अस्तित्व से इनकार कर रहे हो। लेकिन यदि परमात्मा का अस्तित्व न होता; उसकी शक्ति, मुझमें न होती; तो मैं, तुम्हारे द्वारा कहे गये कठोर वचनों को सुन कर भी, प्रसन्न क्यों रहती ? मुझे, क्रोध क्यों नहीं आया ? दुःख, और भय क्यों नहीं हुआ ? यह सब उसी की शक्ति का प्रताप है, लेकिन मोहनीय कर्म के उदय होने पर, ईश्वर की यह शक्ति न तो प्राप्त होती है, न इस रूप में दिखाई देती है।

रथी कहने लगा—'बस-बस ! तेरा यह उपदेश, तेरे ही पास रहने दे ! मुझे, तेरे इस उपदेश की आवश्यकता नहीं है ! मैं समझ गया, कि तू प्रसन्नता से न मानेगी। देख, तुझ से अभी अपनी बात मनवाता हूँ। यह कह कर रथी, धारिणी की ओर लपका। भूखे भेड़िये की तरह रथी को अपनी ओर लपकते देख कर धारिणी ने कहा—मेरी बात न मानने में, निरा तुम्हारा ही दोष नहीं है, किन्तु मेरे इस शरीर का भी दोष है। हे प्रभो, जिसे देख कर मेरा यह भाई इस प्रकार विवेकहीन बन रहा है, उस शरीर को मैं त्यागती हूँ; और तेरे से प्रार्थना करती हूँ, कि भ्रम में पड़े हुए इस भाई को सद्बुद्धि प्राप्त हो, और इसका कल्याण हो !

इस प्रकार कह कर धारिणी ने रथी के पहुँचने से पहले ही,

अपनी जीभ पकड़ कर बाहर खींच ली! जीभ खींच जाने से, धारिणी के मुख से रक्त की धार वह चली। उसके प्राण-पखेरू, शरीर-पिंजर को छोड़ कर उड़ गये। उसका प्राण-रहित शरीर, पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार उसने, अपने बलिदान द्वारा, स्वयं के सतीत्व की रक्षा की, वसुमति को जो उपदेश दिया था, उसे आदर्शमय करके बता दिया, और वसुमति का मार्ग भी साफ कर दिया। साथ ही जो रथी कामान्ध हो रहा था, जिस पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था, उसे भी सुधार दिया!
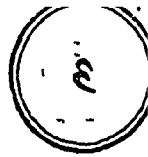
परिवर्तन ।

मनुष्य के हृदय पर, किसी घटना या दृश्य का, कभी-कभी ऐसा प्रभाव पड़ता है, कि एक दम से उसका जीवन, कुछ से कुछ हो जाता है। उस दृश्य, या घटना के प्रभाव से, रागी में वैराग्य, विरक्त में राग, क्रोधी में क्षमा क्षमाशील में क्रोध, हिंसक से दयालु, दयालु से हिंसक, चोर से साहूकार, साहूकार से चोर, सदाचारी से दुराचारी और दुराचारी से सदाचारी बन जाता है। किसी २ घटना या दृश्य का तो इतना असाधारण प्रभाव होता है कि उससे प्रभावित व्यक्ति के जीवन में, सर्वथा वैपरीत्य तक आ जाता है। जिसके जीवन को बदलने के लिए, हजारो प्रयत्न किये गये हो, और सैकड़ों तरह का उपदेश दिया गया हो, फिर भी—जिसके जीवन में कोई अन्तर न आया हो—ऐसे व्यक्ति का जीवन भी, किसी घटना विशेष से अनायास ही बदल जाता है, और जो दूसरे अनेक प्रयत्नों से सफल नहीं हुआ, वह जीवन बदलने का कार्य एक साधारण घटना के कारण भी हो जाता है। जीवन का

इस प्रकार परिवर्तन हुआ, इसके अनेको उदाहरण भी हैं। महाराजा हिरण्यगर्भ में, वैराग्य का चिन्ह भी नहीं था, लेकिन एक सफेद वाल के देखने से ही, उनमे संसार से विरक्ति होगई। नमीराज ऋपि में भी पहले वैराग्य नहीं था, लेकिन स्त्रियों की चूड़ियों के शव्द ने, उन्हें वैरागी वना दिया। चण्ड कौशिक सर्प, पूर्व-भव में वहुत ही क्षमा-शील था, लेकिन शिष्य के व्यवहार की घटना ने, उसे महा क्रोधी वना दिया; और सर्प के भव में वह महा क्रोधी था, परन्तु भगवान महावीर को डसने की घटना ने, पीछा उसे अत्यन्त क्षमाशील वना दिया। इसी प्रकार के अनेको उदाहरण हैं, और शास्त्रीय ही नहीं, किंतु ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण भी वहुत हैं, जो इस वात को पुष्ट करते हैं। महाराजा अशोक में, पहले वह दयालुता और अहिंसा न थी, जो तैलंग देश के युद्ध का भीपण रक्तपात देख कर हुई। सिक्खों मे पहले वह वीरता न थी, जो मुसलमानो के अत्याचार की घटना से हुई। पंडित मोतीलाल नेहरू में, वह देश-प्रेम और सादगी पहले न थी, जो सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन देख कर हुई।

इस प्रकार घटनावश जीवन परिवर्तन के, सैकड़ों ही नहीं, किंतु हजारों लाखो उदाहरण मिल सकते हैं। ऐसे ही उदाहरणों मे से एक, सन्तानिक के रथी का जीवन परिवर्त्तन है। सन्तानिक का रथी, वहुत ही क्रूर हृदय का दुराचारी व्यक्ति

था। मनुष्यों का बध करने, दूसरे की सम्पत्ति लूटने, और पर स्त्री का अपहरण करने, उसका सतीत्व नष्ट करने में उसे किंचित भी संकोच नहीं होता था। वह, अनेक वार युद्धों में सम्मिलित हुआ था। सन्तानिक की क्रूर भरी नीति ने, उसके दुराचार में वृद्धि की थी, और उसे अधिक क्रूर बनाया था। इसी से उसने धारिणी तथा वसुमति का अपहरण करने का दुस्साहस भी किया था। इस प्रकार के पाषाण-हृदय, और लम्पटी पुरुप पर, धारिणी के मौखिक उपदेश का क्या प्रभाव हो सकता था! वह, धारिणी से अपनी कामवासना पूरी करने की अभिलाषा रखता था, और सोचता था, कि जब यह एक मेरी हो जावेगी, तो दूसरी वसुमति तो मेरी है ही! उसने सोचा था, कि यदि मैं, पहले इस लड़की को अपनाने का प्रयत्न करूँगा, तब तो इसकी माँ, मेरे प्रयत्न का विरोध करेगी, और मुझे सफलता न मिलेगी। लेकिन पहले इस एक को अपनी बना लूँगा, तब दूसरी को, विना किसी विघ्न वाधा के, सरलता से ही अपनी बना सकूँगा। इस दुष्ट विचार से ही रथी, धारिणी के उपदेश की उपेक्षा करके, बलात् उसका सतीत्व नष्ट करने के लिए तयार हुआ था, और यदि उसे, अपने इस प्रयत्न में सफलता मिलती, तो फिर वह, वसुमति पर बलात्कार करने का दुःसाहस भी करता। लेकिन उसका प्रयत्न, निष्फल रहा और धारिणी के बलिदान ने, उसको कुछ से कुछ बना दिया।

वह, चला तो था धारिणी को बलात् पकड़ने, परन्तु धारिणी को जीभ खींचती देख कर, उसका पांव आगे न बढ़ा। उसने चिल्ला कर धारिणी से कहा भी था, कि 'मरे मत! मरे मत! मैं तेरे पर बलात्कार न करूँगा' लेकिन धारिणी की जीभ, और रथी के शब्द साथ ही निकले, इससे उसके ये शब्द व्यर्थ हुए। धारिणी के मुख से रक्त की धारा निकलती, और उसके मृत-शरीर को पृथ्वी पर गिरते देखकर, रथी कॉप उठा। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छागया। स्वयं को, धारिणी की हत्या का कारण समझ कर वह, थोड़ी देर के लिये किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर उसी स्थान पर खड़ा रहा; न तो आगे ही बढ़ सका न पीछे ही हट सका।

कुछ ही दूर पर खड़ी हुई वसुमति भी, यह सब कुछ देख रही थी। माता को, जीभ खींच कर मरी देख के भी, वसुमति ने धैर्य नहीं त्यागा। उस समय, वह अपने मन में कह रही थी—माता, तुझे धन्य है! तूने मेरे को जो शिक्षा दी थी, उसे चरितार्थ कर दिखाया, और धर्म के लिए किस तरह जीना या मरना, यह भी मुझे सिखा दिया। तूने, मुझे आदर्श-सहित जो शिक्षा दी है, उसके द्वारा, मैं भी धर्म के लिये जीना-मरना सीख गई। तेरी शिक्षा का ही प्रताप है, कि मैं ऐसी भीषण परिस्थिति में भी, दुःख, शोक, और भय-रहित हूँ। अपनी माता का वियोग होने

पर, अपनी माता की मृत्यु का भीषण दृश्य देख कर, और स्वयं को अरक्षित, तथा आपत्ति में समझ कर, मुझे, दुःख तथा भय होना स्वाभाविक था, लेकिन तेरी शिक्षा ने ही मुझे, दुःख, शोक, और भय से बचाया है। तेरी शिक्षा के प्रताप से ही, मैं यह सोचती हूँ कि जब माता ने प्राण-नाश के समय तक भी न तो धैर्य त्यागा, न क्रोध किया, न शोक और रुदन ही किया; तब मैं, माता के बताये मार्ग को त्याग कर, विपरीत मार्ग क्यों पकड़ूँ ! मुझे, माता ने जो शिक्षा दी है, वह ऐसे विषम समय के लिए ही तो है ! उसने, मुझे वह मार्ग भी बता दिया है, जिसके द्वारा, कठिन समय पर सतीत्व की रक्षा की जा सकती है। ऐसी दशा में, माता, मुझे अरक्षित नही छोड़ गई है, किन्तु सुरक्षित छोड़ गई है। जब माता, प्राण-त्याग करने मे भी नहीं रोई, तब मैं धैर्य क्यों त्यागूँ ! दुःख क्यो करूँ ! माता के लिए भी, दुःख शोक करने की आवश्यकता नहीं है; और न स्वयं के लिए ही—भय करके—दु.ख शोक करने की आवश्यकता है। इस समय तो मुझे, केवल इस बात का विचार करना है, कि जब यह रथी, माता के मधुर और प्रभावशाली उपदेश से भी नही माना, इसने अपनी दुर्भावना नहीं त्यागी, तब इस पर मेरे किसी कथन का क्या प्रभाव होगा ! इसके सिवा, माता ने इसकी बात नहीं मानी, हाँ, प्राण अवश्य त्याग दिये, इसलिए यह अधिक क्रुद्ध होकर, मुझ से,

अपनी बात मनवाने की चेष्टा करेगा! ऐसी दशा में, मुझे, धर्म-रक्षा के लिए क्या करना चाहिए! परन्तु मैं, इस विषय मे भी अधिक विचार क्यों करूँ! धर्म-रक्षा का जो मार्ग माता बता गई है, उसे, पहले ही क्यों न अपना लूँ! इस रथी को, कुछ कहने सुनने, या किसी प्रकार का प्रयत्न करने का अवसर ही क्यो दूँ!

इस प्रकार विचार कर, वसुमति बोली—'वीर, लो! जिस मार्ग से माता गई है, उसी मार्ग से मैं भी जाती हूँ, जिसमें तुम्हें मेरे लिए किसी प्रकार का कष्ट न करना पड़े!' यह कह कर वसुमति प्राण त्यागने के लिए उद्यत हुई! वसुमति की बात सुन कर, रथी, धारिणी के विषय में जो दुःख और पश्चात्ताप कर रहा था, उसे एक दम से भूल गया; और सोचने लगा, कि इस एक की हत्या का पातक तो मेरे सिर पर है ही, यह दूसरी भी, मेरे ही कारण प्राण-त्याग कर रही है! मैं, इस एक ही पाप का न मालूम कितना दण्ड भोगूँगा, तब यह दूसरा पाप और कैसे सहूँगा! इस प्रकार विचारता हुआ रथी, दौड़कर वसुमति के पास आया। वह, प्राण-त्याग के लिए उद्यत वसुमति का हाथ पकड़ कर, रुदन करता हुआ कहने लगा—पुत्री, क्षमा कर!' मुझे अधिक पातकी मत बना! मैं, अधम से अधम, और नीच से नीच हूँ। मैंने, जो महान् पाप किये है, उन्हीं का फल मुझे भोगने दे, मुझ पर अधिक पाप मत चढ़ा। तेरी माता बड़ी ही

सती थी। उसने, मेरे पाप-पूर्ण विचारों को बदलने के लिए बहुत प्रयत्न किया, मुझे बहुत उपदेश दिया, लेकिन मुझ मोहग्रस्त कामान्ध को, उसका उपदेश जरा भी नहीं रुचा। अन्त में उसने, प्राण-त्याग द्वारा सतीत्व की रक्षा की, और मुझे, अनन्त नरक की वेदना सहने के लिए रहने दिया। मेरा हृदय, पाप की ज्वाला से जल रहा है। दुःख और पश्चात्ताप के कारण, शान्ति नहीं मिल रही है। इस सती की हत्या का अपराधी, मैं ही हूँ। मैंने ही, यह घोरतम पाप किया है। मुझे, इस एक ही महापाप की आग से जलने दे, तू मर कर, उसमें और आहुति मत छोड़। तू विचारती होगी, कि इस दुष्ट ने मेरी माता के साथ जैसा दुर्व्यवहार करना चाहा था, वैसा ही दुर्व्यवहार, यह मेरे साथ भी करेगा, और इसी कारण तू प्राण-त्याग करना चाहती होगी, लेकिन, तू यह भय छोड़ दे। मैं, तेरे को पहले अवश्य पाप-भरी दृष्टि से देखता था, लेकिन अब मै, तुझे अपनी पुत्री मानता हूँ। पुत्री ही नहीं, किन्तु माता भी समझता हूँ। मैं, अब कभी भी तेरे को पाप की दृष्टि से न देखूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, और सूर्य, चन्द्र, तथा पृथ्वी की साक्षी से शपथ खाता हूँ, कि मैं, तेरे साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न करूँगा, न तुझे बुरी दृष्टि से ही देखूँगा। तेरी माता ने, मेरी दृष्टि, और मेरे हृदय का परिवर्तन कर दिया। अब मेरी दृष्टि मे, न तो वह पाप है, न वह काम-

विकार है। इस समय मैं जो प्रतिज्ञा कर रहा हूँ, वह सच्चे हृदय से कर रहा हूँ! मैं, तुझे कभी भी बुरी दृष्टि से न देखूँगा। इसलिए तू, मुझे क्षमा कर, और प्राण-त्याग का विचार छोड़ दे। तेरी माता, जिस ईश्वरीय शक्ति का दर्शन पहले करा रही थी, उस ईश्वरीय शक्ति का दर्शन, मुझे अब हुआ है। उस समय मेरी दृष्टि पर. काम-विकार का पर्दा पड़ा हुआ था, इससे मुझे वह शक्ति, कैसे दिखाई देती! अब जैसे ही मेरी दृष्टि पर से वह पर्दा हटा, मुझे उस ईश्वरीय शक्ति का आभास मिलने लगा, और मैं समझ गया, कि धर्म की रक्षा के लिए प्राण-त्याग का साहस ही ईश्वरीय शक्ति है। मै, इस ईश्वरीय शक्ति को जान चुका हूँ, इसलिए तुझे, कदापि बुरी दृष्टि से न देखूँगा। मेरी बात न मान कर, यदि तूने प्राणत्याग ही दिया, तो मेरे हृदय को अनन्त सन्ताप होगा। मेरे लिए, ऐसा कोई न रहेगा, जो मुझे धिक्कार तथा उपालम्भ देकर, मेरे संताप को कम करे। तू रहेगी, तो मुझे उपालम्भ तो देगी! तेरे दिये हुए उपालम्भों को, चाहे वे, कैसे भी और कितने भी क्यो न हों, मैं प्रसन्नता से सुनूँगा, तथा यह समझ कर तेरा उपकार मानूँगा; कि तू, मेरे पाप कम करने के लिए ही, मुझे उपालम्भ दे रही है। इसलिए तू, प्राण-त्याग का प्रयत्न छोड़ दे, मैं जो कुछ कहता हूँ, उस पर विश्वास कर। कदाचित तू मेरे कथन पर विश्वास न भी करे, तब भी, उस समय

तक तो शरीर मत त्याग, जब तक कि मेरे कथन के विरुद्ध कोई स्थिति सामने, न आवे। मेरे कथन के विरुद्ध स्थिति आने पर, तू चाहे मर जाना। तेरा यह प्राण-त्याग का मार्ग, सुरक्षित ही है; कहीं जाता तो है नहीं। तुझे, जब भी आवश्यकता मालूम हो, इस मार्ग का आश्रय ले सकती है। इस समय तेरे मरने से मुझ पापी के पापों का अन्त न होगा; इसलिए; मेरा उद्धार करने को तू जीवित ही रह।

यह कह कर रथी, वसुमति के पैरों पर गिर पड़ा और फूट फूट कर रोने लगा। उसका कथन सुनकर और उसे इस प्रकार विलाप करते देखकर, वसुमति का हृदय, करुणा से द्रवित हो उठा। वह सोचने लगी, कि माता ने अपनी शिक्षा को कार्यान्वित करके, इस रथी का सुधार कर दिया। उसका बलिदान, इसके हृदय परिवर्तन का कारण बन गया, और जहां यह, मेरे लिए भक्षक की तरह था, वहां अब पिता की तरह रक्षक होगया। इसका मलिन हृदय, अब निर्मल तथा पवित्र होगया है; इसी से यह पाप का पश्चाताप कर रहा है। ऐसे समय में मुझे, प्राण-त्याग की आवश्यकता नहीं है, किन्तु इसको सान्त्वना देने की आवश्यकता है।

इस प्रकार विचार कर, वसुमति ने रथी से कहा—पिताजी, आप घबराओ मत। जो होना था, वह हो चुका। अब उसके

लिए, इस प्रकार का रुदन व्यर्थ है। माता ने, अपना प्राण क्या त्यागा है, मुझे आपकी गोद में रखकर, आपको मेरा धर्म-पिता बना दिया। यदि माता ने प्राण न त्यागे होते, तो न तो आप मुझे पुत्री मानते, न आपका सुधार ही होता। माता के मरने से ही, आप मेरे धर्म-पिता बने हैं, और मैं, आपकी पुत्री बनी हूँ। अब आप बीती बात को विस्मृत कर डालो, और माता के शरीर की अन्त्येष्ठि का प्रबन्ध करो।

वसुमति की बातें सुन कर, रथी को बहुत ही आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा, कि यह तो इसकी माता से भी बढ़ कर है। इसकी माता ने भी, मेरे दुर्वाक्य सुनकर क्रोध नहीं किया था, न प्राण-त्याग कर मेरे लिए कोई अपशब्द या दुराशीषरूप बात कही। इसी तरह, यह भी मुझे आश्वासन दे रही है; मुझ मातृ-घाती को, उपालम्भ के दो शब्द भी नहीं कहती। किन्तु मुझे और यह कह रही है, कि बीती बात को विस्मृत करदो! धन्य है इसको और इसके माता पिता को!

वसुमति का उपकार मान कर रथी उठा। उसने और वसुमति ने वहीं वन में से सूखी लकड़ियाँ एकत्रित कीं। फिर चिता बना कर, दोनों ने उस चिता पर, धारिणी का शव रखा; और चिता में आग लगादी। चिता, धांय धांय करके जल उठी। यह सब देख कर भी, वसुमति धीर ही बनी रही। उसके मुख पर, विषाद

का चिन्ह भी नहीं था। वह तो यही विचारती रही कि माता ने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह शिक्षा उसने तो व्यवहृत कर दिखाई लेकिन वह दिन कब होगा, जब मैं भी, माता की शिक्षा के अनुसार व्यवहार करके मातृ-भूमि पर लगा हुआ कलंक मिटाऊँ! इस प्रकार वसुमति तो भविष्य के विषय में विचार कर रही थी, लेकिन रथी, धारिणी के शव को भस्म होते देख कर, अधीर हो उठा। वह जोर-जोर से रोने लगा, और वसुमति से कहने लगा कि हे पुत्री, तेरी माता की मृत्यु का कारण, मैं पापी ही हूँ। मेरे से रक्षा पाने के लिए ही उसे शरीर त्यागना पड़ा है; और अप्स-राओं को भी लज्जित करने वाला उसका सुन्दर शरीर, अकाल में ही भस्म हो रहा है। इस सती की हत्या का पाप, मुझे सदा ही सन्तप्त करता रहेगा! उससे बचने के लिए, मैं यही ठीक सम-झता हूँ, कि इसी चिता में पड़ कर चला जाऊँ! इसलिए तुम, इस मेरे रथ में बैठ कर जाओ। मै तो, इसी चिता में जल कर भस्म हो जाऊँगा, और इस प्रकार अपने पाप का यत्किंचित् प्रायश्चित करूँगा।

वसुमति से यह कह कर रथी, चिता में कूदने के लिए, अपने शरीर पर के वस्त्र निकालने लगा। वसुमति ने सोचा, कि इस समय यह बहुत दुखी है। यदि इसे समझाया न गया, तो यह चिता में कूद पड़ेगा! इस प्रकार विचार कर, वह, रथी का

हाथ पकड़, उससे कहने लगी—पिताजी आप यह क्या कर रहे है। जिस काम के करने से, आपने अभी मुझे रोका था, वही काम आप स्वयं कैसे कर रहे हैं? इस प्रकार अग्नि में जलने से क्या परिणाम होगा? इस तरह जलना, बाल-मरण है, जो अनन्त संसार बढ़ाने वाला है। आप, पाप से घबरा कर आग में जल मरना चाहते हैं, लेकिन इस तरह जल मरने से, पाप कम नहीं हो सकता। यह तो और पाप बढ़ाना है। माता ने तो अपना शरीर त्याग कर आपको सुधारा है, और अब सुधरे हुए आप, निष्कारण ही आग में जल मरें, यह कैसे ठीक होगा! पहले तो, अब आप में पाप रहा ही नहीं है। पश्चाताप के कारण, आपका पाप मिट गया है। कदाचित् फिर भी, आप अपने मे पाप रहा समझते हैं, तो वह पाप इस तरह नहीं मिट सकता। उस पाप को निकालने का उपाय तो, सदाचार पूर्वक दीन-दुःखी की सेवा करना, और पहले किये हुए पाप का पश्चाताप करना ही है। इसलिए आप आत्म-हत्या का कायरता पूर्ण विचार त्यागिये। इसके सिवा, आपने मुझे पुत्री, तथा मैने आपको पिता माना है। इसलिए मेरी रक्षा का भार, आप ही पर है। यदि आप जल मरेंगे, तो फिर मेरी रक्षा और मेरा पालन कौन करेगा? उस दशा में, आप अपने कर्त्तव्य का पालन भी न कर सकेंगे! इसलिए आपका प्राण त्याग करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है!

वसुमति ने, इस प्रकार रथी को समझा कर, उसे धैर्य दिया, और मरने से रोका। वसुमति के समझाने से रथी, वसुमति को रथ में बैठा कर कौशाम्बी की ओर चला! मार्ग में वसुमति, धर्मोपदेश द्वारा, रथी का सन्ताप मिटाती जाती थी। उसने, रथी से यह भी कहा कि, आप, माता के मरने आदि का समाचार, और मेरा परिचय, किसी को भी न सुनाइयेगा। ऐसा करने से अनिष्ट और अकल्याण की सम्भावना है। इसलिए, आप इन सब बातों को हृदय में इस तरह दबा रखियेगा, जैसे ये बातें हुई ही नहीं हैं; और मेरा परिचय भी इस प्रकार गुप्त रखियेगा, जैसे आप मुझे जानते ही नहीं हैं। मैं भी, अनिश्चित् काल तक के लिए, न तो किसी को अपना परिचय ही दूँगी, न किसी से यह वृतान्त ही कहूँगी।

रथी को इस प्रकार समझा कर, उसके रथ में बैठी हुई वसुमति रथी के घर आई। रथी के घर पर रथी की स्त्री, रथी के आने की प्रतिक्षा ही कर रही थी। वह सोचती थी, कि चम्पा की लूट हुई है; और साधारण सैनिकों के यहां भी बहुत द्रव्य आया है। मेरे पति तो रथी हैं इसलिए वे, अवश्य ही बहुत-सा माल लावेंगे! इस प्रकार विचारती हुई, वह रथी की प्रतीक्षा ही कर रही थी, इतने ही में, रथ लिए हुए रथी भी आगया। अपने पति को आया देख कर, रथी की स्त्री, बहुत प्रसन्न हुई! वह

सोचती थी, कि वस थोड़ी ही देर में, रथ मे से निकाल कर; मेरे घर में विपुल धन लाया जावेगा; लेकिन उसकी यह आशा, कुछ ही देर में लुप्त होगई। उसने देखा कि रथ में से उतर कर एक सुन्दर कन्या घर मे आई है, और खाली रथ, रथ-शाला को चला गया है। वसुमति को देख कर, रथी की स्त्री को आश्चर्य भी हुआ, और संदेह भी! उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर तो, आश्चर्य करती थी, और सोचती थी कि यह कोई देव कन्या है, या गन्धर्व कन्या है! साथ ही, उसको यह संदेह भी होता था, कि कहीं यह कन्या मेरा सुहाग-सुख छीनने, और मेरे पति के हृदय पर अपना अधिकार करने के लिए तो नहीं आई है!

वह, इस प्रकार विचार ही रही थी, उसी समय वसुमति ने, उसके पास जाकर उसको प्रणाम किया। प्रणाम का उचित उत्तर देकर, रथी की स्त्री ने वसुमति से यह प्रश्न किया, कि तुम किसको कन्या हो, और यहाँ कैसे आई हो? रथी की स्त्री के इस प्रश्न के उत्तर मे, वसुमति ने कहा—माता, मैं आप ही की कन्या हूँ, और यह घर मेरा ही है। मैं, आपकी सेवा करने के लिए आई हूँ।

वसुमति और रथीकी स्त्री में, ये वातें हो ही रही थी, उसी समय वहाँ पर रथी भी आ गया। रथी ने, अपनी स्त्री से कहा, कि—अपने कोई सन्तान नहीं है इसलिए मैं, इस कन्या को लाया हूँ। इसको अपनी ही कन्या समझ कर, सब तरह से

इसका प्रबन्ध रखना, और इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसका ध्यान रखना। इस कन्या का तो दुर्भाग्य ही है, जो इसे अपनी कन्या बनकर जीवन बिताना पड़ेगा, लेकिन अपना तो सद्भाग्य ही है, जो अपने को ऐसी कन्या मिली है। अपने यहाँ ऐसी कन्या जन्म ले, ऐसा अपना भाग्य नहीं है, फिर भी किन्हीं पूर्वकालीन पुण्य के प्रभाव से, अपने को यह कन्या प्राप्त हुई है। इसलिए इसके खान-पान आदि के संबन्ध में, सावधानी रखना।

यह कह कर रथी, चुप हो गया। रथी की स्त्री ने, भय-वश रथी से तो यही कहा, कि मैं, आपकी आज्ञानुसार सावधानी रखूँगी, और इसका पालन, अपनी पुत्री की ही तरह करूँगी; लेकिन उसके हृदय मे, वसुमति की ओर से सन्देह बना ही रहा। वह सोचती थी, कि यह सुन्दरी है, और युवती है। यद्यपि पति, इसे पुत्री कहते हैं, लेकिन मुझे पति के कथन पर विश्वास नहीं होता। मेरा हृदय तो यही कहता है कि यह मेरी सौत बनकर, मेरा सुख-सुहाग छीनने के लिए ही आई है। जो भी हो, परन्तु इस समय पति युद्ध से आ रहे हैं, उनकी आँखें लाल हैं, इस-लिए इस समय तो पति जो कुछ कहे, उसे स्वीकार करने में ही कल्याण है, फिर भी मुझे इसकी ओर से सावधान रहना चाहिए।

रथी की स्त्री के हृदय में, वसुमति के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया था, लेकिन वसुमति ने, इस ओर ध्यान तक नहीं दिया।

तो यही सोचती थी, कि मुझे तो इन माता-पिता की सेवा करनी है। मैं, इनकी पुत्री हूँ, इसलिए मेरा धर्म, इनकी सेवा करना ही है। इस प्रकार वसुमति के हृदय में, कोई दूसरा विचार नहीं हुआ।

वसुमति ने, रथी की स्त्री से कहा—माता, इस समय मुझे भूख लग रही है; इसलिए कुछ खाने को दीजिये। रथी के आने की सूचना न होने के कारण, रथी के यहाँ भोजन तयार नही था; लेकिन पहले का वचा हुआ कुछ भोजन रखा था। रथी की स्त्री ने वसुमति को वही भोजन दिया। वसुमति, राजकन्या थी। इस कारण अब तक वह अच्छा ही भोजन करती रही थी। इस समय उसके सामने जो भोजन आया, वैसा भोजन, उसने कभी नहीं किया था। फिर भी उसने, विना किसी संकोच या आनाकानी के, रथी की स्त्री का दिया हुआ वह भोजन किया। वास्तव में, भूख होने पर, ऐसा ही होता है। जब भूख होती है, तब चाहे जैसा भोजन हो, अच्छा ही लगता है; और भूख न होने पर, अच्छा भोजन भी स्वादिष्ट नही लगता। यदि लोग, भूख मिटाने के लिए भोजन करते हों तो उन्हें अनेक प्रकार के साग, चटनी, अचार और पापड़ आदि चीजों की आवश्यकता, कदापि न हो। इनकी आवश्यकता तो भूख न होने पर भी भोजन करने के समय ही, हुवा करती है।

भोजन करके वसुमति ने, रथी के घर को एक साधारण दृष्टि से देखकर यह जान लिया, कि इस घर में, किस-किस सुधार की आवश्यकता है ! वह सोचती है, कि अब यह घर मेरा ही है। इसलिए इसको व्यवस्थित और स्वच्छ रखना मेरा कर्त्तव्य है। मैं, इस कर्त्तव्य को पालन करने की तन-मन से चेष्टा करूँगी।

इस प्रकार विचारती हुई वसुमति, रात के समय सो रही। वह, नित्य ही महल में कोमल शैया पर सोया करती थी, उसके सोने के स्थान पर सुगन्ध उड़ा करती थी, और उसकी सेवा के लिये दासियाँ प्रस्तुत रहती थी, लेकिन परिस्थिति वश वह रथी के घर मे सो रही है; जहाँ महल की-सी सामग्री नहीं है। फिर भी, उसको किसी प्रकार का खेद नहीं है। उसका ध्यान, इस तरह की बातों की ओर गया ही नहीं। वह तो यही सोचती है; कि मुझे, माता की शिक्षा के अनुसार बहुत-से काम करने हैं। वह समय कब होगा, जब मैं, माता की शिक्षा को सफल कर दिखाऊँगी।

वसुमति, सूर्योदय से पहले ही उठ खड़ी हुई। शौचादि से निवृत्त होकर वह, गृह-कार्य में लग गई। उसने, धारिणी से गृहकार्य सम्बन्धी जो शिक्षा पाई थी, उसे वह, कार्यान्वित कर दिखाने लगी। यद्यपि उसने, माता से शिक्षा ही शिक्षा पाई थी, दासियों के कारण, उसे स्वयं को गृह के कार्य कभी नहीं करने पड़े थे, फिर भी उनके करने में, उसको किसी भी प्रकार की अरुचि

नहीं हुई; न उनका करना भार ही जान पड़ा। उसने अपने हाथ से घर का कूड़ा-कचरा साफ किया; सब चीजो को साफ करके, व्यवस्थित रखा; पानी छाना; पशुशाला आदि साफ करके, दूध दही की व्यवस्था की; और यह सब करके, रसोई बनाने लगी।

चतुर स्त्री, साधारण वस्तुओं से भी विशेष भोजन बना देती है, और मूर्ख स्त्री, विशेष वस्तुओ को भी, खराब कर देती है। वे ही वस्तु, चतुर-स्त्री के हाथ मे आने पर, वह चतुर स्त्री, उन वस्तुओ से, श्रेष्ठ, सुस्वादु और सात्विकतापूर्ण भोजन बना देती है; लेकिन मूर्ख स्त्री, उन्हीं वस्तुओ से कुस्वादु, तामसी, और हानि करने वाला भोजन बनाती है। इस तरह, भोजन का अच्छा और बुरा बनना केवल वस्तुओं के ही अधीन नहीं है किन्तु बनाने वाली के अधीन भी है।

वसुमति ने रथी के घर भोजन बनाया। रथी, रथी की स्त्री, तथा रथी के यहाँ के और सब लोग, वसुमति का बनाया भोजन करके, बहुत प्रसन्न हुए। सब लोग यही कहने लगे, कि वस्तुएँ तो वे ही हैं, जिनसे नित्य भोजन बनता था, लेकिन आज का जैसा सुस्वादु भोजन, कभी नहीं हुआ था। यह कन्या तो, जैसे साक्षात् सरस्वती ही है। इस तरह सब लोग, वसुमति की प्रशंसा करने लगे। वसुमति, सब लोगों को प्रसन्न रखती हुई, रथी के यहाँ रहने लगी। जिह तरह धारिणी ने, अपने बलिदान

से रथी के हृदय का परिवर्तन कर दिया था, उसी तरह वसुमति ने अपने परिश्रम से, रथी के घर का परिवर्तन कर दिया। उसने रथी के घर को स्वच्छ, और पवित्र बना दिया। सब लोग कहने लगे, कि पुत्री ने तो इस घर को देवसदन-सा बना दिया। इस प्रकार सब लोगों द्वारा, वसुमति की प्रशंसा होने लगी।

कसौटी पर।

विपत्ति, धैर्य की कसौटी है। धीर आदमी की परीक्षा, विपत्ति के समय ही होती है। जो विपत्ति के समय भी न घबरावे, उस समय भी साहस रखे, वही धीर है। विपत्ति के न होने पर, सम्पत्ति के समय तो सभी लोग धीर रहते ही हैं, लेकिन वास्तव में धीर वही है, जो विपत्ति के समय भी निश्चल रहे, अपने ध्येय से पतित न हो, और उस विपत्ति को भी तुच्छ समझे। तुलसीदासजी ने कहा ही है—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी आपत्ति काल परखिये चारी।

विपत्ति के समय जो धैर्य रखता है, वास्तव मे वही धीर है, जिसमें धैर्य है, वही विपत्ति का सामना कर सकता है, वही धर्म की अराधना कर सकता है, और वही, निश्चित ध्येय तक पहुँच सकता है। जिस में धैर्य नहीं है, जो विपत्ति से घबरा जाता है, वह कुछ भी नहीं कर सकता है, चाहे उसका ध्येय, कितना ही

श्रेष्ठ और उच्च क्यों न हो । संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं है, जिसमे यत्किंचित् विघ्न, या विपत्ति न आती हो । उन विघ्न या विपत्ति का सामना करने वाला, उन पर विजय प्राप्त करने वाला ही, कार्य कर सकता है, जो उनसे परास्त हो जाता है, वह कार्य नहीं कर सकता । इसलिये लौकिक और अलौकिक, दोनों ही प्रकार के कार्यों में धैर्य की आवश्यक्ता है; तथा जिसमें धैर्य है, वही सच्चा वीर है ।

वसुमति, बड़ी ही धैर्यवती थी । एक राजकन्या के लिये, पिता का छूटना, माता का असमय में मरना, और स्वयं को दूसरे के घरका आश्रय लेकर जो काम कभी नहीं किये उन कामों को करना पडे, तो वह कैसा विपत्ति का समय माना जाता है ! ऐसे समय में, कौन न घबरा जावेगा ! किसका धैर्य, न छूट जावेगा ! लेकिन वसुमति को, धारिणी ने धैर्य की जो शिक्षा दी थी, उसके प्रताप से, न तो वसुमति इन सब बातों को कष्ट मान कर घबराई ही, न अपने ध्येय को ही विस्मृत हुई । वह, घबराती भी क्यों ! घबराती तो तब, जब वह इन सब बातो को कष्ट मानती । उसने, इन सब बातों में से किसी को भी कष्ट नहीं माना । घर, राज्य, दास-दासी, पिता आदि के छूटने; माता के मरने, तथा रथी के घर का काम करने, आदि में से उसने, किसी में भी कष्ट नहीं माना; इसलिये वह, इन सब बातों के होने पर भी प्रसन्न

ही रही। वास्तव मे विपत्ति के समय तभी धैर्य रह सकता है, जब विपत्ति को विपत्ति ही न माने। जो विपत्ति को विपत्ति मानता है, वह कभी धैर्य भी त्याग बैठता है।

रथी के घर को अपना ही घर, रथी को पिता, तथा उसकी पत्नी को माता मान कर, वसुमति, घर के सब काम काज अपने हाथ से किया करती थी। छोटे से छोटा, या बड़े से बड़ा काम करने मे, न तो उसे आलस्य होता था, न संकोच होता था, न थकावट ही होती थी। यद्यपि रथी के घर मे नौकर-चाकर भी थे, लेकिन वसुमति, उन पर आज्ञा चला कर ही नहीं रह जाती थी, किन्तु स्वयं ही, हाथ से काम करती थी। जब वसुमति स्वयं भी हाथ से काम करती, तब नौकर चाकर भी, कैसे बैठे रह सकते थे! वे भी काम करते ही। वसुमति, उन के खान-पान आदि का बराबर ध्यान रखती, सुख-दुःख में उनकी सहायता करती, उनका सम्मान करती, और उन्हे आत्मीय मानती; हलकी दृष्टि से न देखती। इन कारणों से, नौकर-चाकर भी वसुमति से प्रसन्न रहते। गृह-कार्य से निवृत्त होकर वसुमति, सब के साथ बैठ जाती, और सब को धर्म-विषयक बातें सुनाती। वह, सब को खिला-पिला कर स्वयं खाती पीती, सब को सुला कर स्वयं सोती, और सब से पहले उठ कर, गृह-कार्य में लग जाती। इस तरह उसने अपने सद्व्यवहार से, घर के सब लोगों का हृदय जीत

लिया। सब लोग, उसकी प्रशन्सा करते, तथा प्रत्येक कार्य के विषय मे, उसी से कहते और पूछते।

वसुमति द्वारा, अपने घर की इस प्रकार उन्नति और सु-व्यवस्था देख कर, रथी भी बहुत प्रसन्न रहता था! वह सोचा करता, यह राज कन्या है, इसलिये अनेक दासियों से सेवित रह कर राज महल में रहती थी, फिर भी मेरे यहां किस प्रकार काम कर रही है। इसने, मेरे घर को कैसा बना दिया है! इसको अपनी तो चिन्ता ही नहीं है। न तो यह स्वयं के खाने-पीने की ओर ध्यान देती है, न पहनने ओढ़ने, या सोने जागने की ओर। साथ ही, मेरे और मेरी स्त्री के प्रति यह वैसी ही भक्ति रखती है, जैसी भक्ति, माता-पिता के प्रति सन्तान रखती है। मेरे कारण इसकी माता की मृत्यु हुई, यह बात तो इसने बिल-कुल ही विस्मृत करदी है। इसके किसी भी व्यवहार से यह नहीं जान पड़ता, कि इसको उस घटना का स्मरण है। इसने, मुझे भी पवित्र बना दिया है, और मेरे घर को भी पवित्र कर दिया है। इसी के प्रताप से, मेरे में पहले वाले दुर्गुण नहीं हैं। मेरे पर इसका बहुत उपकार है, बहुत भार है, और इस प्रकार गृह कार्य करके, यह मेरे पर अधिक भार चढ़ा रही है! मेरे लिये तो, यह, पुत्री ही नहीं, किन्तु आराध्य-देवी के समान जीवनदात्री है। मै इसके ऋण से कैसे मुक्त हो सकता हूँ!

इस प्रकार वसुमति से रथी भी प्रसन्न रहता, तथा रथी के घर में रहने वाले दूसरे लोग भी रहते, लेकिन वसुमति के प्रति रथी की स्त्री के हृदय में जो सन्देह उत्पन्न हुआ था, वह दिन प्रति-दिन वृद्धि ही पाता जाता था, और इस कारण वह वसुमति से अप्रसन्न रहती। उसको, पति, तथा नौकर-चाकर आदि लोगों द्वारा की जाने वाली वसुमति की प्रशंसा, असह्य होती। वह, यही सोचती, कि यह कौन है, कहाँ जन्मी तथा बड़ी हुई है, किसकी लड़की है, इसका नाम क्या है, आदि बातें तो कोई पूछता ही नहीं है, सब लोग, केवल इसकी प्रशन्सा ही करने लगते हैं। यह भी ऐसी चालाक है, कि इसने थोड़े ही दिनों में, सारे घर पर आधिपत्य, और घर के सब लोगों को अपने हाथ में कर लिया है। पति भी, इसकी अंगुली के इशारे पर, नाचते-से जान पड़ते हैं। यह, घर का काम भी इस तरह करती है, कि जैसे स्वयं के घर का ही काम करती हो। अपने घर का काम भी, इस तरह मन लगा कर कोई नहीं करता। लेकिन यह तो, काम के आगे शरीर, और खाने-पीने आदि किसी भी बात का ध्यान नहीं रखती। मेरा घर है, फिर भी मैं इस तरह काम नहीं करती, और यह इस तरह काम क्यों करती है? अवश्य ही, इसके हृदय में दुर्भावना है। यह, इस घर की स्वामिनी बनने की इच्छा न रखती होती, तो इतना काम क्यों करती? घर के सब लोगों

को, अपने हाथ में क्यो कर लेती, तथा पति भी, इससे प्रेम क्यों करते ? मुझे, इसकी ओर से सावधान हो जाना चाहिए। इस काँटे को, अभी से उखाड़ फेकना चाहिए, अन्यथा मुझे, अपने सुख-सुहाग से वंचित् हो जाना पड़े, और मेरा स्थान यह ले लेगी !

रथी की स्त्री के हृदय में, वसुमति की ओर से इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो गया था, इस कारण वह, वसुमति से ईर्षा करने लगी। वह सोचती थी, कि घर में इसी की पूछ होती है, मुझे तो कोई पूछता भी नहीं है ! जैसे, घर की मालकिन यही है ! मै मालकिन तो एक ओर बैठी रहती हूँ, और यह मालकिन बनी हुई है ! सब से पहले तो, इसका यह गौरव घटाना चाहिए, और फिर जिस तरह भी हो, इसको घर से निकालना चाहिए। यह घर से निकले, तभी मेरा दुःख मिट सकता है।

लोग समझते हैं, कि प्रतिस्पर्द्धा करने में तो परिश्रम करना होता है, लेकिन ईर्षा करने में, कुछ नहीं करना होता। इस प्रकार के विचार वाले लोग, काम द्वारा किसी से बढ़ कर नहीं होना चाहते, किन्तु दूसरे को गिरा कर, स्वयं बड़े बनना चाहते हैं। रथी की स्त्री ने भी, इसी मार्ग का अवलम्बन लिया। वह, वसुमति को सब की दृष्टि से गिराने का प्रयत्न करने लगी। इसके लिए, कभी वह स्वयं ही किसी स्थान पर कूड़ा-करकट डाल देती,

और फिर वसुमति को बुलाकर, उससे कहने लगती, कि 'तू तो स्वयं को घर की सफाई रखने-वाली कहती है, फिर यह कचरा-कूड़ा कैसे रहने दिया !' कभी, किसी वर्त्तन को स्वयं ही गन्दा कर देती, कभी किसी वस्तु को अस्त-व्यस्त डाल देती और कभी, भोजन के पदार्थ मे कुछ मिला देती। ऐसा करके फिर वह, उसके लिए वसुमति को अपराधिन बताने लगती, तथा उसकी निन्दा और भर्त्सना करने लगती। यद्यपि वसुमति, रथी की स्त्री की करतूत समझ चुकी थी, फिर भी वह, कभी आवेश में न आती, किन्तु यही कहती, कि माता, क्षमा करो ! भूल से, यह अपराध हुआ होगा ! भविष्य में मैं, इस विषय मे अधिक ध्यान रखूँगी। अब तक आप, मेरे काम में दोष नहीं निकाला करतीथी, इसीसे मुझ में असावधानी आगई होगी। अब, सावधानी रखूँगी।

वसुमति को उसकी माता ने यह शिक्षा दे रखी थी, कि किसी भी समय, और किसी भी स्थिति मे, क्रोध नहीं करना होगा ! वसुमति को, माता की यह शिक्षा याद थी। वह, सेवा-धर्म की गहनता, और उसमें होने वाली कठिनाइयो को, भली प्रकार समझती थी। वह जानती थी, कि सेवा-धर्म किन कारणो से कठिन माना गया है। सेवा-धर्म, कार्य की लघुता गुरुता के कारण गहन नहीं है, किन्तु इस कारण गहन है, कि कभी-कभी अच्छे काम को भी बुरा, और अधिक काम को भी थोड़ा बता

कर, व्यर्थ की डाट-डपट बताई जाती है। अधिक, या अच्छा काम करना कठिन नहीं है कठिन तो, अच्छे काम को भी बुरा, और अधिक काम को भी थोड़ा सुनना है। ऐसे समय में, शांति रहना कठिन है, इसीलिए सेवा-धर्म को गहन बताया गया है। इन बातों को जानने के कारण, वसुमति, किसी भी समय, रथी की स्त्री के व्यवहार से क्रुद्ध न होती; किन्तु नम्रता-पूर्वक अपना अपराध स्वीकार करके, क्षमा मांग लेती, और उस कार्य को पुनः कर डालती।

रथी की स्त्री सोचती थी, कि मैं इसके साथ ऐसा कठिन व्यवहार करूँगी, तो यह किसी समय क्रुद्ध होकर मुझसे लड़ाई करने लगेगी; और जब यह लड़ने लगेगी, तब इसको घर से निकालना सुगम होगा; लेकिन रथी की स्त्री का यह प्रयत्न भी निष्फल रहा। इसी बीच में, एक ऐसी बात हो गई, जिसे लेकर रथी की स्त्री ने, कोलाहल करना शुरू कर दिया; और कलह मचा दिया।

वसुमति को, तन मन से गृहकार्य करती देखकर, रथी सोचा करता, कि यह दधिवाहन और धारिणी की पुत्री होकर भी, मेरे घर में इतना काम करती है, कि जितना काम अनेक दासी दास भी नहीं कर सकते। इतना काम करके भी, अपने खान पान और पहनने ओढ़ने की चिन्ता नहीं रखती। मैंने भी आज तक

इससे इस विषय में कुछ नही कहा, न विशेष प्रकार से इसकी खबर ही ली। इसलिए किसी दिन इसको अवकाश में देखकर, इससे इस विषय मे कुछ कहूँगा।

रथी, इस प्रकार विचार करता था। एक दिन उसने, वसुमति को काम काज से निपट कर बैठी हुई देखा! उस समय वसुमति, गृहकार्य के विषय में ही विचार कर रही थी। वह सोच रही थी, कि मैंने कौन-कौन से काम तो कर लिये हैं, और कौन-कौन से काम करना शेष हैं। रथी ने इस समय को वसुमति से बात करने के लिए उपयुक्त समझा; इसलिए वह, वसुमति के सामने आया। रथी की स्त्री तो इस चिन्ता में ही रहती थी, कि मेरे पति इस लड़की को क्यों लाये हैं, इसको लाने का उद्देश क्या है, यह भेद किसी तरह मालूम करना चाहिए। यद्यपि धारिणी के बलिदान, और वसुमति के उपदेश से, रथी, बिलकुल ही पवित्र जीवन बिताने वाला गृहस्थ हो गया था, उसके हृदय में, किंचित भी पाप भावना नहीं थी, और वह वसुमति को ही नहीं, किन्तु संसार की समस्त पर-स्त्री को माता और बहन के समान मानने लगा था, लेकिन रथी की स्त्री को, यह क्या मालूम! वह तो, अपने पति को वैसा ही दुराचारी, तथा परदार लम्पट समझती थी, जैसा कि पहले समझती थी। इसलिए वह तो, वसुमति के विषय में भी यही अनुमान करती थी, कि मेरे

पति इसको ऊपर से तो पुत्री कहते हैं, लेकिन वास्तव में ये, इस को सुख सुहाग देने के लिए ही लाये है। रथी की स्त्री, इस प्रकार का अनुमान तो करती थी, लेकिन इस अनुमान को पुष्ट करने के लिए, उसे कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिला था। इसलिए वह अपने अनुमान के विषय मे, किसी प्रत्यक्ष प्रमाण की खोज में ही रहती थी। वसुमति को बैठी हुई और अपने पति को उस के सामने जाते देखकर रथी की स्त्री ने सोचा कि आज सच्चा और पूरा भेद मालूम हो सकेगा! इस प्रकार विचार कर वह, रथी और वसुमती की पारस्परिक वात चीत सुनने के लिए छिप गई और दोनो क्या वात करते है यह ध्यान लगा कर सुनने लगी।

जो पुरुष या स्त्री काम करती रहती है उसके वस्त्र न तो वहुत वढ़िया ही हो सकते है न विलकुल स्वच्छ ही रह सकते हैं और काम करने वाला, अपने शरीर पर आभूषणों का वोझ तो रखेगा ही क्यो! काम करने वाले को यह विचार रहता है, कि वढ़िया वस्त्र पहनने से शरीर में आलस्य आता है। फिर तो यही सूझता है कि मेरे यह वस्त्र, काम करने से खराव हो जावेंगे इसलिए जहाँ तक भी हो सके मुझे काम से वचते ही रहना चाहिए। यदि विचार किया जावे, तो वहुत अन्श में यह विचार ठीक भी ठहरता है। किसी वढ़िया कपड़े पहने हुई स्त्री को, स्वयं के दूध पीते वालक को गोद में लेने मे भी, हिचकिचाहट

होगी। वह सोचेगी कि कहीं यह बालक हंग-मूत देगा, या दूध उगल देगा, तो मेरे ये कपड़े खराव हो जावेंगे। इस तरह कपड़ों की रक्षा के विचार से, उसे अपनी प्रिय सन्तान को लेने मे भी संकोच होगा, हाँ, किसी दूसरे वस्त्र द्वारा अपने वढ़िया वस्त्रो की रक्षा का प्रवन्ध करने के पश्चात्, चाहे ले। माता के लिए, सन्तान से अधिक प्रिय तो कोई नही माना जाता। जब वढ़िया कपड़े होने पर, अपनी सन्तान को लेने में भी संकोच होता है, तो दूसरे कार्य करने की इच्छा तो हो ही कैसे सकती है ? यही वात पुरुषों के लिए भी है। इस कारण जो स्त्री पुरुप काम करने वाले होते हैं, वे, वढ़िया कपड़े नहीं पहनते; या पहन ही नहीं सकते; अथवा उनके वढ़िया कपड़े स्वच्छ नहीं रह सकते। वे, आभूपणों को भी कार्य का वाधक समझते है और वस्त्र तो चाहे जितने स्वच्छ तथा वढ़िया हो, काम करने पर उसमें शीघ्र ही दाग या मैलापन आना स्वाभाविक है !

वसुमति भी, काम किया करती थी, इसलिए उसके शरीर पर भी, न तो वढ़िया वस्त्र ही थे, न आभूषण ही थे। वह, जो साधारण वस्त्र पहने थी वे भी वहुत स्वच्छ न थे लेकिन ऐसे गन्दे भी न थे जो स्वास्थ्य खराव करें अथवा जिन से घृणा हो। वहुत लोग काम के नाम पर स्वास्थ्य नाशक या घृणोत्पादक वस्त्र पहने रहते हैं लेकिन वसुमति इसे ठीक नहीं समझती थी। वह

समय-समय पर अपने वस्त्रों को साफ करना आवश्यक समझती थी फिर भी काम करने वाले के वस्त्र काम न करनेवाले के वस्त्रों के समान स्वच्छ कैसे रह सकते है !

विचारमग्न वसुमति के सामने, रथी जा खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर उससे कहने लगा—हे पुत्री, हे भगवती, तू कौन है, किसकी कन्या है और अपने यहां किस प्रकार रहती थी, इसे मै अच्छी तरह जानता हूँ ! मुझे मालूम है, कि तेरे को किस स्थिति-वश मेरे यहां आना पड़ा है। तेरे को, मेरे यहां आने से पहले, कोई गृह-कार्य न करना पड़ा होगा। तू सैकड़ो, सहस्रों दासियों से सेवित थी, इसलिए तेरे को, कोई कार्य करने की आवश्यकता ही क्या हो सकती थी ! मेरे यहां आकर तू गृह संबन्धी जो कार्य करती है, उनके कारण मेरे पर बोझ चढ़ रहा है। मेरे पर, वैसे ही तेरा असीम उपकार है। मेरे घर के सब काम करके तू मेरे पर अधिक भार, चढ़ा रही है। तेरे को मेरे घर के काम के आगे, न तो अपने खाने पीने का ध्यान है, न पहनने ओढ़ने का ही। इस प्रकार तू, मेरे यहां कष्ट उठा कर, मुझ पर और भार लाद रही है। मेरे से न तो तेरा यह कष्ट सहना ही देखा जाता है, न तेरे द्वारा किये गए उपकारो से, मैं ऊऋण ही हो सकता हूँ। इसलिए मेरी यह प्रार्थना है, तू, गृह-कार्य में इतना परिश्रम मत किया कर। गृह कार्य करने को, दासियां हैं

ही; और यदि अधिक दासियों की आवश्यकता हो तो मैं, और दासियां रखदूँ। यदि तेरी इच्छा चाहे तो, दासियो पर तूं नियन्त्रण चाहे रखा कर, और उन्हे व्यवस्था चाहे दिया कर, परन्तु स्वयं श्रम मत किया कर। तू तो श्रम करना छोड़ कर, अच्छे २ वस्त्र पहना कर, आभूषण धारण किया कर, और समय पर अच्छा भोजन करके शरीर को सुख में रखा कर। इस पर भी यदि काम करने की इच्छा हो तो धर्म-कार्य किया कर; और माला लेकर, परमात्मा का स्मरण किया कर।

रथी की स्त्री, अपने पति द्वारा वसुमति से कही गई बातें, सुन रही थी, यद्यपि रथी की बातों मे, ऐसी एक भी बात नहीं थी, जिसमें दुर्भावना की गन्ध भी हो; बल्कि रथी की बातों से रथी की भावना जानकर तथा वसुमति की पूर्व स्थिति का यत्किंचित परिचय पाकर, रथी की स्त्री का भ्रम दूर हो जाना चाहिये था, लेकिन जो आदमी अपनी आंखों पर, किसी रंग विशेष का चश्मा चढ़ा लेता है, उसको प्रत्येक चीज़ उसी रंग की दिखने लगती है। इसके सिवा, दुर्जन मनुष्य अच्छाई नहीं देखते, वे तो अच्छाई में भी, बुराई ही ढूंढते हैं। कहावत है, कि—

अति रमणीये वपुपि व्रणमेव हि मात्तिकानिकरः।

अर्थात्—उत्तम और सुन्दर शरीर में भी, मक्खियां, फोड़ा या घाव ही ढूँढा करती हैं।

इसी के अनुसार, रथी की पवित्र हृदय से कही गई बातों में भी, उसकी स्त्री को बुराई जान पड़ने लगी। रथी की बातें सुन कर, वह सोचती थी कि पति, इस लड़की को क्यों लाये हैं, इसका सच्चा रहस्य, आज मालूम हुआ है! ये तो इसे भगवती मानते है। इसको काम से मुक्त करके, अच्छा भोजन कराना चाहते है, और अच्छे २ वस्त्राभूषण पहनाना चाहते है। ये, इसके लिए जैसे सम्मान पूर्ण शब्द कहते है, वैसे शब्द, इन्होंने मुझसे तो कभी भी नही कहे; न कभी यही कहा, कि मैं और दासियां रख दूँगा, तुम काम मत किया करो, किन्तु अच्छे २ वस्त्राभूषण पहन कर, सुख से रहो, वल्कि मैं स्वयं जब भी इनसे और दासी रखने, या कोई अच्छा वस्त्र, अथवा वढ़िया आभूषण लाने के लिए कहती हूँ, तभी ये उत्तर दिया करते हैं, कि 'वहुत दासियां तो है! कुछ काम स्वयं भी किया करो!' इसी प्रकार वस्त्राभूषण के लिए भी, कोई न कोई वहाना बना दिया करते हैं, लेकिन इसके लिए तो स्वयं ही करते है। इसके प्रति, पति की कैसी भावना है, यह तो मालुम हो ही गया, लेकिन अव देखती हूँ, कि यह क्या कहती है। मेरा यह अनुमान सही ही निकला कि यह लड़की, मेरा सुख-सुहाग छीनने के लिए आई है।

आज की अधिकांश स्त्रियाँ, जिन विचारो की है, वैसे ही विचार यदि वसुमति के भी होते, तव तो वह, रथी का कथन

सुनकर प्रसन्न होती। सोचती, कि अच्छा है, जो मुझे काम से फुरसत मिल रही है। मै इतना काम भी करती हूँ, कष्ट भी उठाती हूँ, और ऊपर से, इनकी स्त्री द्वारा कही गई बातें भी सुननी होती हैं। इनकी बात मान लेने पर, इन कष्टो से भी मुक्त हो जाऊँगी, नित्य के होने वाले आरम्भ-समारम्भ के पाप से भी बच जाऊँगी, सुख से खा-पहन भी सकूँगी, और धर्मध्यान द्वारा, परलोक के लिए भी कुछ करती रहूँगी।

यदि वसुमति आज की स्त्रियो के विचारो की तरह विचार रखती होती, तब तो वह, इस तरह सोच कर रथी, का कथन स्वीकार कर लेती; परन्तु उसके विचार, ऐसे विचारो से भिन्न थे, इसलिए रथी की बातो के उत्तर मे, वह कहने लगी—पिताजी, आज आपकी बाते सुन कर, मुझे बहुत ही आश्चर्य हो रहा है। आप, धर्म को समझ चुके हैं, फिर भी इस तरह की बात कहेगे, यह मैंने कभी कल्पना भी न की थी। पिताजी, सब से पहली बात तो यह है, कि मै आपको 'पिता' और आप मुझे 'पुत्री' क्या झूंठ ही कहते हैं? क्या मैं आपकी पुत्री और आप मेरे पिता नहीं हैं? क्या, धर्म जानने पर भी अपने में मिथ्याचार शेष है जो ऊपर से तो कुछ कहे और हृदय में कुछ रखें! मुझे अपने लिए तो वह विश्वास है, कि मै जैसा कहती हूँ, वैसा ही व्यवहार में भी लाती हूँ, लेकिन आपकी बातों से

जान पड़ता है कि अभी आप मे भेद भाव भरा हुआ है। अन्यथा आप यह न कहते, कि 'मेरे घर का काम करके, मुझ पर बोझ चढ़ाती है! यह घर आपका है, तो क्या मेरा नही है? जब मैं आपकी पुत्री हूँ, तो यह घर मेरा क्यो नही है? आप, अपने में से, इस तरह का भेद-भाव दूर कर दीजिये। आप में, इस तरह का भेद रहना, अनुचित है। रही, आप पर बोझ चढ़ने की बात लेकिन आप पर बोझ तो तभी चढ़ सकता है, जब मैं इस घर को अपना न मान कर काम करती होऊँ! मैं, अपने घर का काम करूँ, उसका बोझ, आप पर क्यो चढ़ेगा? इसी प्रकार, अपने घर का काम करने मे, दुःख भी क्यों हो? दुःख तो तब चाहे हो, जब मैं इन कामो को दूसरे के मानूं! मेरे ही घर के काम करने में, मुझे दुःख नही होता, किन्तु उसी प्रकार प्रसन्नता होती है, जिस प्रकार सबको, अपने घर के काम करने में प्रसन्नता होती है।

आप कहते हैं, कि 'घर के काम करना छोड़ दो, और अच्छे गहने कपड़े पहन कर, परमात्मा का भजन करो; घर का काम, दासियाँ करेंगी।' लेकिन पिताजी, ऐसा कहना, धर्म का अपमान करना है। घर मे तो रहना, घर के कामो का लाभ तो लेना, और काम न करना, किन्तु काम करने के लिए दासियो को समझना.. धर्म का मर्म न जानने का ही कारण है। जो लोग ऐसा करते

हैं, वे, धर्म के मर्म को नहीं जानते। अच्छा खाना-पहनना और आराम करना तो छूटता नहीं, और केवल काम करना छोड़ बैठना, क्या उचित है? यदि कोई व्यक्ति, संसार-व्यवहार से अपना सम्बन्ध ही तोड़दे, सब ममत्व त्याग कर, साधु ही हो जावे, और उस दशा में गृह-कार्य न करे, तो यह ठीक भी है, लेकिन इस कारण के बिना गृह-कार्य न करना, और निरुद्योगी बन बैठना, कदापि उचित नहीं हो सकता। धर्म का मर्म यही है, कि सदा उद्योग में रत रहे। जब तक संसार-व्यवहार मे है तब तक तो संसारव्यवहार में सावधानीपूर्वक उद्योग करे, और जब संसारव्यवहार त्याग कर संयम स्वीकार कर ले, तब, परलोक के लिए उद्योग करे; लेकिन निरुद्योगी बन बैठना, धार्मिकता नहीं है। संसारव्यवहार में रहनेवाला, संसार-व्यवहार के उद्योग से अवकाश मिलने पर, अथवा अवकाश लेकर भी परलोक के लिए तो उद्योग कर सकता है, परन्तु जिसने संसार-व्यवहार से सम्बन्ध त्याग दिया है, वह, संसार व्यवहार के कार्यों में उद्योग नहीं कर सकता। लेकिन संसार-व्यवहार तो त्यागा नहीं है, 'यह मेरा घर है, ये मेरे बालक हैं, ये मेरे नौकर हैं, यह मेरे लिए भोजन बना है', आदि व्यवहार तो छूटा नहीं है, फिर भी, गृह-कार्य नौकरों के लिए समझ कर, स्वयं को पाप से बचा हुआ मान लेना, यह धर्म से अनभिज्ञ होने का ही कारण है।

पिताजी, जब यह घर मेरा है, तब इसके कार्य भी मुझे करने ही चाहिएँ। यह बात दूसरी है, कि सब कार्य स्वयं न कर सकने पर दूसरे से भी सहायता ले ली जावे, लेकिन 'यह काम मेरे करने योग्य नहीं है, यह तो दासी के करने योग्य है, मैं, घर की मालकिन हूँ, इसलिए मुझे काम न करने चाहिएँ, जो दासी होगी, वह करेगी' आदि विचार से कार्य त्याग बैठना, काम में भेद समझना, काम न करने में ही स्वामित्व मानना, इसीसे संसार डूब रहा है। इसी भवना से, पाप आता है। इस तरह की भवनासे ही, अभिमान होता है, और स्वयं को बड़ा, तथा दूसरे को छोटा समझने लगता है। इसके सिवा, अपने घर का काम, जब मैं स्वयं करती हूँ तब तो पाप कम होता है, लेकिन जब दूसरे से ही कराने लगूंगी, स्वयं न करूंगी, तब ज्यादा पाप होगा। क्योंकि, मैं, धर्म का विचार रख कर विवेक-पूर्वक काम करती हूं। दासी-दास, मेरी तरह का विवेक नहीं रख सकते; इसलिए जो काम मैं अल्प पाप में ही कर लेती हूं, वे ही काम महा पाप से होंगे। एक बात, और है। दासी-दास भी तभी पूरी तरह और अच्छा काम करेंगे, जब स्वामी, या स्वामिनी स्वयं भी काम करती हो। केवल उन्हीं के सहारे काम छोड़ देने पर, और स्वयं काम न करने पर, परतन्त्र भी होना पड़ेगा, दासी-दास भी, स्वामी को अपने सहारे जान कर लापर्वाही करेंगे, और काम न

करने के कारण अकर्मण्य रहने से, अपने शरीर में रोग भी होंगे। स्वयं काम न करने पर, केवल दूसरों पर आज्ञा चलाते रहने पर मनस्ताप भी रहेगा, और काम भी अच्छा न होगा। फिर, या तो वे लोग जैसा भी काम करे, उन से सन्तुष्ट रहना होगा, या उनसे कलह करना होगा। मेरी समझ से नित्य का कलह भयंकर पाप है।

पिताजी, मैं घर के किसी भी काम के विषय में यह भेद नहीं समझती, कि यह काम मेरा नहीं है, दासी का है। मैं, सभी काम करती हूँ। मुझे, अपने हाथ से काम करती देख कर, दास-दासी इस बात को जानती हैं, कि यह हमारे ही भरोसे नहीं है किन्तु स्वयं हाथ से भी काम कर सकती है। इस कारण वे स्वयं भी, विना कहे ही काम कर डालते है। उनको इस बात का ध्यान रहता है, कि यदि हम लोग काम न करेंगे, तो यह स्वयं ही हाथ से काम कर डालेगी। इस तरह, काम भी विना कहे ही हो जाता है, और उसी तरह का अच्छा, तथा विवेक से होता है, जैसा मैं स्वयं करती हूँ। मैं, अपने हाथ से काम करके, उनके सामने आदर्श रख देती हूँ। आदर्श रख कर मैं, अकर्मण्य होकर बैठ जाऊं, तब तो दास-दासी भी उस आदर्श के अनुसार काम न करेंगे, लेकिन मैं स्वयं भी काम करती रहती हूँ, इससे आदर्श के अनुसार काम भी होता है, काम में भेद-भाव भी नहीं होता,

तथा दासी-दास के मन में भी किसी काम को हल्का, या नीच समझ कर, उसे करने की ओर से अरुचि नहीं होती। इस तरह मुझे, अपने घर का काम करने में, आनन्द होता है! मैं यदि स्वयं काम न करके, दूसरों पर आज्ञा ही चलाया करती, तो सब लोगों की दृष्टि से भी गिर जाती, तथा मिथ्या चारिणी भी होती। मैं, सब से कहूँ तो यह, कि मेरा और तुम्हारा आत्मा समान है, लेकिन व्यवहार इसके विपरीत रखूं, दास-दासी के आत्मा को हल्का या नीच समझूं, और स्वयं के आत्मा को बड़ा मानूं, तो यह मिथ्याचार होगा। मैं, इस तरह का पाप करना, ठीक नहीं समझती।

पिताजी, आपने कहा है, कि माला लेकर परमात्मा का भजन किया करो। मैं, परमात्मा का भजन करना बुरा नहीं मानती, यह तो अच्छा ही है, लेकिन तब, जब कर्त्तव्य-पालन के साथ हो। अपने पर जिस कार्य का भार है, उस कार्य को पूरा करके, परमात्मा का भजन करना अच्छा है, परन्तु परमात्मा का भजन करने के नाम पर, अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करना, अपने पर जो भार है, उसे न उठाना, तथा ऊपर से परमात्मा का नाम लेकर, हृदय में दूसरे ही विचार चलने देना, यह ईश्वर भजन के नाम पर, ढोंग है। मैं, अपना काम करती हुई, परमात्मा को याद रखती हूँ, और परमात्मा को याद रखती हुई

ही, सब काम करती हूँ। परमात्मा का भजन करने का उद्देश्य, व्यवहार में उसको याद रखना है। कुछ समय बैठ कर परमात्मा का स्मरण कर लेना, परन्तु व्यवहार मे परमात्मा को भूल जाना, यह सच्चा स्मरण नही है। व्यवहार के समय परमात्मा को याद रखने से, उसे विस्मृत न होने से, झूठ कपट आदि पाप भी नहीं होते, कार्य में विवेक रहता है और इस कारण किसी अल्पारम्भ से हो सकने वाले कार्य में, महारम्भ नही होता। इस तरह मैं, कार्य करती हुई ही परमात्मा का भजन कर लेती हूँ। आप कार्य छोड़ कर परमात्मा का स्मरण करने के लिये मुझ से मत कहिये। मेरी माता ने, मुझे कर्मवाद की जो शिक्षा दी थी मैं, उसका पालन कर रही हूँ। जो लोग, वैसे तो परमात्मा का स्मरण करते हैं, लेकिन कार्य-व्यवहार में परमात्मा को भूलकर ऐसा व्यवहार करते हैं, कि जैसे परमात्मा है ही नहीं, वे लोग, धर्म का अपमान कराते हैं। मैं, धर्म का अपमान नही कराना चाहती। आप मुझे काम करती देखकर समझते होंगे, कि यह दुःख उठा रही है, और शायद यह समझ कर, करुणा-भाव से प्रेरित हो, आपने मुझ से काम त्यागने का कहा है, परन्तु मैं दुःख नही उठा रही हूँ, किन्तु आनन्द मे हूँ। आप, मेरे विषय में किसी प्रकार की चिन्ता मत करिये।

वसुमति का कथन सुनकर, रथी को खेद भी हो रहा था,

और प्रसन्नता भी। उसको यह विचार कर तो खेद हुआ कि मैंने इससे अपने-बिराने के भेद की बात क्यों कही ! और वसुमति से जो उपदेश सुनने को मिला था, उसके कारण रथी को प्रसन्नता थी। वह हाथ जोड़ कर वसुमति से कहने लगा—हे भगवती, हे आराध्या, मुझे क्षमा कर। मेरे मन में तेरे प्रति किंचित भी भेद-भाव नहीं है ! मैंने तो साधारणतया ही यह कहा था कि मेरे पर, तेरे द्वारा किए गये उपकारों का बोझ चढ़ता है। मैं समझता हूँ, कि मेरा यह कहना भी अच्छा रहा। यदि मैंने इस तरह न कहा होता, तो तेरा जो उपदेश सुनने को मिला है, वह कैसे मिलता। धर्म का मर्म तो, आज तेरे से ही सुनने को मिला है। अब तक मैं, आलस्य में ही धर्म मानता था, लेकिन आज तूने मुझे बुद्धि दी, और बता दिया, कि धर्म, आलस्य में नहीं है, किन्तु उद्योग में है। आज, तेरे उपदेश के कारण, मेरा जीवन बदल गया। आज से मैं, अपना जीवन आलस्य में न खोऊँगा, दूसरों पर ही आज्ञा न चलाऊँगा, नौकरों, सेवकों को हल्का, और स्वयं को बड़ा न मानूँगा, किन्तु उद्योगरत रहा करूँगा; तथा किसी भी कार्य के विषय में यह न समझा करूँगा, कि यह काम, मेरे करने योग्य नहीं है, नौकरों के करने योग्य है।

इस प्रकार वसुमति का उपकार मान कर, और उसके प्रति

कृतज्ञता प्रकट करता हुआ, रथी, वहाँ से चला गया। वसुमति, भी, उठकर काम मे लग गई; लेकिन रथी की स्त्री के हृदय में एक प्रकार की खलबली मची हुई थी। कहावत है कि—

अवगुण को उमगी गहत, गुण न गहत खल लोग।
रक्त पियत पय ना पियत. लगी पयोधर जोंक॥

इसके अनुसार रथी और वसुमति की बात-चीत, जीवन को दूसरे ही साँचे मे ढाल देने वाली थी, परन्तु रथी की स्त्री ने, उनकी बातो में से कुछ ही बातें ली, और उनका अर्थ भी. अपनी रुचि के अनुसार ही लगाया। वह सोचती थी, कि बस. अब तो सब बात स्पष्ट ही हो गई। यह. पति की देवी, भगवती, आराध्या है, और इस घर की मालकिन है। पति से कहती है, कि 'यह घर मेरा ही है। आपके मन मे भेद क्यो है?' पति ने भी, इसके सब कथन को स्वीकार किया है। अब, बाकी ही क्या रहा! अभी इनका व्यवहार प्रकट में नही आया है, लेकिन यदि यह, इस घर मे कुछ दिन और रही, तब तो फिर प्रत्यक्ष ही मालकिन बन बैठेगी! पति और नौकर-चाकर आदि सब लोग, इसके अधीन ही हैं। घर का सब काम-काज भी, इसी के हाथ में है; मेरे हाथ में तो कुछ भी नहीं है। इसलिए कुछ समय पश्चात्, या तो इस घर से मुझे निकल जाना होगा, या इसकी दासी

वनकर जीवन विताना होगा। इस अवस्था वाली, इस रूप-यौवन वाली, और ऐसी सुकुमारी कोई दूसरी स्त्री, कदापि इतना काम नहीं कर सकती; लेकिन यह तो, स्वयं को इस घर की मालकिन समझती है इसीसे इतना काम करती है, अपने शरीर आदि की चिन्ता नही रखती। मेरे लिए यह, वगल की नागिन-सी है। यदि मुझे स्वयं को संकट से वचाना है, भविष्य अच्छा रखना है, तथा जीवन दुःखी नहीं वनने देना है, तो इसे इस घर से शीघ्र ही निकाल देना चाहिए; और ऐसा उपाय करना चाहिए, कि जिसमे फिर. इसकी और पति की मुलाकात भी न हो सके!

इस प्रकार अनेक संकल्प विकल्प के पश्चात् रथी की स्त्री ने यह निश्चय किया कि सवसे पहले तो यह जानना चाहिए कि यह है कौन ? किसकी लड़की है, इसका नाम क्या है, तथा मेरे घर क्यों रहती है ! आज तक पति इसे पुत्री ही पुत्री कहते हैं न तो कभी उन्होंने इसका नाम पता वताया, न इसने ही स्वयं का परिचय दिया। इस नाम पता न वताने में भी, अवश्य ही कोई रहस्य है। इसलिए इससे इसका नाम-पता पूछना चाहिए।

रथी को एक नूतन उपदेश सुना कर वसुमति नित्य की भाँति एकाग्र मन से अपने काम में लगी हुई थी। उसके हृदय में किसी भी प्रकार का दूसरा विचार न था। वह काम कर रही थी, इतने ही में उसके सामने, सहसा रथी की स्त्री जा खड़ी हुई।

उस समय रथी की स्त्री, क्रोध के कारण राक्षसी के समान भयंकर हो रही थी। और उसकी आँखे लाल थी, आकृति विगड़ रही थी, और वस्त्र भी अस्तव्यस्त हो रहे थे। उसने आते ही वसुमति का हाथ पकड़ कर उससे कहा लड़की, तेरा नाम वता, और यह भी वता, कि तू किस जाति कुल की है, कहाँ जन्मी है, तेरे माता पिता का नाम क्या है तथा वे कहाँ रहते हैं? रथी की स्त्री का अनायास यह व्यवहार देखकर, और उसके प्रश्न सुनकर वसुमति कारण के विषय में कुछ निश्चय न कर सकी। वह तो स्वयं जैसी सरल थी वैसी ही सरल रथी की स्त्री को भी समझती थी। इस लिए रथी की स्त्री के व्यवहार, और उसके प्रश्न सुनकर वसुमति को आश्चर्य तो हुआ, फिर भी वह घवराई नहीं, किन्तु उसने स्वाभाविक सरलता और नम्रता से कहा, माता, आप अपनी पुत्री से ये कैसे प्रश्न कर रही हैं? मेरी माता, आप ही तो हैं! जो पालन करें, वे ही माता पिता हैं, और मेरा पालन आप, तथा पिता कर रहे हैं, इसलिए आप मेरी माता हैं, और पिताजी, मेरे पिता है। मेरा घर भी, यही है। इसी प्रकार मेरी जाति भी वही है, जो आपकी जाति है; तथा जिस नाम से आप मुझे सम्वोधन करें, वही मेरा नाम है! आपने, तथा पिताने मेरा नाम 'पुत्री' रखा है। इसी नाम से, आप मुझे सम्वोधन करती हैं, और मैं वोलती हूँ, इसलिये मेरा नाम 'पुत्री' है। ये सब बातें

तो आप जानती है, तथा पहिने भी मुझसे पूछ चुकी है, फिर आज आपको ये प्रश्न करने का कष्ट पुनः क्यो उठाना पड़ा ?

वसुमति ने जो उत्तर दिया, वह हृदय को द्रवित कर देने वाला था, लेकिन क्रोध से भरी हुई रथी की स्त्री पर, उस उत्तर का कोई प्रभाव नही हुआ। वसुमति का उत्तर सुन कर, वह, एक दम से कड़क उठी, और वसुमति का हाथ छोड़ कर ज़ोर-ज़ोर से कहने लगी, कि—बड़ी मेरी पुत्री बनने चली है ! न मालूम किस जाति की है, किसकी पैदा की हुई है, कुल का कुछ पता नही बताती और कहती है, कि 'मै तो आप की पुत्री हूँ, तथा यह घर मेरा ही है !' ऊपर से तो मेरी पुत्री बनी है और हृदय में मेरी सौत बनने की भावना है। मैने, आज सब बातें सुनकर, सारा भेद मालूम कर लिया है। अब मैं, तुझ कुलटा के भुलावे मे नही आ सकती। 'मै जान चुकी हूँ, कि तू मेरा सुख-सुहाग छीनने के लिये ही आई है !

रथी की स्त्री, इसी तरह की बातें बकने लगी; और कहने लगी, कि अब मै तभी अन्न-जल लूँगी, जब तू मेरे घर से निकल जावेगी। चम्पा पर चढ़ाई करके जाने वाले सभी लोगो के यहाँ, कुछ न कुछ माल आया ही है, लेकिन मेरे यहाँ, यह मेरी सौत आई है ! कहती है, कि यह तो मेरा ही घर है ! इस तरह यह, इस घर की मालकिन बनने के लिए आई है ! यदि इसकी

ओर से मैं सावधान न होती, तब तो कुछ ही दिनों में यह, घर से बाहर निकाल देती, या मुझे अपनी दासी बना कर रखती। अच्छा हुआ, जो मैं समय पर चेत गई। अब इसको बाजार में बिकवा कर ही, मैं अन्न-जल लूँगी; उस समय तक, न तो अन्न ग्रहण करूँगी, न जल ही लूँगी।

रथी की स्त्री ने, इस तरह की बातों से सारा घर गुंजा दिया। घर के सब लोग, उसका विकराल रूप देख कर, दंग रह गये, और वसुमति पर कलंक लगाने के कारण, उसको धिक्कारने लगे। रथी की स्त्री, त्रियाचरित्र फैलाकर बैठ गई। उसके कुपित होने का समाचार रथी के पास गया। रथी दौड़ा हुआ अपनी स्त्री के पास आया। अपनी स्त्री का डरावना रूप देखकर, उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने, अपनी स्त्री से पूछा, कि आज ऐसी कौन-सी बात है, जिसके कारण तुमने ऐसा विकराल रूप बनाया है? पति का यह प्रश्न सुनकर तो, रथी की स्त्री का पारा, और चढ़ गया। वह कहने लगी, कि मेरा रूप तो विकराल है, और इस कुल्टा का रूप अच्छा है, जिसको लाकर घर में रखा है! यह अच्छी है, और मैं बुरी हूँ! वास्तव में, यदि मेरे को बुरी न समझा होता, तो इसको लाते ही क्यों, और घर की मालकिन ही क्यों बनाते! इसको, मेरी सौत बनाने के लिए ही तो लाये हो! इसने आकर, मेरे सुख-सुहाग को संकट

में डाल दिया है; इसलिए मैंने निश्चय किया है, कि इस घर में या तो यही रहेगी, या मैं ही रहूँगी। मैं, अन्न-जल भी तभी ग्रहण करूँगी, जब इस मेरे घर से यह निकल जावेगी। बल्कि, इसको घर से निकालने मात्र से मुझे सन्तोष न होगा। इस घर से निकल कर, यदि आपने इसे दूसरे घर में रख दिया, तो आपका और इसका सम्बन्ध बना ही रहेगा, तथा मेरे लिए जो संकट है, वह दूर न होगा। इसके सिवा, यदि आप चम्पा की लड़ाई के पश्चात् इसको न लाते, तो जैसे और सब लोग वहाँ से द्रव्य लाये, उसी तरह आप भी, द्रव्य लाते! इस दुष्टा के कारण ही मेरे घर में चम्पा की लूट का माल नहीं आया है। इसलिए जब इसको बाजार में बेच कर मुझे २० लाख सोनैया ला दोगे, तभी मैं अन्न-जल लूँगी; नहीं तो अन्न-जल भी न लूँगी, और सब जगह यह पुकार करूँगी, कि मेरे पति, न मालूम किसकी लड़की पकड़ लाये हैं, तथा घर मे रखे हुए है! अब तक मैं भोलेपन में थी। इसके और आपके कपट को नहीं समझी थी, लेकिन अब मैं, सब बातें जान गई हूँ। आप तो सदा के कपटी हैं ही, यह, कुल्टा भी ऐसी कपटिन है, कि कुछ कहा नहीं जा सकता। यह, ऐसी मीठी बोलती है, इस तरह की सहनशील है, कि मैं इसके काम में अनेक दोष बताती हूँ, इसको अनेक बातें कहती हूँ फिर भी हँसती ही रहती है; क्रोध तो करती ही नहीं है। क्रोध करे

भी कैसे ! इसको तो, इस घर की मालकिन बनना था ! यदि क्रोध करके झगड़ा करने लगती तो घर की मालकिन कैसे बन सकती ! इसका और आपका कपट, मुझको मालूम हो गया है, इसलिए अब मुझे तभी सन्तोष होगा, और मैं तभी अन्न-जल लूँगी, जब इसको बेचकर, मुझे बीस लाख सोनैया ला दोगे !

बाजार में

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम्
स तं सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम् ।
यथा किराती करिकुम्भलब्धाम्
मुक्ता परित्यज्य विभर्ति गुञ्जाम् ॥

संसार में यह देखा जाता है कि जो व्यक्ति, जिस वस्तु का महत्व, उसकी विशेषता, और उसके गुण नहीं जानता, वह, उस वस्तु का आदर नहीं करता; अपितु अनादर करता है। आदर तो वही करता है, जो उस वस्तु के गुणो को जानता, समझता है। इसके लिए यह कहावत प्रसिद्ध है, कि भीलनी, जंगल मे गजमुक्ता को देख कर, उसे किसी पत्ती का अण्डा समझ, फोड़ने को उस पर चरण-प्रहार करती है, और जब वह नहीं फूटता है, तब उसको उठा कर, देख कर, तथा निकम्मा समझ कर फेंक देती है; लेकिन घुंगचियों को बड़े चाव से बीन कर, उनकी माला बना शौक से पहनती है। संसार में-

मोती कीमती माना जाता है, और घूँगची की कोई कीमत नहीं मानी जाती। परन्तु भीलनी मोती की विशेषता, उसके गुण तथा महत्व को नहीं जानती, इसलिए उसको तो फेक देती है, और घूँगची बीनती फिरती है।

ठीक यही बात, रथी की स्त्री के विषय में भी थी। वह भी नहीं जानती थी, कि वसुमति कौन है, इसमें क्या विशेषता है, इसके कारण मेरे पति का कैसा सुधार हुआ है, तथा इसने इस घर को भी कैसा बना दिया है। यद्यपि वसुमति ने जो सुधार कर दिया था, वह प्रत्यक्ष दिखता था, लेकिन रथी की स्त्री, उस सुधार को देखती हुई, भी न देखती हुई-सी थी। उसमें, वसुमति के प्रति सन्देह और ईर्षा का आधिक्य था, इस कारण उसकी दृष्टि, वसुमति की किसी भी विशेषता पर गई ही नहीं। वह तो उसमें दोष ही ढूँढ़ती रही।

रथी की स्त्री, वसुमति के साथ जो व्यवहार कर रही थी, वह तो अज्ञानवश, वास्तविकता से अपरिचित होने के कारण कर रही थी, लेकिन वसुमति तो सब बातों को जानती थी। मैं कौन हूँ, यहाँ कैसे आई हूँ, और यहाँ की रानी मेरी कौन है, आदि बातें उसे मालूम थीं, फिर भी वह, रथी की स्त्री द्वारा स्वयं के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार क्यों सहती थी? इसी कारण सह रही थी, कि वास्तविकता प्रकट हो जाने पर, रथी को-जिसे

अपना पिता माना है—आपत्ति में पड़ना पड़ेगा। वसुमती, किसी नीच जाति-कुल की न थी, जो उसे रथी की स्त्री के पूछने पर अपना नाम पता बताने में संकोच हो, और इस कारण उसने नाम पता न बताया हो। उसने अपना नाम-पता इसीलिए नहीं बताया, कि यह रथी की स्त्री मेरा नाम-पता जान कर सब से प्रकट कर देगी, जिससे मेरे रथी पिता के प्राण संकट में पड़ जावेंगे। क्योंकि, यहाँ की रानी मृगावती मेरी मौसी है। मेरा नाम सुन कर, वे, मुझे अवश्य बुलावेंगी, और फिर, लाख शत्रु होने पर भी मेरे मौसा सन्तानिक, इन रथी पिता को, मेरा तथा माता का अपहरण करने, और माता के प्राणनाश का कारण होनेसे अवश्य ही दण्ड देंगे। इसी विचार से उसने, रथी की स्त्री की सब बातें सुनी, सहीं, फिर भी अपना नाम पता नहीं बताया। रथी की स्त्री के दुर्व्यवहारसे, वह घबराई भी नही। वहतो सोचती थी, कि माता ने मुझे जिन जिन परिस्थिति का सामना करने का उपदेश दिया है, उनमें से यह तो एक बहुत नगण्य बात है। इसके सिवा, हो सकता है, कि जिस तरह राम को कार्यक्षेत्र मे ले जाने के लिए कैकेयी मे उन्हे वन भेजने की बुद्धि उत्पन्न हुई थी, उसी तरह, यह स्थिति भी मुझे अनुकूल कार्य-क्षेत्र में ले जाने के लिए ही उत्पन्न हुई हो। नहीं तो, माता को मुझे घर से निकलवाने, बाजार में बिकवाने, और बदले में २० लाख सोनैया

मंगवाने की बात न सूझती। मेरे लिए, प्रसन्नता की सब से पहली बात तो यह है, कि माता ने मेरी कीमत २० लाख सौनैया समझी। मुझे, थोड़ी कीमत की तो नहीं मानी। छोटे मुँह से, बड़ी बात निकलना कठिन है। माता के मुँह से, २० लाख सोनैयाकी जो बात निकली है, वह मेरे अच्छे भविष्य की सूचना देती है। इसलिए मुझे, माता की बातों से प्रसन्न होना चाहिए, और माता का उपकार मानना चाहिए। इस तरह विचार कर वसुमति, उस समय भी प्रसन्न थी ।

रथी से उसकी स्त्री ने कहा, कि मैं प्रण कर चुकी हूँ, कि जब आप इस लड़की को बेच कर मुझे २० लाख सोनैया ला देंगे, तभी मैं अन्न-जल लूँगी, अन्यथा अन्न-जल न लूँगी, और जाकर चौराहे पर पुकार करूँगी, कि मेरा पति दुराचारी है, वह न मालूम किसकी लड़की उड़ा लाया है। इस लड़की का रूप-रंग बताता है, कि यह किसी बड़े घर की ही लड़की है। मेरी पुकार, राजा आदि सुनेंगे, तब इस लड़की का अपहरण करने के अपराध में आप को दण्ड भी देंगे, और आपकी सारी प्रतिष्ठा भी मिट्टी में मिल जावेगी ।

अपनी स्त्री की बातें सुन कर, रथी को क्रोध होना स्वाभाविक था, लेकिन धारिणी और वसुमती के उपदेश से, उसका जीवन दूसरे ही साँचे में ढल गया था। इस कारण उसने

अपनी स्त्री से कहा—हे सुभगे, हे सुनयना, आज तेरे को क्या हो गया है, जो तू इस तरह की बातें कर रही है, और ऐसी लक्ष्मी रूपा कन्या को घर से निकालने का कह रही है ? इसके साथ इतने दिन रह कर भी, तू इसका महत्व नहीं समझ पाई ? मेरे स्वभाव में जो परिवर्तन हुआ है, क्या तू उसे नहीं जान पाई ? तू तो जानती ही है, कि मैं पहले कैसे स्वभाव का था, मुझ में कैसी-कैसी बुराइयाँ थी और मैं कैसा अभिमानी तथा दुराचारी था। लेकिन इस सती के प्रताप से मेरा स्वभाव बिलकुल ही बदल गया है। यह घर भी पहले कैसा था, और इसके आने के बाद कैसा हो गया ! यह मंगलमयी जब से आई है, तब से अपने यहाँ सब तरह से आनन्द रहता है। फिर आज तुझे यह कैसी कुबुद्धि आई, जो तू इसको निकालने का कह रही है ! तूं, इसके बदले में २० लाख सोनैया चाहती है इससे यह तो स्पष्ट है, कि तूने इसको २० लाख सोनैया कीमत की तो मानी है; परन्तु वास्तव में, २० लाख सोनैया लेकर इसको बेचने का विचार वैसा ही मूर्खतापूर्ण है, जैसा मूर्खतापूर्ण विचार, कौड़ियों के बदले चिन्तामणि देने का होता है। तू, बुद्धिमती है, सब बातों को जानती, समझती है, फिर भी आज यह क्या करने पर उतारू हुई है, इसको सोच, और अपने निश्चय के विषय में, एक बार पुनः शान्ति से विचार कर। मैं जो कुछ कह रहा

हूँ, वह, तेरी दी हुई धमकी से भय खाकर नही कह रहा हूँ, किन्तु इसलिए कह रहा हूँ, कि ऐसी सती अपने यहाँ से न जावे, तथा तेरे द्वारा इसको निकालने का पाप न हो !

रथी की सरलता और नम्रतापूर्ण बातों से, रथी की स्त्री का साहस और बढ़ गया। वह सोचने लगी, कि अब ये मेरे सामने नम्र हुए हैं, और मेरे को सुभगे सुनयना आदि कह रहे हैं। इन्होंने, मेरे लिए ऐसे अलंकार पूर्ण शब्द, आज तक कभी भी नही कहे। केवल आज ही, इस दुष्टा को घर में रहने देने के लिए, मेरे वास्ते इस तरह के सन्मान पूर्ण शब्द कह रहे हैं। परन्तु मै, इस तरह की बातों के भुलावे में आने वाली नही हूँ।

रथी की बातो के उत्तर मे, रथी की स्त्री कड़क कर कहने लगी कि—बस, आपकी ये सब बातें रहने दो। आपके लिए सुभगे और सुनयना जो होगी, वह होगी। आपकी दृष्टि मे, यदि मैं सुभगे और सुनयना होती, तो मेरे को सुख-सुहाग से वंचित रखने के लिए, इस दुष्टा को क्यो लाते। आपके लिए तो, यह कुल्टा ही सुभगा-सुनयना है। इसी से तो इसकी इतनी प्रशंसा कर रहे हैं, कि संसार मे जैसे एक यही सर्वोत्कृष्ट है, दूसरी सब स्त्रियाँ तो निकृष्ट ही हैं। जो व्यक्ति प्रिय होता है, उसके प्रत्येक काम अच्छे लगते हैं, उसमें बुराई तो देख ही नही पड़ती, फिर चाहे वह कैसा ही बुरा क्यो न हो ! इसी के अनुसार, आपको

यह प्रिय है इसीसे आप इसकी इतनी प्रशंसा करते हैं; लेकिन मेरी दृष्टि मे तो, यह पतित, कुल्टा, और कुलक्षणा है। इसने, मेरे घर मे आते ही मेरे लिए तो नरक का-सा दुःख उत्पन्न कर दिया। इसके आते ही, मेरी तो पूछ ही नही रही। जैसे घर की मालकिन यही है! यदि मैं, समय पर सावधान न हो जाती, तो इसने और आपने, मेरे को सुख-सुहाग से वंचित करके, इस घर से निकालने का ही प्रपंच रचा था। अब मैं यही कहती हूँ, कि मेरे से और कुछ मत कहलाओ, किन्तु भलाई इसी में है, कि इसको बाजार में बेंचकर, मुझे २० लाख सोनैया ला दो। नहीं तो मैं, अभी जाकर सब जगह पुकार करूँगी, जिससे आपको, न मालूम कैसी विपत्ति में पड़ना पड़ेगा!

यद्यपि धारिणी और वसुमति की कृपा से, रथी के स्वभाव में बहुत कुछ नम्रता आ गई थी, परन्तु कहावत है कि—

अतिशय रगड़ करे जो कोई।
अनल प्रकट चन्दन ते होई॥

इसके अनुसार, अपनी पत्नी द्वारा दी गई धमकी और वसुमति पर किये गये आक्षेपों को सुनकर, रथी को भी क्रोध आ ही गया। उसने, अपनी स्त्री से कहा, कि—मैं तो तेरे को नम्रता से समझाना चाहता था, और मेरी इच्छा थी, कि किसी तरह तू

मान जाते ! लेकिन तू तो, मेरी नम्रता का दुरुपयोग कर रही है ! इस सती पर भी कलंक चढ़ा रही है, और मुझे भी डर बता रही है ! मैं, तेरी इस तरह की बातों से, भय खाने वाला नहीं हूँ ! जा, तेरे को जो कुछ करना हो, वह कर ! राजा आदि से, फरियाद करनी हो, तो प्रसन्नता से कर ! मुझे, किसी तरह का भय नहीं है, और तुझ-सी दुष्टा, घर से निकल जावे, यही अच्छा है ! किसी ने ठीक ही कहा है, कि—

वरं न दारा न कदार दारा।

अर्थात्—स्त्री का न होना तो अच्छा है, लेकिन कर्कशा स्त्री का होना अच्छा नहीं है।

इसके अनुसार, तेरा न होना ही अच्छा है। मैं तो, तेरे को नम्रता से समझा रहा था, परन्तु तू नीच स्वभाव की है, इस कारण, नम्रता से समझाने पर कैसे मान सकती है ! बड़े अनुभव के पश्चात ही, किसी ने कहा है, कि 'डाटे पर नव नीच !' नीच लोग, नम्रता से नहीं माना करते, वे तो डाटने पर ही झुकते हैं। इसलिये मैं तेरे से स्पष्ट कहता हूँ, कि तू मेरे घर से अभी निकल जा, और तेरी इच्छा हो वहाँ जा, तेरा मन चाहे उससे पुकार कर, तथा तेरे को अच्छा लगे वहाँ रह ! तेरे कहने से, मैं, अपनी पुत्री को पृथक नहीं कर सकता !

रथी भी, इस तरह क्रुद्ध हो उठा। पति-पत्नी में, वाग्युद्ध

होने लगा। वसुमति दोनों की बातो को सुन ही रही थी। वसुमति के स्थान पर, यदि कोई दूसरी होती, तो वह तो रथी की बाते सुन कर, प्रसन्न हो जाती। सोचती, कि 'यह स्त्री, मुझ से अनावश्यक द्वेष रख कर कलह किया करती है, और मुझ पर मिथ्या कलंक लगाती है. इसलिए अच्छा है, जो पिता इसको घर से निकालने का दण्ड दे रहे है! यह, घर से निकल जावेगी, तो मेरा रात-दिन का क्लेश भी मिट जावेगा और इसको अपने कृत्य का दण्ड भी मिल जावेगा! पिता की सेवा, मैं कर लूँगी!' साधारण स्त्री को, इस तरह का विचार होना स्वाभाविक था, लेकिन वसुमति को ऐसा विचार नहीं हुआ। यदि वसुमति को इस तरह का विचार हो आता, तब तो वह, रथी की स्त्री से, जिस तरह भी चाहती, बदला ले सकती थी। क्योंकि रथी वसुमति को श्रद्धा तथा आदर की दृष्टि से देखता था। वसुमति पर पूर्ण विश्वास रखता था, उसको आराध्य-देवी मानता था, इसलिये वसुमति के कथन पर, वह अपना सिर तक काट कर दे सकता था, अपनी स्त्री को निकालना, या उसे किसी प्रकार का दण्ड देना, यह तो बहुत सरल बात थी। लेकिन वसुमति के मन में रथी की स्त्री के विरुद्ध कोई विचार नहीं हुआ। वह तो, रथी की स्त्री की बातें सुन कर, यह विचारती थी, कि माता जो कुछ कह रही हैं, वह ठीक ही है। इनके

हृदय मे, मेरे प्रति विश्वास नही रहा। ये समझती है, कि यह मेरी सोत बनने, मेरे पति को मुझ से छीनने, और मुझे सुख-सुहाग से वंचित करने के लिये आई है। इस सन्देह के कारण ही. माता मुझे घर से निकालना चाहती हैं। इन का यह कार्य वैसा ही है, जैसा अपनी सौत को हटाने, और उसके दुःख से स्वयं को बचाने के लिऐ, स्त्रियों का कार्य हुआ करता है। पिताजी, इन पर व्यर्थ ही रूष्ट होते हैं। मेरे कारण माता को किसी प्रकार का कष्ट हो, यह मेरे लिऐ कलंक की बात है। सन्तान का कर्त्तव्य है, कि वह, माता-पिता को सन्तुष्ट रखे। मैं इनकी पुत्री हूँ, और यह मेरे माता-पिता है, इसलिए मेरा कर्त्तव्य भी यही है। मैं तो समझती हूँ, कि माता, मेरे कल्याण के लिए, मुझे कार्य-क्षेत्र मे भेजने के लिए ही यह सब कुछ कर रही है, और मेरे किन्हीं पूर्व-सुकृतो की प्रेरणा से ही, माता मे ऐसी भावना उत्पन्न हुई है। इसलिए माता की इच्छानुसार, मेरे लिए बिक जाना ही श्रेयस्कर है।

इस प्रकार विचार कर वसुमति, रथी और उसकी स्त्री के बीच मे खड़ी हो गई। वह, नम्रतापूर्वक रथी की स्त्री से कहने लगी, माता! आप धैर्य्य रखिये, मैं अभी आपकी आज्ञा का पालन करूंगी। आप के हृदय मे, मेरे लिए यह सन्देह हुआ है, कि यह मेरी सौत बनेगी, और मुझे आपकी सौत बनना नहीं है।

ऐसी दशा में, आप की आज्ञा का पालन करके बिक जाने, और आपको भ्रमरहित तथा सन्तुष्ट करने में, मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ! बल्कि, मैं आपकी पुत्री हूँ, इसलिए आपको सन्तुष्ट करना, मेरा साधारण कर्त्तव्य है । फिर इस विशेष कारण के उपस्थित होने पर, मै आपकी आज्ञा का पालन न करूँ, आपको सन्तुष्ट न करूँ, यह कैसे सम्भव है ! आप, थोड़ी देर के लिए शान्त हो जाइये, जिसमे मैं, पिताजी को समझा लूं ।

रथी की स्त्री से यह कह कर, वसुमति, रथी से कहने लगी पिताजी, आप माता पर निष्कारण ही क्रुद्ध हो रहे हैं । माता ने, मुझे बेचने का कह कर अनुचित क्या किया है ? इन्होंने, इतने दिन तक मेरी रक्षा की, फिर यदि ये मेरे बदले २० लाख सोनेया चाहती हैं, तो बुरा क्या करती हैं ! इनकी, मुझ पर असीम कृपा है, इसीसे ये, मुझे २० लाख सोनेया में ही छुटकारा दे रही हैं ; नहीं तो मैं, अनेक जन्म तक इनके ऋण से मुक्त नही हो सकती थी । इसलिए आप मेरे साथ चलिये, मैं विकने के लिए चलती हूँ । माता ने, मेरी कीमत २० लाख सोनैया की है, परन्तु वास्तव में मेरी कीमत क्या है, यह तो बाजार में ही मालूम होगा । मेरे बिके बिना, माता को सन्तोष न होगा । माता के हृदय में, मेरे को बिकवाने की जो बात आई है, वह न मालूम किस प्रेरणा से आई है । मेरे द्वारा, आगे न

मालूम कैसे-कैसे काम होने हैं, इसी से माता ने, मुझे बाजार में विकवाने का निश्चय किया है। यदि कैकयी ने, राम को वन मे न भेजा होता, तो राम को कोई न जानता। इसी प्रकार, यदि माता मुझे विकने के लिए न भेजें, तो मैं भी इसी घर की रह जाऊँगी। इस घर में, अब मेरी कुछ जरूरत भी नहीं रही इस घर का सुधार, हो चुका है। अब तो मेरी जरूरत उस जगह है, जहाँ सुधार की आवश्यकता है। दीपक की आवश्यकता उसी घर में है, जिस घर में अन्धेरा है। जहाँ प्रकाश मौजूद है, वहाँ दीपक रखना अनावश्यक है। इसी तरह अब मेरा भी यहाँ रहना अनावश्यक है; इसलिए आप मेरे साथ शीघ्र ही चलिये, जिसमें माता को अधिक देर तक कष्ट में न रहना पड़े।

वसुमति की वातो से, वहाँ उपस्थित सभी लोगों का हृदय पसीज उठा, लेकिन रथी की स्त्री पर, कोई प्रभाव नहीं हुआ। वसुमति की वातों को सुन कर, वह, अपने मन में और न मालूम क्या क्या विचार करने लगी; परन्तु रथी से, चुप न रहा गया। उसने वसुमति से कहा—पुत्री ! तू यह क्या कह रही है। क्या इस कर्कशा के कहने से, मैं तेरे को विकने दूँ ? तुझ ऐसी मंगलमयी सती को, अपने यहाँ से चली जाने दूं ? क्या मैं, तुझे वेंच कर, कन्या-विक्रेता कहाऊँ ? मैं, ऐसा कदापि नहीं कर सकता। यह कर्कशा, यदि मेरे घर से निकलती हो, तो आज ही

भले निकल जावे, परन्तु इसके कहने से, मैं तेरे को कैसे बेच सकता हूँ !

रथी के कथन के उत्तर में, वसुमति बोली—पिताजी, आप भूल कर रहे हैं। माता ने आपको जो उपदेश दिया था, उसे आप विस्मृत हो रहे हैं। मैंने भी, अभी और पहले आप से जो कुछ कहा है, वह भी आपके ध्यान में नहीं है। जब आप, मुझे, सती मंगलमयी और लक्ष्मी मान रहे हैं, तब मेरे विषय में, किसी प्रकार की चिन्ता क्यों करते हैं ? मैं जो कुछ कहती हूँ, उस पर विश्वास क्यों नहीं करते ! मुझे, आप नहीं बेच रहे हैं, किन्तु मैं स्वयं ही बिक रही हूँ। मेरे विषय में, माता को जो सन्देह हुआ है, वह सन्देह मिटाना, मेरा भी कर्त्तव्य है, और आपका भी कर्त्तव्य है। यदि माता का सन्देह न मिटा, तो निष्कारण मेरे को भी कलंक लगेगा, और आपको भी। इसलिए आप, किसी प्रकार का दूसरा विचार न करके, मेरे साथ चलिए। मनुष्य का कर्तव्य है, कि वह प्रत्येक सम्भव उपाय से, स्वयं को क़लंक से बचावे। फिर क्या अपन, अपने पर मिथ्या कलंक लगने दें ? उससे बचने का उपाय, न करें ! मैं, प्रत्येक दृष्टि से यही ठीक समझती हूँ, कि माता की आज्ञानुसार, मुझे बाजार में बिक जाना चाहिये, और इस प्रकार माता का सन्देह मिटा कर, स्वयं को, तथा आपको मिथ्या कलंक से बचाना चाहिए, इसलिए आप, मेरे साथ

चलिए। मैं, स्वयं को बेचकर २० लाख सोनैया दिलवा दूंगी, वे लाकर माता को दे दीजिये।

वसुमति ने, रथी को इस प्रकार समझा कर, शान्त करदिया रथी, और कुछ न कह सका। उसने केवल यही कहा, कि 'आप जैसा उचित समझे, वैसा करे; मै, आपकी आज्ञा का पालन करना, अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।' इस प्रकार रथी को अनुकूल बना कर, वसुमति ने, रथी की स्त्री को प्रणाम किया। उसने रथी की स्त्री से कहा—माता! मेरे कारण, आपको अनेक कष्ट सहने पड़े हैं। मै, उन सबके लिये आपसे क्षमा मॉगती हूँ, और प्रार्थना करती हूँ, कि इस पुत्री पर, आपकी कृपा दृष्टि बनी रहे।

वसुमति ने, रथी की स्त्री को प्रणाम भी किया, और क्षमा भी मांगी, लेकिन रथी की स्त्री, नागिन की-सी फुफकार छोड़ती हुई चुपचाप ही बैठी रही; कुछ भी नही बोली। हां, अपने मनमें यह अवश्य कहती रही, कि इस कुल्टा ने मेरे पति को थोड़े ही दिनों मे कैसा वश कर लिया है, कि इसके कथन के विरुद्ध, पति कोई कार्य नहीं करते। मुझको इस तरह बिफड़ी देखकर, यह डर गई है, कि मेरी सब पोल खुल जावेगी; इसीलिये इसने बिकना, और पति ने इसके साथ जाना स्वीकार किया है। मैंने, यदि ऐसा उग्र रूप न दिखाया होता, तो यह कभी न निकलती किन्तु कुछ दिनों में, मुझको ही घर से निकाल देती। पति की

बातों से यह स्पष्ट है, कि पति, इसको घर में रखने की प्रतिज्ञा करके ही लाये थे। तभी तो कहते थे, कि मैं तुमको नहीं निकाल सकता ! बल्कि, इसके लिये मुझे निकालने को तयार होगये थे। अच्छा हुआ, कि यही डर कर बिकने के लिए तयार होगई, नहीं तो पति ने तो एक भयंकर स्थिति उत्पन्न करदी थी।

रथी की स्त्री, इस प्रकार अपने स्वभावानुसार विचार करती रही. और वसुमति की ओर, लाल-लाल आंखें किये देखती रही ! उसको प्रणाम, और उससे क्षमा-प्रार्थना करके वसुमति, गृह के अन्य लोगों—नौकर चाकर आदि—से मिली, और फिर बाजार में जाने के लिए निकल पड़ी। उसने, घर से निकलने से पहले उसी प्रकार के वस्त्र पहन लिए. जैसे वस्त्र दासियां पहना करतीं थीं। घर से निकलने के समय, उसको किंचित् भी विषाद नहीं था, किंतु प्रसन्नता ही थी। उसने रथी से कहा—पिताजी आइये, मेरे साथ चलिये ! यह कहकर वसुमति घर से चलदी। वसुमति के उपदेश से प्रभावित रथी भी, कुछ न बोल सका। वह भी, आँखों से आँसू गिराता हुआ, चुपचाप वसुमति के पीछे होगया।

रथी को साथ लिये हुई वसुमति, कौशम्बी के प्रमुख बाजार मे आई ! वह, बाजार के बीच में—चौराहे पर—खड़ी होगई. और पुकार-पुकार कर कहने लगी—भाइयो. मैं दासी हूँ. मुझको खरीदलो !

नीची दृष्टि किये वसुमति, वाजार मे खड़ी हुई इस प्रकार पुकार-पुकार कर कह रही थी, और रथी, एक ओर खड़ा हुआ यह विचार कर आँखों से आँसू वहा रहा था, कि–'हाय, आज यह सती, उस दुष्टा के कारण मेरे घर से जा रही है!' वसुमति की आवाज सुन कर, उसके आस-पास वहुत से लोग एकत्रित हो गये। सव लोग उसकी अवस्था, उसका सौन्दर्य, उसकी शारीरिक वनावट, और कोमलता देख कर दंग हो रहे थे। वे सोच रहे थे, कि यह कौन है! कहीं कोई देव-कन्या, हम सव को छलने के लिए तो नहीं आई है! अथवा कोई अप्सरा तो, स्वर्ग से पतित होकर नहीं आई है! ऐसी कन्या, हम लोगों ने तो कभी देखी ही नहीं! इस प्रकार के आश्चर्य में पड़ कर, लोग वसुमति से पूछने लगे—देवी, तुम कौन हो, और इस प्रकार, वाजार में क्यों खड़ी हो? लोगों के इस प्रश्न के उत्तर में, वसुमति ने कहा—भाइयों! मैं दासी हूँ। यहाँ विकने के लिए खड़ी हुई हूँ। मैं, घर के सभी काम कर सकती हूँ। ऐसा कोई गृह कार्य नहीं है, जिसे मैं, न कर सकती होऊँ। मुझे, जो भी चाहे, खरीद सकता है। जो भी मेरा मूल्य दे, मैं, उसी के यहाँ जा सकती हूँ। मुझे, जो खरीद कर ले जावेगा, मैं, उसके घर के सव काम करूँगी, और उसका घर सुधार दूँगी।

'यह दासी है, और विकने के लिए खड़ी है,' यह जान कर,

बहुतों की इच्छा, वसुमति को खरीदने की हो गई। अनेक लोग, वसुमति से कहने लगे, कि—हम, तुम्हे खरीद लेंगे, लेकिन तुम्हारा मूल्य क्या देना होगा? लोगों के इस प्रश्न के उत्तर में, वसुमति ने रथी की ओर सैन करके कहा, कि—वे मेरे पिता खड़े हैं; जो उन्हे २० लाख सोनैया दे, वही मुझे खरीद सकता है।

वसुमति के मुँह से २० लाख सोनैया सुन कर, खरीदने की इच्छा रखने वाले लोग, हक्के-बक्के-से हो गये। वे, वसुमति के रूप-लावण्य आदि की तो प्रशन्सा करते थे, और यह भी कहते थे, कि:—

यत्रा कृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।

अर्थात्—जहाँ आकृति है, वहाँ गुण भी है।

लोग, यह कहते तो थे, फिर भी उन्हे, २० लाख सोनैया बहुत मालूम होते थे; इसलिए वे, वहाँ से यह कहते हुए चल देते थे, कि '२० लाख सोनैया में दासी खरीद कर क्या करेंगे! दासी, कितनी भी होशियार और अच्छी हो, तब भी, करेगी तो गृह कार्य ही! कुछ वाणिज्य-व्यवसाय करके, द्रव्योपार्जन करने से तो रही! इसलिए इतने सोनैया देकर, इसे कैसे खरीद सकते है।'

इस प्रकार लोग वसुमति की प्रशन्सा करते हुए, उसे खरीदने के लिए तो तयार होते थे, परन्तु मूल्य सुन कर चल देते थे। उसे खरीदने का साहस, किसी का भी नहीं होता था ।
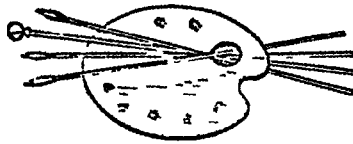
आत्म-बल

संसार में ऐसे बहुत कम धनवान निकलेंगे, जो गुणग्राहक हों। गुणों की अपेक्षा द्रव्य को तुच्छ समझने वाले, गुणों पर द्रव्य को न्योछावर करसकने वाले, और द्रव्य व्यय करके गुणों का आदर तथा प्रचार करे, ऐसे धनिक, बहुत कम होंगे। अधिकांश धनिक तो, धन को ही बड़ा समझते हैं। उनकी दृष्टि में, गुणों का कोई मूल्य ही नहीं है। वे, केवल लौकिक गुणों, और संसार की अन्य समस्त बातों को ही नहीं, किन्तु धर्म को भी धन से ही तौलते हैं, और उस तुलना में, धन को ही भारी समझते हैं। ऐसे लोग यदि कभी गुणों से प्रभावित भी हुए, तो गुणी की मौखिक प्रशंसा चाहे कर दें, लेकिन वह भी कठिनाई और संकोच के साथ। मुक्त हृदय से मौखिक प्रशंसा करना भी, उन्हे बहुत भारी लगता है। उन्हें यह भय रहता है, कि हमारे मुख से प्रशन्सा निकलने पर, कोई हमें उदारता दिखाने, और धन त्याग करने का न कहे! इस भय से, कृपण स्वभाव के कारण वे,

वाणी में भी कृपणता रखते हैं। यहाँ तक, कि सामान्य शिष्टाचार का आवश्यक कर्त्तव्य भी ठुकरा देते हैं, और मुँह से 'आइये' 'बैठिये' आदि शब्द भी नहीं निकालते। किन्तु इस प्रकार का निष्ठुर व्यवहार करते हैं, कि जैसे धन ने, उन मे, हृदय रहने ही नहीं दिया है, अथवा उनके हृदय को पत्थर की तरह का कठोर बना दिया है, जिसमें कि द्रवित होने का स्वभाव ही नहीं है; तथा इसी कारण वह हृदय, न तो गुणियो के गुण पर आकर्षित होता है, न गरीबों की आह, और दुःखियो के करुण-क्रन्दन की ओर। वे, अपनी ही तरह के धनवानो के सिवा, दूसरे लोगो को मनुष्य भी नहीं मानते। गरीबों के साथ तो ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसा व्यवहार पशु के साथ भी न किया जाना चाहिए। उनकी दृष्टि में, गरीबों की वेदना, वेदना ही नहीं है, न गरीबो की आवश्यकता, आवश्यकता, ही है। अपनी वेदना मिटाने, और अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए तो वे सब कुछ कर डालते हैं, लेकिन गरीबों की वेदना मिटाने, और उनकी आवश्यकता पूरी करने में सहायक होने के बदले, और बाधक हो जाते हैं। ऐसे ही कारणों से तो, परिग्रह को पाप का कारण माना गया है।

वसुमति को अब तक जितने भी व्यक्ति मिले, वे, ऐसे ही स्वभाव के मिले। इसलिए २० लाख सोनैया का नाम सुन कर वे, उस स्थान से इस तरह चल देते थे, कि जिसमें फिर किसी

की दृष्टि मे न आवें। वे सोचते थे, कि 'एक दासी का मूल्य २० लाख सोनैया ! इतने में तो, २० दासियाँ खरीदी जा सकती हैं, फिर एक के लिए इतना धन कैसे व्यय कर सकते हैं !' इस तरह वे लोग, केवल २० लाख सोनैया का विचार करते थे, यह नहीं समझते थे, कि इसकी समता २० क्या, सैकड़ो-हजारों दासियाँ भी नहीं कर सकती। उनकी दृष्टि पर, धन का पर्दा पड़ा हुआ था, इस कारण ऐसी बाते उनकी नजर में नहीं आती थी; किन्तु धन ही दिखाई देता था।

उसी कौशाम्बी में, एक वेश्या भी रहती थी। वह वेश्या, नाच, गान, और सौन्दर्य में अपने समय की एक ही थी, इसलिए 'नगर नायिका' मानी जाती थी। अवस्था का परिवर्तन होना तो संसार का नियम ही है। जो आज बालक है, वह, युवक और वृद्ध होगा ही। इस प्राकृतिक नियम से. वेश्या भी कैसे बच सकती थी ! वैसे तो वह, अपने नृत्य-गान और कटाक्ष हाव-भाव आदि से, कामियों के मन को अपनी ओर आकर्षित करने में कुशल थी, फिर भी वह सोचती थी कि मेरी अवस्था ढलती जा रही है; कुछ ही दिनो मे मै बूढ़ी हो जाऊँगी, और इस कारण, अपने ग्राहको को मुग्ध करने में असमर्थ हो जाऊँगी। आज तो नगर के बड़े-बड़े लोग भी मेरे द्वार की धूल छानते है, लेकिन जब मैं वृद्धा हो जाऊँगी, तब वे मेरे यहाँ क्यों आवेंगे ! यद्यपि मेरे

यहाँ मेरा व्यवसाय करने वाली अनेक लड़कियाँ है, लेकिन उनमे से एक भी लड़की ऐसी नहीं दिखती, जो मेरा स्थान लेकर, मेरे इस घर की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रख सके। मेरे व्यवसाय के लिए, रूप-लावण्य का होना विशेष आवश्यक है, और उसके साथ नृत्य-गान कला, तथा चातुरी की भी आवश्यकता है। मेरे यहाँ जो लड़कियाँ हैं, उनमे से एक मे भी ये सब बातें नही हैं।

उस वेश्या को इस बात की चिन्ता रहा करती थी, कि मेरा स्थान कौन लेगी! यदि मेरे जीते-जी मेरा पद नगर की दूसरी वेश्या ने ले लिया, और मेरे घर की प्रतिष्ठा किसी दूसरी के घर चली गई, तो यह मेरे लिए बड़े दुःख की बात होगी। मेरे पास, द्रव्य की तो कमी नहीं है। यदि कोई योग्य लड़की मिले, तो मै उसके बदले मे चाहे जितना धन दे सकती हूँ, लेकिन मुझे ऐसी कोई लड़की दिखाई ही नहीं देती।

इस प्रकार वह वेश्या, किसी योग्य और सुन्दर कन्या की खोज में रहा करती थी। जिस समय वसुमति बाजार मे खड़ी हुई. बिक रही थी, उसी समय पालकी मे बैठी हुई, अपनी दासियों के साथ वह वेश्या,उस जगह से होकर निकली। भीड़ देख कर उसने पालकी रुकवा दी, और लोगो से पूछा, कि यह भीड़ क्यों है? लोगों के उत्तर से यह जान कर, कि यहाँ एक दासी बिक रही है, इस विचार से वह, भीड़ को चीर कर वसुमति

के पास गई। वसुमति को देख कर, उसे आश्चर्य भी हुआ, और प्रसन्नता भी। उसे इस विचार से तो प्रसन्नता थी, कि मै जैसी सुन्दरी की तलाश में थी, यह तो उससे भी बढ़ कर है! वसुमति का रूप, सौन्दर्य आदि देख कर वह आश्चर्य करती थी। वह सोच रही थी. कि ऐसी सुन्दरी तो, मैंने आज तक देखी भी नहीं! मै, स्वयं को सुन्दरी मानकर गर्व करती थी, परन्तु मैं तो इसकी सुन्दरता के एक अंश इतनी भी सुन्दर नहीं हूँ! मेरा भाग्य अच्छा है, जो आज मैं इस ओर आ गई। चाहे जो हो, चाहे जितना मूल्य देना पड़े, मैं इस दासी को अवश्य खरीदूँगी। इसको खरीद कर, मैं, मेरी उत्ताराधिकारिणी की ओर से निश्चिन्त हो जाऊँगी; तथा अपने पद, एवं अपनी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रख सकूँगी। यह ऐसी योग्य मालूम होती है, जिसमें मैं अपनी नृत्य-गान कला पूरी तरह स्थापित कर सकूँ। पहले तो इसका रूप ही ऐसा है. जिस पर बड़े-बड़े सदाचारी कहलाने वाले भी आकर्षित हो जावें! फिर जब मैं, सोने में सुगन्ध मिलाने की तरह इसको अपनी सब कला सिखा दूँगी, तब इसके आगे कौन पुरुष नत-मस्तक न होगा!

इस प्रकार कल्पना जगत् में विचरण करती हुई वेश्या ने, वसुमति से पूछा, कि—तू कौन है, और किस उद्देश्य से बाजार में खड़ी है? वसुमति, नीची दृष्टि किये हुई थी। उसने, जिस

तरह और सब को उनकी ओर बिना देखे ही उत्तर दिया था, उसी तरह वेश्या को भी उत्तर दिया, कि—मैं दासी हूँ, तथा बिकने के लिए खड़ी हूँ। वेश्या ने पूछा, कि—तेरा मूल्य क्या है? वसुमति ने उत्तर दिया कि—वे मेरे पिता खड़े हैं, जो कोई उनको २० लाख स्वर्ण मुद्रा देगा, मैं उसी के साथ जा सकती हूँ, और उसके यहाँ का सब गृह कार्य करके, उसका घर सुधार सकती हूँ। वेश्या ने पूछा—क्या अभी तक कोई तेरे बदले में २० लाख सोनैया देने वाला नहीं आया? वसुमति ने उत्तर दिया, कि—हाँ, अब तक तो पूछने वाले ही आये हैं, देने वाला कोई भी नहीं आया है। वसुमति का यह उत्तर सुन कर, वेश्या कुछ गर्व के साथ कहने लगी, कि जो जिसका परिक्षक ही नहीं है, वह उसका आदर करना क्या जाने! अब तक जो लोग यहाँ आये है, उनमें से यदि कोई स्त्री-पुरुष के लक्षणों का जानकार होता, तब तो तेरे को अवश्य ही खरीद लेता, परन्तु जान पड़ता है, कि अब तक ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं आया। और कोई जाने या न जाने, तेरे लक्षणो से मै तो यह जानती हूँ, कि तेरे में क्या विशेषता है। मैं, तेरे गुण, और तेरे सौन्दर्य को पहचानने वाली हूँ। मैं कहती हूँ, कि तेरे सामने २० लाख सोनैया कुछ भी नहीं हैं। २० लाख सोनैया तो, तेरे एक ही अंग पर न्योछावर किये जा सकते हैं। ले चल, मेरे साथ चल, बैठ. पालकी मे, मैं

अभी तेरे इस पिता को, २० लाख सोनैया दिये देती हूँ। मैं वणिक-स्वभाव की नहीं हूँ, जो कौड़ी कौड़ी के लिए झिक्-झिक् करूँ। मै, जिस चीज़ को पसन्द करके लेना चाहती हूँ, उसका मुँह माँगा दाम देती हूँ। तूने अपना मूल्य २० लाख सोनैया माँगा है, इसलिए मै, २० ही लाख सोनैया दूँगी, एक भी सोनैया कम न दूँगी! इसलिए चल, देर मत कर।

वेश्या की उदारता-पूर्ण और आत्मश्लाघा भरी बाते सुन कर, वसुमति को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने सोचा, कि अब तक तो जितने भी लोग आये, सभी ने बीस लाख सोनैया बहुत बताये, लेकिन यह, स्त्री होकर भी २० लाख सोनैया देने को तयार है! तथा बीस लाख सोनैयो को, और कम बता रही है। देखूँ तो सही, कि यह है कौन! इस तरह विचार कर, वसुमति ने, अपनी नीची दृष्टि ऊपर करके वेश्या को देखा। वेश्या का शृंगार देख कर, वसुमति ने यह तो जान लिया, कि यह धनवान है, लेकिन यह खरीदती किस उद्देश्य से है, इस विषय मे वह कुछ निश्चय न कर सकी। उसने विचारा, कि माता को सन्तुष्ट करने के लिए, पहले तो मै इसके हाथ बिक कर पिता को २० लाख सोनैया दिलवा दूँ, और फिर यह जो काम कहे, वह काम न करूँ, उस काम के करने मे आनाकानी करूँ, तो यह ठीक न होगा। ऐसा करना; विश्वासघात है। इसलिए मुझे, पहले ही इसका

आचार जान लेना चाहिए, और यह मालूम कर लेना चाहिए, कि मुझे इसके यहाँ जाकर कौन-कोन से काम करने होंगे। किसी काम के विषय मे अभी ही स्पष्ट कह देना ठीक है, कि मै अमुक काम कर सकूँगी, या न कर सकूँगी।

वसुमति ने वेश्या से कहा—माता, मैं जब विकने के लिये खड़ी हूँ, तव जोभी २० लाख सोनैया दे, उसके साथ मुझे जाना चाहिये, परन्तु मेरे क्रयी (खरीददार) को किसी प्रकार का धोखा न हो मैं उसका कार्य न कर सकूं, और इस कारण उसका द्रव्य व्यर्थ जावे इसलिए मैं आपसे यह जानना चाहती हूँ, कि आपका आचार क्या है? तथा आप, मुझे किस कार्य के लिये खरीदना चाहती हैं? यह जानने के पश्चात् यदि मुझे उचित जान पड़ा, तो मै, आपके साथ अवश्य चलूँगी।

वसुमति का प्रश्न सुन कर, वेश्या ठहाका मार कर हँसने लगी, और कहने लगी—सरले, मेरा आचार क्या पूछती है! मेरा आचार क्या है, और मेरे यहां तुझे क्या काम करना होगा, यह वात सर्व प्रसिद्ध ही है! तेरा भाग्य अच्छा है, इसीसे तेरे को मैं ले रही हूँ। लोग, तेरी परीक्षा नहीं कर सके, इसीलिये तुझे दासी वनाने तक को नहीं खरीदा; लेकिन वास्तव में क्या तू दासी वनने योग्य है? तुझसी सुन्दरी, दासी वन कर जीवन व्यतीत करे, यह कैसे ठीक है! यदि मै न आती, तव तो तुझे दासी

बनना ही पड़ता; और अभी तक तो कोई तुझे दासी बनाने तक के लिए भी तयार नही हुआ था, लेकिन तेरे सद्‌भाग्य से मैं आगई। दूसरे लोग तो २० लाख सोनैया के सामने तुझे तुच्छ समझते हैं, परन्तु मै, तेरे सामने २० लाख सोनैया तुच्छ समझती हूँ!

भोली लड़की! मेरा आचार क्या है. और मेरे यहां तुझे क्या करना होगा; यह सुन। नित नया सुख भोगने का काम ही, मेरे यहां का आचार है, और तेरे को भी मेरे यहां चल कर, नित नया सुख भोगने का काम करना होगा। मेरे यहां जो सुख हैं, वे सुख, किसी दूसरी स्त्री की तो बात ही क्या, बड़े से बड़े राजा की रानी को भी प्राप्त नही हैं। मेरे यहां, कल जो सुख भोगा, आज उससे बढ़ कर सुख भोगना है। संसार में, जिसको अविचल सौभाग्य कहा जाता है, वह अविचल सौभाग्य, मेरे ही यहां है। मेरे यहां दुर्भाग्य का तो नाम भी नही है। मै अपने यहां के सुख सौभाग्य का वर्णन करने लगूँ तो, एक ग्रन्थ बन जावे, फिर भी पार नही आ सकता। इसलिए मैं, सब सुखों का वर्णन न करके, उनमे से कुछ का वर्णन करती हूँ।

मेरे यहां, सबसे पहला सुख सदा सुहाग का है। विधवा होने का तो, भय ही नहीं है। संसार में ऐसी पद्धति चल रही है, कि बेचारी स्त्रियाँ, अपने माँ बाप का घर छोड़ कर किसी एक

पुरुप के यहां जाती हैं उसकी सेविका बन कर, जिस तरह भी वह रखता है, उसी तरह रहती है उसके साथ दु:ख उठाती हैं, फिर भी पुरुप, मर कर अपनी स्त्री को रॉड बना जाता है; और उसे जीवन भर के लिये दु:ख में डाल जाता है। इसके विपरीत जिस स्त्री ने इतना त्याग किया है, साथ दिया है, और दु:ख उठाया है उस स्त्री के मरने पर, पुरुप स्वयं विधुर नहीं रहते, किन्तु दूसरी स्त्री विवाह लेते हैं। संसार मे इस तरह की विपमता फैल रही है। मेरे यहां, ऐसी विपमता को स्थान ही नही है। न विधवा होने का भय ही है। विधवा तो तब होना पड़े जब किसी एक पुरुप की दासी होकर रहे। मेरे यहां पुरुपो की गुलामी नहीं करनी पड़ती। पुरुप ही, सेवक की तरह मेरे यहां आँखो की सैन पर नाचा करते है। मैं जिस पुरुप को अपना सेवक बना लेती हूँ, वह पुरुप स्वयं को सद्भागी मानता है, और मुझ पर अपना तन मन धन न्योछावर कर देता है। फिर भी, मैं उसको सदा के लिये पसन्द नहीं करती, किन्तु जब भी इच्छा होती है, उसको हटा कर दूसरे को अपना सेवक बना लेती हूँ। बड़े बड़े राजा रईस, मेरे एक कटाक्ष पर, क्रीतदास की तरह उपस्थित रहते हैं। जो स्वयं को शूरवीर तथा मानी समझते हैं अपनी, मूछों को ऐंठी हुई ही रखते हैं, वे लोग भी मेरे आगे नत मस्तक होजाते हैं।

पहनने-ओढ़ने और खाने|पीने के विपय में तो कहूँ ही क्या!

मेरा घर, शृंगार का उद्गम-स्थल है। नये शृङ्गारों का आविष्कार, मेरे ही यहाँ होता है। नूतन प्रकार के वस्त्र, तथा नूतन प्रकार के आभूषण, सब से पहले मेरे ही यहाँ बनते हैं, और लोग तो, मेरे यहाँ के वस्त्राभूषणो का अनुकरण ही करते हैं । मेरे यहाँ नित्य नये प्रकार का शृंगार किया जाता है। बल्कि दिन भर मे अनेक बार शृंगार बदला जाता है। भोजन का सुख भी जो मेरे यहाँ है. वह दूसरे के यहाँ नहीं है। मेरे यहाँ का भोजन स्वादिष्ट, बलप्रद, और कामोत्तेजक होता है। इस तरह का भोजन करके, इच्छानुसार श्रेष्ठ शृंगार करना, इच्छानुसार नये-नये पुरुष के साथ सुख भोगना, और रंग हिंडोले में बैठी झूला करना, यही मेरे यहाँ का आचार है, तथा मैंने जो सुख बताये हैं. वे सुख भोगना ही मेरे यहाँ का काम है। एक बात और है–मैं, नृत्यकला और गानकला को विशेषरूपसे जानती हूँ। मैं अपनी ये सब कलाएँ, तुझे सिखा दूँगी। संसार में ऐसा कौन है, जो नृत्य-गान पर मुग्ध न हो। मनुष्य की तो बात ही क्या है पशु भी गीत पर मुग्ध हो जाते हैं। साँप ऐसा भयंकर और घातक प्राणी भी गीत के वश हो जाता है। जब तू भी मेरी नृत्य, गानकला सीख जावेगी, तब सब लोग तेरे वश हो जावेंगे, और इस प्रकार जो सुख मुझे प्राप्त है, जिस तरह मेरी प्रतिष्ठा है, उसी तरह का सुख, और वैसी ही प्रतिष्ठा तुझें भी प्राप्त होगी। मेरे यहां तुझे क्या करना

होगा, यह मैंने तेरे को बता दिया। अब यदि तेरे मे बुद्धि हो, तू चतुरा हो, और तेरा भाग्य अच्छा हो, तो उठ खड़ी हो; देर मत कर। मेरे यहां तुझे, जमीन पर पॉव भी न रखना होगा, किन्तु इसी तरह पालकी मे बैठा कर चला करेगी, और तेरे आगे-पीछे अनेक दासी,दास चला करेंगे। इसलिये जल्दी से इस मेरी पालकी मे बैठ कर,मेरे साथ चल। तेरे पिता को भी साथ लेले; मैं उसे बीस लाख सोनैया दे दूँगी !

वेश्या की बातों से वसुमति समझ गई, कि यह कौन है; और किस उद्देश्य से २० लाख सोनैया खर्च करती है, तथा मुझे ले जाना चाहती है। वेश्या का कथन समाप्त होते ही, वसुमति ने उससे कहा—माता, आप जिस उद्देश्य से मुझे खरीदना चाहती हैं और मेरे से जो कार्य कराना चाहती हैं, मेरे द्वारा न तो आपका वह उद्देश्य ही पूरा हो सकता है, न मैं आपका वह कार्य ही कर सकती हूँ। इस कारण मुझे खरीदने पर, आपका द्रव्य व्यर्थ जावेगा। आप, मुझे खरीद लें, मैं आपके यहाँ चलूँ, पिता को २० लाख सोनैया भी दिलवा दूँ, और फिर आपका कहा हुआ काम न करूँ, यह ठीक नहीं है। उस समय आप कहेगी, कि मुझे धोखा दिया। इसलिए अभी ही स्पष्ट कह देती हूँ, कि आप, मुझे खरीदने का विचार छोड़ कर अपने घर जाइये। मैं, आपके यहाँ नहीं चल सकती !

वसुमति का उत्तर सुन कर, वेश्या को कुछ निराशा हुई; फिर भी वह—निराशा को दबा कर—कहने लगी कि तेरा दुर्भाग्य ही ऐसा है, कि जिसके कारण तेरी समझ मे मेरी बात नहीं आई। तेरे भाग्य में तो, दासीपना ही जान पड़ता है। मै तो सोचती थी, कि तुझे ले जाकर स्वर्गीय सुखों से तेरी भेंट कराऊँ, लेकिन सद्भाग्य के बिना, मेरे चाहने पर भी तुझे वे सुख कैसे मिल सकते है! मैं देखती हूँ, कि मेरी स्त्री-बहनो पर पुरुष लोग, बहुत अत्याचार करते है। मेरा उद्देश्य है, कि मै पुरुषो का अभिमान भङ्ग कर दूँ, और उन्हे झुका दूँ। इस कार्य में, मेरी सहायता करने वाली कोई नही है। मैं, तुझे अपनी सहायिका बनाना चाहती हूँ, और इसीलिए मुँह माँगे दाम देने को तयार हुई हूँ; लेकिन तू मेरी इन बातों को समझी ही नही। मै तेरेसे फिर कहती हूँ कि तू मेरी बात मान कर जल्दी से पालकी में बैठ कर चल। बचपन की बातें मत कर। यह तो सोच, कि मेरे सिवा, तेरे बदले में कोई २० लाख सोनैया देता भी है! और मैंने, २० लाख सोनैया देने में, किसी तरह की आनाकानी भी की है।

वेश्या के कथन के उत्तर में वसुमति कहने लगी—माता, मै आपके साथ कैसे चल सकती हूँ! मेरा मार्ग दूसरा है, और आपका मार्ग दूसरा है। आप, पुरुषों को मोह के चक्कर में डालने का प्रयत्न करती हैं, और मैं पुरुषों को मोह के चक्कर से निकालने

का प्रयत्न करती हूँ। आपने अपने यहाँ का जो आचार बताया, जिस खान-पान और साज-शृंगार की प्रशंसा की, वह सब पुरुषों को मोह के चक्कर में डालने, और उनका जीवन नष्ट करने के लिए है, तथा मैं इसका विरोध करने वाली हूँ। इस कारण मेरे द्वारा, आपका उद्देश्य तो पूरा होगा ही नहीं, अपितु आपके कार्य मे और बाधा पहुँचेगी। आप जिसे अपने जाल मे फँसाना चाहेगी, उसे मैं बचाने का प्रयत्न करूँगी, आपके जाल मे न फँसने दूँगी। इस प्रकार मुझे लेजाने से आपको लाभ न होगा, किन्तु हानि होगी, और जब तक आप पुरुषों को मोह-ग्रस्त करने के कार्य करती हैं, तब तक मैं भी आपके साथ नही चल सकती। हाँ, यदि आप इस मार्ग को त्याग कर सदाचार को अपनाती हो, तो मैं आपके साथ चलने के लिए तयार हूँ। यदि आपको ऐसा करना स्वीकार नहीं हैं, तो मैं भी आपके यहाँ नहीं चल सकती। जब कि आप बुरा मार्ग भी नहीं छोड़ सकती, तब मैं अच्छा मार्ग कैसे छोड़ सकती हूँ।

वसुमति का उत्तर सुनकर, वेश्या अपने मन में कहने लगी, कि यह लड़की केवल सुन्दर ही नही है, किन्तु बुद्धिमती भी है, और बातचीत करने में भी कुशल है। यदि यह मेरे यहाँ चले, तो अवश्य ही मेरे घर की प्रतिष्ठा बढ़ सकती है। इस प्रकार विचारती हुई, वह कुछ रुष्ट होकर वसुमति से कहने लगी

कि– बड़ी सदाचारिणी बन रही है ! मुझे, सदाचार का उपदेश दे रही है ! यह नहीं देखती, कि मै कौन हूँ, और ये बाते किससे कह रही हूं ! तू दासी मुझे उपदेश दे ! बिकने के लिये तो खड़ी है, और मुझे उपदेश दे रही है ! तू, मेरे को उपदेश नही दे सकती ! तेरी तरह की दासियाँ, मेरे यहाँ बहुत हैं. और यह देख, इतनी तो यही खड़ी है। इसलिए अपने उपदेश को, स्वयं के पास ही रहने दे। इसके सिवा. तू मुझ से तो सदाचार का पालन करने को कहती है, लेकिन स्वयं ही पालन क्यो नहीं करती ? सदाचार मे सत्य भी है, तूं सत्य का पालन क्यों नहीं करती ? अभी तूने ही कहा था, कि मैं दासी हूँ, बिक रही हूँ और जो भी २० लाख सोनैया दे, उसी के साथ जाने को तयार हूँ। तेरे इस कथन के अनुसार, मैंने २० लाख सोनैया देना स्वीकार किया, फिर तू मेरे साथ चलने से इनकार कैसे कर सकती है ? खरीद लेने पर, मै तेरे से सभी काम कराने का अधिकार रखती हूँ ! तू, किसी भी काम के करने से इनकार नहीं कर सकती। मैंने, तेरे मांगे हुए २० लाख सोनैया देना स्वीकार किया और अब भी अपनी इस स्वीकृति पर दृढ़ हूँ, लेकिन तू अपनी कही हुई बात से हट रही है। अब तू ही बता, कि सत्य का पालन मै नही करती हूँ, या तू नही करती है ? और इस कारण सदाचारिणी मैं हूँ, या तू है ? तू दूसरे को तो उपदेश

देती है, परन्तु यह भी देखती है कि मैं जो उपदेश दूसरे को देती हूँ, उसका पालन स्वयं भी करती हूँ या नहीं ? यह क्यों नहीं सोचती, कि जो उपदेश दूसरे को देती हूँ, उसका पालन स्वयं ही क्यों न करूँ ! तू मेरे यहाँ चलना चाहे, या न चलना चाहे. अब तो तुझे मेरे साथ चलना ही होगा ! मेरा तेरा सौदा तय हो चुका है , तूने ७० लाख सोनैया माँगा, और मैंने देना स्वीकार किया; इसलिए सौदा पक्का हो चुका । अब तू किसी भी तरह बदल नहीं सकती। यदि तू चाहे, तो यहाँ जो लोग खड़े है उन से न्याय करा ले !

यह कह कर वेश्या, हाव-भाव बताती हुई, वहाँ खड़े हुए लोगो की ओर देखने लगी। उसने, संकेत से किसी को तो यह समझाया कि,मैं तुम्हें प्रसन्न कर दूँगी, तथा किसी को यह समझाया कि यह मेरे यहाँ चलेगी, तो तुम भी इससे आनन्द ले सकोगे ! उसके कटाक्ष और संकेत से, वहाँ खड़े हुए लोगो में से बहुत से लोग प्रभावित हो गये। ऐसे लोग सोचने लगे, कि वास्तव मे यदि यह लड़की वेश्या बन जावे, तो नगर की शोभा भी बढ़ जावेगी और कभी हम भी इसके स्पर्श का आनन्द ले सकेंगे ! वेश्या ने जब देखा. कि यहाँ मेरे समर्थक लोग ज्यादा हैं, तब वह सब लोगो से कहने लगी, कि आप सब प्रतिष्ठित सज्जनो के सामने ही यह सौदा हुआ है। आप ही कहिये, कि मै कुछ गलत तो नहीं

कह रही हूँ ? यदि मैं गलत कहती होऊँ, तब तो आप लोग मुझे कहिये, नही तो बताइये कि क्या अब यह मेरे साथ चलने से इनकार कर सकती है ?

वेश्या के संकेत और हाव-भाव से जो कामी लोग प्रभावित हो चुके थे, वे वेश्या का पक्ष समर्थन करते हुए कहने लगे, कि वास्तव मे सौदा तय हो चुका है, इसलिए इसका तुम्हारे यहाँ जाना ही चाहिए। यह तुमसे केवल २० लाख सोनैया दिला सकती है, तुम्हारे साथ जाने से इनकार नही कर सकती। कामी लोग, इस प्रकार की बाते कह कर वेश्या का पक्ष समर्थन करने लगे। हाँ, जो लोग दुराचार को बुरा समझने के कारण वेश्या के संकेत कटाक्ष आदि से प्रभावित नही हुए थे, उनने अवश्य वेश्या का कथन अनुचित बता कर कहा, कि—किसी के साथ जबरदस्ती नही हो सकती ! यह, वेश्या के यहां जावे या न जावे, इसकी इच्छा पर निर्भर है। इसने, वेश्या के यहाँ जाना स्वीकार नही किया है; किन्तु वेश्या से उसका आचार सुनकर वेश्या के यहाँ जाना अस्वीकार कर दिया है। ऐसी दशा में, यह भी नहीं कहा जा सकता, कि सौदा तय हो चुका !

इस प्रकार कुछ लोग तो वेश्या के पक्ष का समर्थन करने लगे और कुछ लोग, वसुमति के पक्ष का। वहाँ उपस्थित लोगो के दो दल बन गये, परन्तु वेश्या का साथ देने वाले अधिक थे, और

वसुमति का पक्ष समर्थन करने वाले कम थे। अपने पक्ष मे बहुत लोगों को देखकर, वेश्या प्रसन्न हुई। उसने सोचा, कि अब तो चाहे जिस तरह, इसको जल्दी ही ले जाना चाहिऐ, विलम्ब न करना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके वेश्या वसुमति से कहने लगी—ले देख ले, ज्यादा लोग मेरी बात को ठीक कहते है, या तेरी बात को! सत्य की अवहेलना तू कर रही है, या मैं कर रही हूँ! तू, सत्य की अवहेलना करके मेरे साथ चलने से इनकार भले कर, लेकिन मैंने तेरे कहे हुए २० लाख देना स्वीकार कर लिया है, इसलिए अव तो तेरे को मेरे साथ चलना ही पड़ेगा! तू प्रसन्नता से चल, चाहे अप्रसन्नता से चल, चलना अवश्य होगा। अच्छाई तो इसी में है, कि प्रसन्नता से मेरी पालकी में बैठ जा, अन्यथा मै किसी भी तरह तेरे को ले अवश्य जाऊँगी।

वेश्या के कथन के उत्तर मे वसुमति बोली—माता, मैं इस तरह के कच्चे विचारों की नही हूँ, जो बहुत आदमी समर्थन करते है, इसलिए किसी बुरी बात को मानलूँ! चाहे सारा संसार भी बुरे काम को अच्छा कहने लगे, फिर भी मैं उसको अच्छा नहीं मान सकती। मैं, बीस लाख सोनैया देने वाले के साथ चलाने को तयार हूँ, लेकिन गृहकार्य करने के लिए। तुम्हारी बुरी कामना पूरी करके लोगो को दुराचार के गड्ढे में गिराने, और किसी के हाथ अपना

सतीत्व बेचने के लिए जाना न तो मैंने स्वीकार किया ही है, न स्वीकार कर ही सकती हूँ। इसके लिए कोई २० लाख सोनैया के स्थान पर ४० लाख सोनैया भी दे, तब भी मैं नही जा सकती। इसलिए आप, मुझे लेजाने का अपना विचार छोड़िये। मैं, आपके साथ नहीं आ सकती। मुझे, दासी बनना और कष्ट उठाना तो स्वीकार है, लेकिन तुम्हारे साथ जाकर, तुम जिन सुखों का प्रलोभन देती हो, वे सुख स्वीकार नहीं हैं।

वसुमति का सूखा उत्तर सुनकर वेश्या ने सोचा, कि यह ऐसे न चलेगी; इसको तो जबरदस्ती से लेजाना ही ठीक है। यहां जितने लोग मौजूद है, उनमें से अधिकान्श मेरे ही सहायक है। कुछ लोग इसका पक्ष समर्थन करने वाले भी है, लेकिन वे थोड़े-से ही हैं, और जब मैं इसे जबरदस्ती ले जाने लगूँगी, उस समय वे इसकी सहायता को आवें, यह भी सम्भव नही है। इस-लिए इसको जबरदस्ती पालकी मे बैठा कर लेजाना ही ठीक है। एक बार इसको अपने घर तक लेजा पाऊँ, फिर तो मैं इससे अपनी बात किसी न किसी तरह मनवा ही लूँगी।

वसुमति को जबरदस्ती ले जाने का निश्चय करके, वेश्या, क्रोध करती हुई कहने लगी—नहीं कैसे चलेगी। नहीं चलना था, तो बिकने के लिए बाजार में क्यों खड़ी हुई? जब बाजार मे खड़ी होकर बिकी है, और मैं मुँह माँगे दाम देना स्वीकार

कर चुकी हूँ, तब क्यों नहीं चलेगी ? मै तो सोचती थी, कि जब तक बने तेरे को प्रसन्न रखूँ, लेकिन तू तो और अकड़ती ही जा रही है ! देख, मै तेरे को अभी लिये जाती हूँ, और देखती हूँ, कि तेरी सहायता को कौन आता है ?

यह कह कर वेश्या ने, अपनी दासियो और अपने नौकरो से कहा, कि इसको पकड़ कर पालकी मे डाल लो, तथा अपने यहाँ ले चलो ! यह कहती हुई वह, अपनी दासियो सहित, वसुमति की ओर उसे पकड़ने के लिये बढ़ी । वेश्या और उसकी दासियो को बल प्रयोग के लिए उतारू देख कर, वसुमति, उनसे बचने के लिए कुछ पीछे की ओर हट गई ।

वसुमति और वेश्या की बातचीत को, रथी भी सुन रहा था । अब तक उसने, न तो कुछ वेश्या से ही कुछ कहा था, न वसुमति से ही । वह, चुपचाप सब बातें सुनता हुआ, अपनी असमर्थता और स्त्री की मूर्खता पर दुःख कर रहा था; लेकिन जब उसने वसुमति को पकड़ने के लिये वेश्या को वसुमति की ओर बढ़ती, तथा वसुमति को पीछे हटती देखा, तब उससे चुप न रहा गया । उसने, वहीं से वेश्या को डाटते हुए कहा—सावधान ! मेरे रहते यदि इस मेरी पुत्री को हाथ लगाया, तो यह मेरी तलवार देख लेना ! यह प्रसन्नता से तेरे साथ जाती हो तो मै नहीं रोकता, लेकिन यदि जबरदस्ती की तो इस तलवार से तेरे टुकड़े

टुकड़े कर दूँगा ! इस प्रकार कह कर रथी, म्यान से तलवार निकाल कर, नंगी तलवार हाथ में लिए हुए, वसुमति और वेश्या के बीच में आ खड़ा हुआ; और वेश्या से कहने लगा—क्या तूने इसको अरक्षित समझ लिया है ? क्या इसका कोई रक्षक ही नहीं है ? मुझे देखती है, या नहीं ? मेरे रहते इसे हाथ लगाया, तो कुशल नहीं है !

रथी को इस प्रकार लाल-लाल आँखें किये हुए क्रुद्ध, और हाथ में तलवार लिये हुए देख कर, वेश्या डर गई। भय की मारी वह, पीछे की ओर हट गई, और चिल्लाने लगी कि—देखो-देखो, ये मुझे तलवार से मारते हैं ! जब सौदा हुआ, तब तो ये सुनते रहे, और अब बीच में जबरदस्ती आ कूदे हैं ! इनको, इस लड़की की कीमत लेने के सिवा, इस बात में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। मैंने, इस लड़की से सौदा तय कर लिया है, अब ये बोलने वाले कौन हैं ?

वेश्या, ऐसी ही बातें चिल्लाने लगी ! वेश्या के पक्ष-समर्थक लोग भी, वेश्या की हाँ में हाँ मिलाकर उसकी ओर बोलने लगे। रथी को वसुमति की रक्षा के लिए तलवार निकाले हुए उद्यत देख कर, वसुमति के पक्ष-समर्थक लोग भी चुप न रहे। वे भी, रथी की बातों का समर्थन करने लगे। इस प्रकार वहाँ दो दल हो गये, और दोनों में वाग्युद्ध होने लगा।

इस समय वहाँ, सात्विक, राजस, और तामस, तीनों ही प्रकृति एकत्रित हो रही थीं। वेश्या और उसके समर्थक—जो केवल बुरी कामना से घिरे हुए थे—तामस प्रकृति के थे। रथी और उसके समर्थक—जो वसुमति की रक्षा के लिए खड़े थे, तथा मारने-मरने को उतारू थे—राजस प्रकृति के थे। वसुमति, सात्विक प्रकृति की थी, जो चुपचाप खड़ी थी। उसके हृदय में, न तो स्वयं पर अत्याचार करने के लिए उतारू हुई वेश्या तथा उसके समर्थकों के प्रति द्वेष था, न उनसे बचाने के लिए तत्पर रथी और उसके समर्थकों के प्रति राग था। वह तो यही चाहती थी, कि किसी भी तरह अशान्ति न हो, तो अच्छा। वह सोचती थी, कि इस समय दोनों ही पक्ष के लोग तन गये हैं। मैं, दोनों में से किसे समझाऊँ! वेश्या मुझे लेजाने के लोभ में पड़ रही है, और पिता, मेरी रक्षा के लिए खड़े हुए हैं। इस समय, वेश्या को कुछ समझाना व्यर्थ होगा। वह, मेरी बात न मानेगी। मान भी कैसे सकती है! उसको मेरे पर विश्वास ही नहीं है। इसलिए, पिता को ही समझाना ठीक है। पिता को मेरे पर विश्वास है, इस कारण ये मेरी बात मान लेंगे।

इस प्रकार सोच कर वसुमति, रथी से कहने लगी—पिताजी, शान्त होइये, क्रोध करके इस तरह मारने-मरने के लिए तयार हो जाना, ठीक नहीं है। माता ने आपको जो शिक्षा दी थी, इस

समय आप शायद उसे भूल रहे है। माता, शस्त्र चलाना या क्रुद्ध होना नही जानती थी, यह बात नही है; लेकिन उसने उस कठिन समय मे भी क्रोध नही किया, न शस्त्र-प्रयोग ही किया। आप, माता की उस शिक्षा को याद करके शान्त होइये, और तलवार को म्यान में कीजिये।

रथी कहने लगा—पुत्री तू क्या कह रही है। क्या मै इस समय भी कायरता दिखाऊँ! इस दुष्टा को, तुझ पर जबरदस्ती करने दूँ। वसुमति ने उत्तर दिया—पिताजी, ऐसा ही समय तो उस शिक्षा के उपयोग का होता है। अनुकूल स्थिति मे तो सभी शान्त रहते है, विशेषता तो तभी है, जब प्रतिकूल परिस्थिति में भी शान्त रहे, क्रोध न करे, और धैर्य तथा क्षमा न त्यागे। माता की दी हुई शिक्षा को आपने कहाँ तक समझा है, इसकी परीक्षा का समय तो यही है। इसलिए आप, अपनी इस तलवार को म्यान मे कर लीजिये। मेरी रग-रग मे माता की शिक्षा ठसी हुई है, अतः मेरी रक्षा के लिए तलवार की आवश्यकता नही है।

रथी के हृदय मे, वसुमति के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। इसलिए वह, वसुमति के कथन की उपेक्षा न कर सका। उसने वसुमति की बात मान कर, तलवार म्यान मे कर ली। यह देखकर वेश्या, प्रसन्न हो गई। वह कहने लगी कि—यह लड़की ऊपर के मन से ही मेरे यहाँ आने मे आनाकानी कर रही है, वास्तव मे इसका

मन मेरे यहाँ चलने का है। फिर भी यह पुरुष, इसकी रक्षा के नाम पर बीच मे आ खड़ा हुआ है। देखो, इस लड़की ने, निकली हुई तलवार को म्यान में करा दी है। यदि यह इस पुरुष द्वारा अपनी रक्षा चाहती होती, तो ऐसा क्यो करती !

वेश्या के इस कथन का, उसके सहायक लोग भी अनुमोदन करने लगे। वे भी कहने लगे, कि—वास्तव में यह लड़की तो इस नायिका के यहाँ ही जाना चाहती है, लेकिन ये लोग, व्यर्थ ही बीच में झगड़ा कर रहे हैं ! वेश्या और उसके सहायको का यह कथन सुनकर, वसुमति कहने लगी—हे प्रभो, मैंने तो शान्ति के लिए ऐसा किया, परन्तु ये सब लोग, मेरे इस शान्ति के उपाय का भी उल्टा अर्थ लगा रहे हैं ! ऐसी दशा मे, इन लोगों को समझाने की शक्ति मुझ मे कहाँ से हो सकती है ! इन तामस प्रकृति के लोगों को समझाने मे मेरी सात्विक शक्ति, इस समय असमर्थ हो रही है। इस समय, तामस-शक्ति का प्राबल्य है, इसलिए मैं असमर्थ हूँ।

यह कह कर वसुमति, उसी प्रकार निर्बल होकर चुपचाप खड़ी हो गई, जिस तरह चीर हरण के समय द्रौपदी निर्बल हो गई थी। जो व्यक्ति, अपना बल त्याग कर पूरी तरह परमात्मा की शरण हो जाता है, उसका अनिष्ट कोई, किसी भी समय, और कैसी भी स्थिति में नहीं कर सकता। सुदर्शन श्रावक, अपना

बल त्याग कर पूरी तरह परमात्मा की शरण हो गया था, तो ११४१ मनुष्यों का घातक अर्जुन माली, उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका। उसका मुद्गर, ऊपर उठा ही रह गया, यक्षावेष्टित उसकी शक्ति भी, सुदर्शन पर मुद्गर गिराने मे समर्थ नहीं हुई। चीर-हरण के समय द्रौपदी भी, अपना सब बल त्याग कर पूर्णतः परमात्मा की शरण हो गई थी, इस कारण दुःशासन ऐसा बल-वान भी उसको नग्न करने में समर्थ नही हुआ। इस विषय में, अजैन भक्तों का बनाया हुआ एक भजन भी है, जो इस प्रकार है—

सुने री मैने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरूँ सन्तन की, अड़ सँवारे काम॥ देखे०
जब लग गज बल अपनो राख्यो नेक सरयो नहीं काम।
निर्बल हो बल राम पुकारे, आये आधे नाम॥ देखे०
द्रुपद सुता निर्बल भई जा दिन, गहि लाए निज धाम।
दुःशासन की भुजा थकित भई, वसन रूप भये श्याम॥ देखे०
अप बल तप बल और बाहुबल, चौथो बल है दाम।
'सूर' श्याम सुन्दर ते सब बल, हारे को हरिनाम॥ देखे०

इस भजन का अर्थ यही है, कि जो व्यक्ति भौतिक-बल त्याग देता है, उसकी सहायता नही लेता है, उसको आध्यात्मिक बल

प्राप्त होता है, और फिर उसकी रक्षा के लिए अनायास ही कोई न कोई शक्ति आ जाती है।

वसुमति के लिये भी, ऐसा ही हुआ। वह, अपना सब बल त्याग कर, और निर्बल बन कर खड़ी हो गई। वेश्या ने सोचा, कि इसकी इच्छा मेरे यहाँ चलने की है, लेकिन यह, प्रकट मे प्रसन्नता से नहीं जाना चाहती! यदि यह तलवार धारी पुरुष, इसको बचाने के लिए बीच में न आजाता, तब तो मै, इस लड़की की आन्तरिक इच्छा के अनुसार इसे पकड़ कर पालकी में डाल ही लेती, और उस दशा में यह कुछ भी न कहती; परन्तु यह पुरुष बीच मे आ खड़ा हुआ, इससे विघ्न हो गया। अब तो इस लड़की ने, इस पुरुष को भी शान्त कर दिया है, और स्वयं भी चुप है, अब इसकी सहायता करने वाला कोई नहीं है, इसलिए इसे पकड़ कर पालकी मे डाल लेने, और घर ले जाने के लिए यह अवसर उपयुक्त है!

इस प्रकार विचार कर वेश्या, वसुमति को पकड़ने के लिए उसकी ओर चली। उसने वसुमति की ओर एक ही पॉव रक्खा था, कि इतने ही में उस पर बहुत से बन्दर टूट पड़े, तथा उसके शरीर वस्त्र आदि नोचने लगे। वेश्या, सहायता के लिए चिल्लाने लगी, लेकिन बन्दरों के उत्पात से ऐसा आतंक छा गया था कि वहाँ उपस्थित लोग, जिधर मार्ग मिला, उधर ही भाग खड़े हुए।

वेश्या की सहायता के लिए, न तो उसका कोई समर्थक ही आया न उसके दास-दासी में से ही कोई आया। वेश्या, सहायता के लिए चिल्लाती ही रही, और बन्दर उसकी दुर्दशा करते ही रहे। किसी बन्दर ने, वेश्या के नाक का आभूषण खींच लिया, जिससे उसकी नाक फट गई। किसी ने कानो के आभूषण खींच लिये, जिससे कान फट गये। किसी ने गाल नोंच लिये। किसी ने, मुँह पर थप्पड़ मारे और किसी ने उसके बढ़िया कपड़ों को नोंच-चोथ डाला। वेश्या, बराबर रोती चिल्लाती रही, परन्तु सब व्यर्थ। अन्त में वह, पृथ्वी पर गिर पड़ी फिर भी बन्दरों ने उसे नहीं छोड़ा।

वेश्या पर बन्दरों का आक्रमण, और उसका करुण-क्रंदन देख सुन कर, वसुमति से न रहा गया। वह, वेश्या की सहायता के लिए दौड़ी। उसने, बन्दरो को डाटते हुए कहा—अरे बन्दरो, इस माता को कष्ट क्यो दे रहे हो? हटो! माता को छोड़ दो! वसुमति ने, इस प्रकार हॉक मार कर बन्दरो को डाटा अवश्य, लेकिन वसुमति की हांक पहुँचने से पहले ही बन्दरों ने वेश्या को बेहाल कर दिया था। वसुमति की हांक पहुंचते ही, वेश्या को छोड़कर बन्दर उसी प्रकार भाग खड़े हुए जिस प्रकार बन्दूक की आवाज सुनकर पक्षी भाग जाते हैं। वसुमति, वेश्या के पास गई। बन्दरो के नोचने आदि से, वेश्या का सारा शरीर भग्न हो

रहा था। उसके शृंगार-वर्द्धक वस्त्राभूषण, टूटे-फटे इधर-उधर पड़े थे, और उसके सारे शरीर मे, महान् वेदना हो रही थी। वसुमति ने, वेश्या का हाथ पकड़ कर उसे उठाया, तथा उसके शरीर पर अपना हाथ फिराया। सती वसुमति का हाथ फिरते ही वेश्या के शरीर में जो वेदना हो रही थी, शान्ति हो गई। वेश्या के शरीर पर हाथ फिरा कर, और उसकी वेदना शान्त करके वसुमति उससे कहने लगी—माता, आपको बहुत ही कष्ट हुआ। वन्दरों ने, आपके सब अंगो को बुरी तरह नोच डाला।

वसुमति, वेश्या से इस प्रकार कह रही थी, और वेश्या, कृतज्ञता भरी दृष्टि से वसुमति की ओर देखती हुई सोच रही थी, कि यह तो कोई साक्षात् देवी है, इसीसे मुझ अपकार करने वाली पर भी उपकार कर रही है! इस शक्ति ने पहले मुझे समझाया, फिर भी मैं नहीं समझी, इसी का यह फल मिला है।

वसुमति, वेश्या को सान्त्वना दे रही थी, और वेश्या इस प्रकार सोच रही थी, इतने ही में वेश्या के दासी-दास और सहायक लोग भी वहाँ आ गये। कोई वेश्या से समवेदना दिखाने लगा, कोई घावो पर पट्टी बाँधने लगा, और कोई उसके बिखरे हुए आभूषण एकत्रित करने लगा; लेकिन वेश्या के हृदय पर, वसुमति की सहृदयता का जो प्रभाव पड़ा था, उसके सामने इन और लोगों की सहानुभूति का कोई असर नहीं हुआ।

धनावा सेठ के घर

आत्मा को जानने वाले करुणालु व्यक्ति, किसी का भी अपकार नहीं करते। वे, अपने अपकारी पर भी उपकार ही करते हैं। उनके हृदय में, किसी के प्रति द्वेष तो होता ही नहीं। चाहे कोई उनके प्राण लेने को भी तयार हो जावे, और प्राण ले भी ले, तब भी वे, उसका उपकार ही करते हैं, उसका भला ही चाहते हैं। यह बात दूसरी है, कि उनमें विशेष उपकार करने की शक्ति न हो, और इस-कारण वे विशेष उपकार न कर सकें, लेकिन जितनी भी शक्ति होगी, उसके अनुसार सदा उपकार के लिए ही तत्पर रहेंगे। कदाचित किसी का उपकार न भी कर सकें, तब भी शक्ति होते हुए भी किसी का अपकार तो कदापि न करेंगे; यदि कर सकेंगे तो उपकार ही करेंगे। अर्जुन माली, सुदर्शन श्रावक पर प्राणघातक आक्रमण करने के लिए तयार हुआ था। यदि उसकी शक्ति चलती, तो

वह सुदर्शन को मार ही डालता; लेकिन उसकी तामसी शक्ति, सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति के सामने नहीं चली। वह. परास्त होकर गिर गया। उसके शरीर से निकल कर, यक्ष भाग गया। वह शारिरिक शक्ति मे, सुदर्शन से कमजोर हो गया। यदि सुदर्शन चाहता, तो बदला लेने की इच्छा से अर्जुन माली को दण्ड दे सकता था, या दण्ड दिला सकता था, लेकिन सुदर्शन के मन में ऐसी भावना तक नहीं हुई। अपितु वह, अर्जुन को भगवान की सेवा में ले गया, और उसे अपना पूज्य-पद दिला कर, मोक्ष-मार्ग का पथिक बना दिया। मुनि श्रीगजसुकुमार के सिर पर, सोमल ने आग रख दी थी। गजसुकुमार मुनि मे न तो शारिरिक शक्ति ही कम थी, न लब्धि की शक्ति ही। यदि वे चाहते, तो सोमल को दण्ड दे सकते थे, अथवा एक हुँकार मात्र कर देते तब भी सोमल मर सकता था, लेकिन उन्होंने, सोमल को और अपना उपकारी माना; तब उसका अपकार करने की तो बात ही अलग रही। भगवान् महावीर को, चण्डकौशिक सॉप ने काटा था। यदि भगवान चाहते, तो उसे अपनी दृष्टि-मात्र से भस्म कर सकते थे, परन्तु भगवान ने उसे बोध देकर, उसको कल्याण का मार्ग बताया। इसी प्रकार के सैकड़ो हजारो उदाहरण ऐसे हैं, जिन से यह सिद्ध है, कि आध्यात्मिक शक्ति को जानने वाले करुणालु व्यक्ति, किसी भी दशा में, स्वयं के साथ शत्रुता

रखने वाले का भी अपकार नहीं करते, किन्तु उसका भी उपकार ही करते है।

वसुमति के प्रति वेश्या ने, किसी प्रकार का सद्व्यवहार नहीं किया था; हाँ, दुर्व्यवहार अवश्य किया था। उसने, वसुमति को कटुवचन भी कहे थे, और उसे बलात् पकड़ जाने के लिए भी तयार हुई थी। इस प्रकार वह वसुमति का अपकार करने वाली थी, फिर भी बन्दरों से उसकी रक्षा करने के समय, वसुमति के हृदय में उसके अपराधों का किंचित् भी ध्यान नहीं हुआ। यदि वसुमति चाहती, तो पड़ी हुई वेश्या पर और प्रहार कर सकती थी, अथवा बन्दरो को न भगा-कर वेश्या की दुर्दशा होने दे सकती थी, लेकिन यदि वह ऐसा करती, तो फिर न तो उसकी गणना सतियों में ही होती न यही कहा जा सकता. कि उसने आत्मा को जाना था और उसमें दया थी। लेकिन वह जानती थी, कि सभी प्राणियों में मेरी ही तरह की आत्मा है, दुःखी मात्र पर दया करना मेरा साधारण कर्त्तव्य है, और मेरी हानि, मेरा अपकार कोई दूसरा कदापि नहीं कर सकता, मेरा उपकार या अपकार करने की शक्ति किसी दूसरे में है ही नही, मैं ही स्वयं का उपकार भी कर सकती हूँ, और अपकार भी; इसलिए मुझे किसी के प्रति द्वेष न रखना चाहिए। इस प्रकार के विचारों के कारण ही, वसुमति, उस कष्ट पाती हुई वेश्या के पास दौड़ी गई, उसे नोचने

वाले बन्दरों को उसने भगा दिये, और वेश्या को उठा कर, उसके शरीर पर हाथ फिरा, उसे वेदना रहित कर दिया।

यह बात तो लगभग सभी के अनुभव मे है, कि अपने साथ बुराई करने वाले के साथ भलाई करने पर, वह बुराई करने वाला, अपने और उस भलाई करने वाले के कार्य की तुलना करके, स्वयं ही ऐसा लज्जित होता है, कि फिर उसका सिर ऊपर नहीं उठता। तलवार से दबाया हुआ सिर तो समय पर उठ भी जाता है, लेकिन उपकार से दबाया हुआ सिर कभी भी ऊपर नहीं उठता। यह नियम ही है। इसी नियम के अनुसार, वसुमति द्वारा स्वयं की रक्षा होने से, वेश्या भी लज्जित हुई। उसकी आंखें, वसुमति की ओर नहीं उठती थी। वह सोचती थी, कि मैंने तो इसके साथ कैसा व्यवहार किया था, लेकिन इसने मेरे पर कैसा उपकार किया! यदि यह बन्दरों को न भगाती, तो बन्दर मेरी और न मालूम कैसी दुर्दशा करते, तथा मुझे जीवित भी रहने देते, या न रहने देते! इसी प्रकार बन्दरों के नोचने से मेरे शरीर मे कैसी भयंकर वेदना हो रही थी परन्तु इसका हाथ फिरने से, मेरी वह वेदना भी मिट गई। इस तरह, यह एक तो मुझ पर उपकार करने वाली है; दूसरे जिसके हाथ मे ऐसी शक्ति है, कि फिराने ही से वेदना मिट गई, वह अवश्य ही कोई उच्चात्मा है। इसलिए बुरी भावना त्याग कर, इसने पहले मुझे

जो शिक्षा दी है, उसके अनुसार कार्य करने मे ही मेरा कल्याण है। मैंने, पहले इसकी शिक्षा नहीं मानी, लेकिन अब तो वन्दरों ने मुझे इस योग्य रहने ही नहीं दिया है, कि मैं वेश्या वृत्ति कर सकूँ मैं अपने जिन अंगोपांग और आकृति रूप आदि पर गर्व करती थी, तथा मेरे भक्त लोग जिनकी प्रशंसा करके मुझ पर मुग्ध होते थे उन सब को, बन्दरो ने विकृत कर डाला है। इसलिये अब, अनायास ही मुझ से वेश्यावृत्ति का पाप छूट गया।

इस प्रकार विचारती हुई वेश्या ने हाथ जोड़ कर वसुमति से कहा कि हे सती, मैंने आपका कहना नही माना, आपकी शिक्षा का उपहास किया, और आप पर अत्याचार करने के लिए उतारू हुई, उसी का दण्ड बन्दरों ने मुझे दिया है। ऐसा होते हुए भी आपने मुझ पर जो दया की, उसके लिए मैं, आपकी सदा ऋणी रहूँगी, और जिस सदाचार का पालन करने के लिए आपने कहा था, अब मैं उसका पालन करूंगी। यद्यपि जब मैं सदाचार का पालन करूं, तब आपको मेरे यहां चलने और रहने में किसी प्रकार की आपत्ति नही हो सकती, फिर भी मै सोचती हूँ, कि सुधार हुआ है, तो मेरा हुआ है; मेरे यहां रहने वाले दूसरे लोग, तथा मेरे यहां का वातावरण तो वैसा ही है। मेरे यहां रहने वाले लोगो को सुधारने में और मेरे यहां का वातावरण बदलने में, कुछ विलंब होना स्वाभाविक है। इसलिए अब

मैं स्वयं ही, आपको मेरे यहां न लेजाना अच्छा समझती हूँ।

यह कह कर, वेश्या वसुमति के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई, अपने घर चली गई। वेश्या के पश्चात्ताप से, उसके सहायक लोग भी लज्जित हुए, और अपनी अपनी तरफ चले गये। वसुमति के बिकने, वेश्या के झगड़ने, और बन्दरों के कूदने आदि घटना की खबर सारे नगर में फैल गई। कौशाम्बी में एक धनावा नाम का सेठ रहता था। वह, धनिक भी था, और धर्मात्मा भी था, लेकिन था निःसन्तान! वसुमति से सम्बन्धित समाचार सुन कर उसने विचार किया, कि जिसने अपने अपकारी के साथ भी उपकार कियां, और जिसका हाथ फिरते ही वेश्या के शरीर की वेदना मिट गई, वह अवश्य ही कोई सती है। ऐसी सती यदि मेरे यहां हो, तो मुझे धर्म कार्य में सहायता भी मिलेगी, और उसके बदले में दिये जाने वाला धन भी सदुपयोग में लगेगा!

इस प्रकार विचार कर, धनावा सेठ उस स्थान पर आया, जहाँ वसुमति बिकने के लिए खड़ी हुई थी! उस स्थान पर जो लोग मौजूद थे, उनसे भी उसने वसुमति की प्रशन्सा सुनी! वेश्या की घटना के साथ वसुमति की प्रशन्सा सुन कर, और वसुमति को देख कर, धनावा सेठ ने निश्चय किया, कि इस कन्या को अवश्य ही अपने घर लेजाना चाहिए। इसकी आकृति बताती है, कि यह गुणवती है, और इसके द्वारा मेरे यहां धर्म की वृद्धि होगी।

वेश्या के जाने के पश्चात् रथी, हाथ जोड़ कर वसुमति से कहने लगा, कि हे पुत्री तेरी माता ने स्वयं के प्राण देकर मेरा हृदय अवश्य बदल दिया था, लेकिन वह परिवर्तन स्थायी न था। कभी कभी फिर मेरा हृदय पहले की तरह का होजाता था, और मुझे क्रोध आजाता था; जैसे तुझे घरसे निकालने की बात कहने के कारण मेरी स्त्री पर, और अभी इस वेश्या पर क्रोध आगया था। लेकिन तेरे उपदेश ने मेरे में से इस दुर्गुण को भी सर्वथा निकाल दिया है ! मैं, अब तक तेरे को केवल पुत्री ही समझता था, परन्तु आज तेरा उपदेश सुन कर, और वेश्या का सुधार देख कर, मेरे को यह मालूम हुआ, कि तू एक देवी है। देवी में जो गुण होने चाहिऐ, वे सब तेरे में विद्यमान हैं। तू भी दूसरे की बुरी वृत्ति मिटा कर, उसे सुमार्ग पर ला देती है। मैं नहीं चाहता कि तुझ ऐसी सती मेरे घर से जावे। मेरी कर्कशा स्त्री को तेरे गुणो का पता नहीं है, इसी से वह तुझे घर से निकालना चाहती है; लेकिन जब तूने वेश्या को भी सुधार दिया, तब क्या उसको न सुधार सकेगी ! तेरी शक्ति, और वेश्या का सुधार सुनकर वह भी अवश्य ही सुधर जावेगी। इसलिए मैं तेरे से यह प्रार्थना करता हूँ, कि तू बिके मत, किन्तु घर को वापस लौट चल। मुझे विश्वास है, कि वेश्या का सुधार सुन कर मेरी स्त्री भी अवश्य सुधर जावेगी !

रथी, यह कहते हुए गद्‌गद् हो गया। उसका गला, भर आया। तब वसुमति उसको धैर्य देती हुई कहने लगी—पिताजी, आप साहस रखिये, इस प्रकार कायरता मत लाइये। आप मुझे बिकने ही दीजिये। न बिकने पर और घर वापस जाने पर माता के हृदय का सन्देह और पुष्ट होगा, जिससे निष्कारण ही मुझको तथा आपको कलंक लगेगा। इसके सिवा, लौट जाने से माता का सुधार भी न होगा, लेकिन जब मैं बिक जाऊँगी, और माता के पास २० लाख सोनैया पहुँच जावेंगे, तब माता का हृदय भी बदल जावेगा, उनका सुधार हो जावेगा, मुझको तथा आपको किसी प्रकार का कलंक भी न लगेगा, और इस प्रकार धर्म की भी बड़ाई होगी। एक बात और है। मै यहाँ बिकने आई, इतने ही में वेश्या माता का सुधार हुआ है, तो जब मै बिक जाऊँगी, तब न मालूम कितने लोगो का सुधार होगा। मै न बिक कर तो शायद एक माता का ही सुधार कर सकूँगी, और माता का सुधार होने में भी सन्देह है, परन्तु बिक जाने पर, माता का सुधार तो अवश्य ही होगा, साथ ही और न मालूम कितने लोगों का सुधार होगा। इसलिए आप, मुझे बिकने से न रोकिये।

वसुमती इस प्रकार रथी को समझा रही थी, इतने ही में धनावा सेठ ने उसके पास जाकर पूछा—पुत्री तेरे बदले मे कितना द्रव्य देना होगा? मैं तेरे को अपने यहां ले जाना चाहता हूँ।

के विषय में विचार कर सकूँ, तथा मुझे खरीद कर आपको भी किसी प्रकार का धोखा न हो; और आप यह भी न कह सके, कि मैं इतना द्रव्य खर्च कर तुझे लाया हूँ, इसलिए यह अनुचित काम भी तुझे करना होगा।

वसुमति का यह प्रश्न सुन कर, धनावा सेठ प्रसन्न हुआ। वह, अपने मन मे कहने लगा कि यह निश्चय ही सती है, इसीसे इसने इस तरह के प्रश्न किये हैं, और मेरे घर का आचार जानना चाहती है। इसने अन्य बिकने वाली दासियो की तरह यह नहीं पूछा कि मुझे क्या खाने को दोगे, कैसे मकान मे रखोगे, और कितनी देर काम लोगे। इसने जो प्रश्न किये, वे आचार सम्बन्धी हैं, इसलिये निश्चय ही, यह कोई भले घर की कुलवती लड़की है।

इस प्रकार विचारते हुए धनावा सेठ ने वसुमति से कहा— पुत्री, तूने अच्छा प्रश्न किया है। तेरे द्वारा किये गये प्रश्नों को सुन कर, मैं बहुत प्रसन्न हुआ। वास्तव में तुझ जैसी सती के लिये, इसी प्रकार के प्रश्न योग्य हैं। आजकल पुरुषों का जो पतन है, उसे देखते हुए प्रत्येक बात स्पष्ट कर लेना ही उचित है।

हे पुत्री, मेरे घर का आचार क्या है, मैं तुझे किस उद्देश्य से ले रहा हूँ और मेरे यहां तेरे को क्या करना होगा, यह सुन। आत्मा का कल्याण करने वाले धर्म का पालन करना, यही मेरे

घर का आचार है। तुझे, मेरे यहां धर्म सम्बन्धी कार्य करने होंगे, और धर्म कार्य मे सहायता लेने के उद्देश्य से ही मैं तेरे को खरीद रहा हूँ। मैं वारह व्रतधारी श्रावक हूँ। मेरे घर आया हुआ कोई भी अतिथि विमुख न जावे, यह मेरा नियम है। मेरे यहाँ जो भी आवे, उसका उसके अनुरूप स्वागत-सत्कार होना ही चाहिए। इस नियम के पालन में, मुझे सहायता देने वाला कोई नही है। मेरे कोई सन्तान तो है ही नहीं, केवल पत्नी है; लेकिन उससे मुझे पूरी तरह सहायता नही मिलती है। तेरे द्वारा मुझे इस कार्य मे सहायता मिले, इसी उद्देश्य से मैं तुझे लेजाना चाहता हूँ। तू विश्वास रख, मेरे यहां तेरे को यही काम करना होगा। वैसे तो गृह में अन्य कार्य भी रहते ही है, लेकिन तेरा प्रधान कार्य यही होगा। हॉ, यह मै अवश्य ही विश्वास दिलाता हूँ, कि मेरे यहॉ तेरे सत्य-शील की पूर्णतः रक्षा होगी; उसमे किसी भी प्रकार की बाधा न आवेगी।

हे पुत्री, मै परलोक से जो पुण्य कमाई लेकर आया हूँ, यहॉ उसका दुरुपयोग करके उसे नष्ट नही करना चाहता, किन्तु उसमे वृद्धि करना चाहता हूँ। स्वयं का पतन नहीं करना चाहता, उत्थान करना चाहता हूँ। इसीलिये मै पाप से बचकर, धर्म की आराधना करने में प्रयत्नशील रहता हूँ! मुझको यह आशा है, कि तेरे द्वारा मुझे इस कार्य में सहायता मिलेगी, इसीलिये मैं

तुझ से प्रार्थना करता हूँ, कि तू मेरे यहाँ चल, कोई दूसरा विचार मत कर ।

धनावा सेठ का यह कथन सुन कर, वसुमति प्रसन्न हुई। वह रथी से कहने लगी—पिताजी, यह धैर्य रखने का ही सुफल है, जो मुझे इन पिता की सेवा का सुयोग प्राप्त हो रहा है। ऐसे धार्मिक पिता के यहाँ का दासीपना भी, भाग्य से ही मिलता है। मैं इन पिता के यहाँ अवश्य जाऊँगी। आप मेरे साथ चलिये, और इन पिता के यहाँ से २० लाख सोनैया लेकर माता को दीजिये, जिससे वे सन्तुष्ट हो।

वसुमति का यह कथन सुन कर, रथी रो पड़ा। वह कहने लगा—पुत्री, क्या मैं तेरे को बेच दूँ! एक तो यह है, जो तेरे लिए बीस लाख सोनैया खर्च करके तुझे ले जा रहे है, तथा एक मैं हूँ, जो तुझे अपने घर से भी निकालूँ, तथा बीस लाख सोनैया कीमत लूँ! मेरे से तो, यह नीच कृत्य नहीं हो सकता। रथी को दुःखी और विलाप करते देख कर, वसुमति उसे धैर्य देने लगी। वह कहने लगी—पिताजी, क्या आप को मुझ पर विश्वास नही है? मैंने अभी ही आपको समझाया था, और अभी ही आप फिर दुःख करने लगे! आप, मेरे कथन पर कुछ तो विश्वास रखिये! मेरे को आप नही बेच रहे हैं,

किन्तु मैं स्वयं ही बिक रही हूँ। इसलिये आप, मेरे साथ चल कर मुझे पहुँचा तो आइये !

रथी से यह कह कर, वसुमति ने धनावा सेठ से कहा- पिताजी, मुझे आपके यहाँ चलने में प्रसन्नता है। चलिये मैं आपके साथ चलती हूँ। यह कह कर वसुमति, रथी से 'चलिये पिताजी' कहती हुई, धनावा सेठ के पीछे-पीछे चल दी। वसुमति के वचनों के प्रभाव से बँधा हुआ रथी भी, वसुमति के पीछे-पीछे चला। उस समय, उसके हृदय को ऐसा दुःख हो रहा था, कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका पैर, बड़ी कठिनाई से आगे की ओर पड़ता था; इस कारण वसुमति और धनावा सेठ को भी, जगह-जगह रुक जाना पड़ता था।

वसुमति और रथी को लिये हुए धनावा सेठ, अपने घर पहुँचा। उसने, रथी तथा वसुमति को आदर-पूर्वक बैठाया। फिर अपनी तिजोरी खोल कर, उसने रथी से कहा, कि आप २० लाख सोनैया लीजिये। रथी ने उत्तर दिया, कि मैं इस पुत्री की आज्ञा मान कर इसे पहुँचाने के लिए यहाँ तक आया हूँ। इसको बेचने, या सोनैया लेने के लिए नहीं आया हूँ। यह पुत्री मुझ दुर्भागी के यहाँ नहीं रहना चाहती है, और आप के यहाँ रहना चाहती है, तो मजे से रहे, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन मैं इसके बदले में सोनैया नहीं ले सकता !

रथी का उत्तर सुन कर. वसुमति ने विचार किया, कि ये पिता ऐसे न समझेंगे, और जब तक माता के पास २० लाख सोनैया न पहुँचेंगे, तब तक माता को सन्तोष न होगा। इसलिये किसी उपाय से इन्हें समझाना चाहिए। इस प्रकार विचार कर वसुमति, रथी से कहने लगी—पिताजी आज से आप और यह पिता, आपस में भाई-भाई हैं। आप दोनों ही, मेरे पिता हैं, और आप दोनों के बीच में मैं एक कन्या हूँ। अब से यह घर और वह घर एक ही है। इसलिए आप, ये पिता जो २० लाख सोनैया देते हैं वे सोनैया ले जाकर माता को दीजिये। ये, बीस लाख सोनैया मेरे स्वरूप नहीं दे रहे है, न आप ही मूल्य स्वरूप ले रहे हैं। पुत्री को बेंचने और खरीदने का पाप, आप ऐसे धर्मात्मा कब कर सकते हैं! ये पिता जो सोनैय्या दे रहे हैं वे तो मेरी माता को उपहार-स्वरूप देने के लिए दे रहे हैं! क्या आप, इन पिता द्वारा दिया गया उपहार ले जाकर, माता को देने का कष्ट भी नहीं कर सकते! जो उपहार माता को देने के लिए ये पिता दे रहे हैं, उसको ले जाने से आप कैसे इनकार कर सकते है? माता के अधिकार की वस्तु को, आप अस्वीकार नहीं कर सकते!

रथी से इस प्रकार कह कर, वसुमति ने धनावा सेठ से कहा—पिताजी, २० लाख सोनैया ये अकेले कैसे ले जा सकते हैं!

इतना वज़न, इनसे कैसे उठ सकता है! आप इन सोनैयों को मेरी माता के पास पहुँचाने का प्रबन्ध कर दीजिये। वसुमति का कथन सुन कर धनावा सेठ ने अपने यहाँ के नौकरों को बुलाकर उन्हें २० लाख सोनैये दिये, और उन से कहा, कि इन मेरे भाई के साथ जाकर; इनके यहाँ ये सोनैया पहुँचा आओ। इस प्रकार सोनैया पहुँचाने का प्रबन्ध करके, धनावा सेठ ने रथी से कहा, कि भाई, आज से मैं और आप, इस पुत्री के नाते भाई हुए हैं। आप, किसी भी प्रकार का दूसरा विचार मत करो! यह घर भी आप ही का है। इस प्रकार वत्सलता भरी बातें कह कर, सेठ ने रथी को अपने गले से लगाया, और उसे जैसे-तैसे समझा बुझा कर विदा किया।

धनावा सेठ की स्त्री का नाम, मूलाँ था। मूलाँ का स्वभाव, धनावा सेठ के स्वभाव से बिलकुल ही भिन्न था। उसका स्वभाव ठीक वैसा ही था, जैसा प्रायः आजकल की सेठानियों का हुआ करता है। उसे, धनावा सेठ ऐसे धनिक और प्रतिष्ठित पुरुष की पत्नी बनने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त हुआ था, परन्तु वह इस पद की अधिकारिणी नहीं थी। क्योंकि, उसके माता-पिता का घर, ऐसा धन सम्पत्ति पूर्ण न था। किसी जन्म-दरिद्री को जब सम्पत्ति मिल जाती है, तब उसे अभिमान हो ही जाता है। इसी के अनुसार, मूलाँ में भी मिथ्याभिमान भरा हुआ था। वह, अपने सामने

किसी को कुछ समझती ही न थी। स्वयं को, संसार के सब लोगों से अधिक बुद्धिमती, तथा अधिकार-सम्पन्ना मानती थी। इस कारण वह, किसी को भी कटुवचन कहने में नहीं हिचकिचाती थी, न कभी अपनी भूल ही स्वीकार करती थी। वह स्वयं उतना काम नहीं करती थी, जितना नौकर चाकर आदि को डाटा-डपटा करती थी। स्वयं के नौकरो के साथ, उसका व्यवहार अच्छा नहीं रहता था। उनसे कार्य तो कठोरता से लेती थी, लेकिन उनको सुविधा पहुँचाने, तथा उनका पालन-पोषण करने में सदा उपेक्षा करती थी; तनिक भी सहृदयता नहीं बताती थी। अपने यहाँ आये हुए लोगों का सत्कार करके उन्हे सन्तुष्ट करने के बदले, वह उनका और अपमान कर देती थी। वह, सेठ की धर्म-भावना के अनुसार काम नहीं करती थी। हाँ, अपनी कुटिलता के कारण, प्रकट में सेठ के साथ पतिव्रता की तरह का व्यवहार करने का ढोंग अवश्य रच देती थी। तात्पर्य यह, कि मूलाँ का स्वभाव, सेठ के स्वभाव से बिलकुल ही भिन्न था। सेठ जितना नम्र, सरल, धार्मिक, और दयालु व्यक्ति था, मूलाँ उतनी ही कठोर, कपटिन, ढोंगिन, और निर्दय थी। उसके द्वारा सेठ को, धर्म-कार्य में किंचित् भी सहायता नहीं मिलती थी; हाँ, सेठ के धर्म-कार्य में, वह बाधक अवश्य बन जाती थी। अपनी कपट-क्रिया के बल पर, कभी-कभी वह सेठ को भी ऐसे गल्त रास्ते पर ले

जाती थी, कि जिसके कारण उस धार्मिक सेठ के हाथ से भी, धर्म-विरुद्ध कार्य हो जाता था।

वसुमति को लेकर सेठ, अपनी स्त्री मूलाँ के पास गया। वसुमति, मूलाँ को प्रणाम करके, एक ओर चुपचाप खड़ी हो गई। मूलाँ से सेठ कहने लगा—प्रिये, पुरुष को जो लक्ष्मी प्राप्त होती है, वह स्त्री के भाग्य से ही। अभागा—स्त्री के पति को, लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। तुम भाग्यवती हो, इसलिए आज मुझे, यह पुत्रिरूपा लक्ष्मी प्राप्त हुई है। अपने सन्तान नहीं है। कदाचित् सन्तान होती भी; तब भी इस पुत्री की तरह की सन्तान अपने यहाँ हो, ऐसा पुण्य अपना नही है; लेकिन सद्भाग्य से अपने को यह कन्या प्राप्त हुई है। इस कन्या में क्या गुण हैं, और कैसी-कैसी विशेषता हैं, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। यह बात, कुछ ही समय में आप ही ज्ञात हो जावेगी। इसलिए अधिक कुछ न कह कर, यही कहता हूँ, कि इसे अपनी पुत्री मानना, और इससे पूर्ण धर्म-सम्बन्ध जोड़ना। मेरा विश्वास है, कि ऐसा करने से तुम्हारा भी सुधार होगा; और इसकी सम्मति से कार्य करने पर, घर भी आदर्श-घर हो जावेगा तथा धर्म की भी वृद्धि होगी।

वसुमति को देख कर, सेठ की बातें सुनती हुई मूलाँ सोच रही थी, कि यह कन्या तो बहुत ही सुन्दरी है! इसके सामने

तो, मैं तुच्छ जान पड़ती हूँ। इसने सुन्दरता मे तो मुझे परास्त कर ही दिया, साथ ही पति इसके गुणों की प्रशंसा करते हुए, इसकी सम्मत्यानुसार कार्य करने का कहते है और कहते हैं, कि इसके कारण तुम्हारा भी सुधार हो जावेगा। इस प्रकार, यह तो जैसे मेरे सिर पर आई है। इसके सौन्दर्य, और इसकी अवस्था पर कौन पुरुप मुग्ध न होगा! मेरे पति, ब्रह्मचारी तो हैं नहीं; और जब ब्रह्मचारी भी स्त्रियों का सौन्दर्य देखकर ब्रह्मचर्य पतित हो जाते हैं, तब मेरे पति इस पर मुग्ध हों, इसमें क्या आश्चर्य है! हो सकता है, कि पति इसको किसी बुरे उद्देश्य से ही लाये हों, तथा इस गृह की स्वामिनी बनाना चाहते हों। लेकिन पति इस समय इसको पुत्री कहते हैं, इसलिए अभी किसी प्रकार का सन्देह प्रकट करना ठीक नहीं। कुछ समय बाद, जब मेरे सन्देह की पुष्टि का कोई कारण मिल जावे तब, इस विषय में विचार करना, और कोई उपाय करना ठीक होगा। अभी तो पति जैसा कहते हैं, वैसा मान लेना ही अच्छा है। पति, इसको लक्ष्मी कहते हैं, इसलिए कुछ दाल में काला होना ही चाहिए। लेकिन इस प्रकार की बात, कितने दिनों तक छिपी रह सकती है! कभी न कभी, किसी रूप में तो प्रकट होगी ही। उसी समय कुछ कहना ठीक होगा, अभी किसी प्रकार का सन्देह प्रकट करना ठीक नहीं है।

इस प्रकार विचारती हुई मूला ने सेठ की बात समाप्त होने पर कहा, कि प्रसन्नता की बात है, जो आप इस पुत्री को लाये है। अपने यहाँ यदि ऐसी कन्या होती भी, तब भी उसका बहुत पालन-पोषण करना होता, और बड़े परिश्रम से वह इतनी बड़ी होती। लेकिन यह तो बड़ी आई है, इसलिए इसका पालन करने में किसी प्रकार का श्रम भी न करना होगा। मैं, आपकी आज्ञानुसार ही सब कार्य करूँगी।

अपने मन के भावों को दबा कर मूला ने, ऊपर से सेठ की बात स्वीकार करली। सेठानी का कथन सुनकर, सेठ, निश्चिन्त हो वहाँ से चला गया। मूलां ने, अपने हृदय के भावों को प्रकट न होने देने के लिए, वसुमति का सत्कार किया, तथा उसके भोजन शयन की व्यवस्था कर दी।

वसुमति, सेठ के घर में रहने लगी। वह, सेठ के बताये हुए अतिथि-सत्कार आदि धर्मकृत्य करने के साथ ही, गृह के कार्य भी करती। जिस कुशलता से वह रथी के यहाँ सब कार्य करती थी, उसी कुशलता से सेठ के घर का भी काम किया करती थी। उसकी कार्य-कुशलता ने, सेठ, और घर के नौकर चाकर आदि सबको मुग्ध कर लिया। उसके कार्य का प्रभाव सेठानी पर भी अवश्य पड़ा, लेकिन दूसरे ही रूप में। वसुमति की कार्य कुशलता, उसके सन्देह को बढ़ाती जाती थी। वह,

वसुमति के श्रम और कौशल्य का, कुछ दूसरा ही उद्देश्य समझती थी।

एक दिन वसुमति से, सेठ, ने पूछा—पुत्री, तेरा नाम क्या है? वसुमति ने उत्तर दिया—पिताजी, मै आपकी पुत्री हूँ। पुत्री का नाम वही हो सकता है, जो माता-पिता रखें। इसलिए आप मेरा जो नाम रखें, वही मेरा नाम है। वसुमति का उत्तर सुनकर, सेठ ने उससे उसका नाम जानने का आग्रह नहीं किया, किन्तु उससे कहा, कि—हे पुत्री, मैं, उस दिन, वेश्या पर बन्दरो के कूदने, उसकी दुर्दशा करने, और तेरे द्वारा उसकी रक्षा की जाने आदि का वृत्तान्त सुन चुका हूँ। उस वृत्तान्त को सुन कर, मैंने यह निश्चय किया, कि जिस प्रकार चन्दन, अपने काटने वाले अपकारी को भी सुगन्ध और शीतलता देता है, उसी तरह तू भी, अपने शत्रु को भी सुख देने वाली है। इसलिए आज से मैं, तेरा नाम 'चन्दनवाला' रखता हूँ।

सेठ ने, अपनी स्त्री आदि सब से कह दिया, कि इस पुत्री को आज से 'चन्दनवाला' नाम से सम्बोधन करना। सेठ की इस बात को सबने स्वीकार किया। सब लोग वसुमति को 'चन्दनवाला' नाम से पुकारने लगे। वसुमति का 'वसुमति' नाम, किसी को भी मालूम नहीं था। रथी के यहाँ भी, वह 'पुत्री' कही जाती थी, और सेठ के यहाँ भी, सब लोग उसे पुत्री ही कहते थे; लेकिन

जब से सेठ ने उसका नाम चन्दनबाला रखा, तब से वह 'चन्दन बाला' कही जाने लगी। उसका यह नाम ऐसा प्रसिद्ध हुआ, कि आज भी उसका 'चन्दनबाला' नाम ही लिया जाता है। उसका 'चन्दनबाला' नाम उसके जीवन भर तो रहा ही, लेकिन उसने सिद्ध पद प्राप्त कर लिया, तब भी यह नाम तो मौजूद ही है।

भोंथरे में।

—⊱—

पात्र, प्रत्येक वस्तु को अपने अनुकूल रूप में ही ग्रहण करता है। वस्तु में चाहे जैसा गुण हो, चाहे जैसी विशेषता हो, लेकिन पात्र उसे अपने स्वभाव के रूप मे ही ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, लौकिक उक्ति के अनुसार, स्वाति नक्षत्र के जल बिन्दु को देखिये ! स्वाति का जल विन्दु जब सीप के मुंह में पड़ता है, तव मोती वन जाता है। वही स्वाति का जल विन्दु, सांप के मुंह में पड़ कर विष वन जाता है; कमल पत्र पर गिर कर मोती के समान दिखता है; और गरम तवे पर पड़ कर राख होजाता है। जलविन्दु तो वही है, फिर इस अन्तर का कारण क्या है ? यही कि पात्रों के रूप और स्वभाव मे भिन्नता है। सीप में, मोती वनाने का स्वभाव है, इस कारण उसमें पड़ा हुआ विन्दु, मोती वन जाता है। सॉप में विप वनाने का स्वभाव

है, इसलिए उसमें पड़ा हुआ बूँद, विष बन जाता है। कमलपत्र में शोभा वृद्धि का स्वभाव है, इसलिए उस पर गिरा हुआ जल बिन्दु, मुक्ताफल की शोभा पाता है और गरम तवे में भस्म करने का स्वभाव है, इसलिए उस पर पड़ा हुआ बूँद भस्म हो जाता है। तात्पर्य यह कि वस्तु में चाहे जैसी विशेषता हो, चाहे जैसा गुण हो, लेकिन पात्र उसको अपने रूप और स्वभाव के अनुसार ही ग्रहण करता है। यदि पात्र अच्छा है, तो वह बुरी वस्तु को भी अच्छे रूप मे ही ग्रहण करता है; और यदि पात्र बुरा है, तो वह अच्छी वस्तु को भी बुरे ही रूप में ग्रहण करता है।

वसुमति—जिसका नाम धनावा सेठ ने "चन्दनबाला" रखा था—चन्दन के समान, अपने अपकारी को भी शान्ति देने वाली थी। जो रथी, उसकी माता की हत्या का प्रधान कारण था, जिसने उसकी माता को कटुवचन कहे थे, और जो उसकी माता का सतीत्व हरण करने के लिये तयार होगया था, इसी उद्देश्य से उन्हे जंगल में भी लेगया था; चन्दनबाला ने, उस रथी के साथ भी किसी प्रकार का वैर-भाव नहीं रखा; किन्तु उसको भी अपना पिता माना, और प्रत्येक दृष्टि से उसका उपकार ही किया। रथी की स्त्री ने भी, चन्दनबाला के साथ दुर्व्यवहार किया था, लेकिन चन्दनबाला ने उसके साथ भी सद्व्यवहार ही किया। जिस समय रथी अपनी स्त्री को घर से निकालने के लिए तयार

हुआ था, उस समय चन्दनवाला ने अपने उपदेश से रथी को समझाया, और रथी की स्त्री की इच्छा पूरी करने को, स्वयं बाजार में बिकी। वेश्या ने भी, चन्दनबाला के साथ कोई अच्छा व्यवहार नहीं किया था। वह, चन्दनवाला को वेश्या बनाने के उद्देश्य से, बलात् पकड़ने को उद्यत हुई थी। फिर भी चन्दन-वाला ने, अपने हृदय में उसके प्रति कोई दुर्भाव नहीं रखा, दौड़ कर बन्दरों से उसकी रक्षा की, और उसे उठाकर वेदना-मुक्त किया। इस प्रकार जैसे चन्दन, स्वयं को काटने वाले को भी शीतलता और सुगन्ध ही देता है, उसी प्रकार चन्दनवाला भी, अपने साथ बुराई करने वाले की भलाई ही करती थी। वह, बुराई करने वाले का भी अहित नहीं चाहती थी, दूसरे की तो बात ही अलग है। गृहकार्य आदि में भी, उसको न तो आलस्य था, न किसी प्रकार का भेद या ईर्षा ही रखती थी। इस प्रकार उसमें सब सद्गुण ही सद्गुण थे, लेकिन जिनका हृदय मलिन था, उनको उसके सद्गुण भी दुर्गुण ही जान पड़ते थे। रथी की स्त्री को, चन्दनवाला के कार्य और उसका सद्व्यवहार बुराई के रूप में देख पड़ा था, और मूला सेठानी को भी चन्दनवाला के कार्य तथा व्यवहार में, दुर्भावना की वास आती थी। इसमे चन्दनवाला का कोई दोष न था। यदि चन्दनवाला में ही कोई बुराई होती, तो रथी, रथी के यहाँ के दूसरे लोग, और सेठ,

तथा सेठ के यहाँ के दूसरे लोग, चन्दनबाला से प्रसन्न नहीं रह सकते थे। उनके हृदय में भी चन्दनबाला के प्रति दुर्भाव ही होता सद्भाव न होता। परन्तु केवल रथी की स्त्री, और मूलाँ को ही चन्दनबाला बुरी लगी, इसका एक मात्र कारण यही था, कि उन दोनों का हृदय मलिन था।

चन्दनवाला, धनावा सेठ के यहाँ रहती थी। उसको अपने खाने-पीने आदि की किंचित् भी चिन्ता नहीं थी, यदि चिन्ता रहती थी, तो अतिथि-सत्कार और गृह-कार्य की ही। उसके कार्य एवं व्यवहार से, सेठ, सेठ के नौकर-चाकर, सेठ के पड़ोसी और सेठ के यहाँ आने जाने वाले लोग, सभी प्रसन्न थे। सब, चन्दना की सराहना करते थे। चन्दनबाला, किसी कार्य के लिए दूसरे पर आज्ञा न चलाती थी, किन्तु प्रत्येक कार्य अपने हाथ से ही करती थी! वह, सब लोगों के दुःख-दर्द में सहायिका होती थी, और सब के साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार रखती थी। उसका कोई कार्य या व्यवहार ऐसा न था, जिससे किसी को असन्तोष हो। उससे, सभी लोग प्रसन्न थे, लेकिन मूलाँ, उससे किसी भी समय प्रसन्न नहीं रहती थी। उसको, चन्दनबाला की ओर से सदा ही असन्तोष रहता था। इसका कारण, उसके हृदय की मलीनता थी। चन्दना को लेकर सेठ जब आया था, तभी मूलाँ को यह सन्देह हुआ था, कि पति इसे किसी दूसरे

उद्देश्य से न लाये हों ! अपनी कुटिलता से मूलॉ ने यह सन्देह प्रकट नहीं होने दिया, परन्तु उसके हृदय में यह सन्देह दृढ़ होता गया, चन्दनवाला के कार्य, और उसकी प्रशन्सा, मूलॉ का सन्देह बढ़ाता जाता था। उसको विचार होता था, कि यह मेरे घर मे इतना काम क्यो करती है। सब लोगों को प्रसन्न, क्यों रखती है ! पति, इसकी इतनी प्रशन्सा क्यो करते हैं ! इस प्रकार जैसे रथी की स्त्री को चन्दन वाला की ओर से भय हुआ था, उसी तरह मूलॉ को भी यह भय हुआ, कि कहीं यह मेरे पति पर आधिपत्य न कर ले !

सन्देह और भय के कारण मूलॉ, चन्दनवाला से इर्षा करने लगी। वह बात बात में चन्दनवाला की बुराई करती, और उसके कार्यों की भी बुरी तरह आलोचना करती। कभी-कभी वह स्वयं ही किसी कार्य को बिगाड़ देती, और उसका अपराध चन्दनवाला के सिर मढ़ती। मूलॉ के इस तरह के दुर्व्यवहार को भी चन्दन वाला शान्तिपूर्वक सह जाती, और अपना अपराध न होने पर भी, अपना अपराध मानकर क्षमा मॉगने लगती, जिससे मूलॉ को और कुछ कहने का अवसर ही न मिलता। उसके इस व्यवहार से भी, मूलॉ असन्तुष्ट ही रहती। वह सोचती, कि यह कैसी ठगिन है ! कैसी सहनशील और प्रिय-भाषिणी है ! मैंने तो, अमुक बात इस उद्देश्य से कही थी, कि

जिसमें ये यह सामना करके मुझसे लड़े, और मैं आगे कुछ कह सकूँ, लेकिन यह तो सब बात सह जाती है, तथा स्वयं का अपराध न होने पर भी, क्षमा मांगने लगती है। वास्तव में इसको तो इस घर की मालकिन बनना है, इसीसे यह घर के इतने काम भी करती है, सब लोगों को प्रसन्न भी रखती है, और मेरी बातें भी सह जाती है !

इस प्रकार चन्दन बाला के लिए धनावा सेठ के यहां भी ठीक वही स्थिति उत्पन्न हो गई, जो रथी के यहाँ उत्पन्न हो गई थी ! मूलाँ की एक दासी, समझदार और मूलाँ के मुँह लगी थी। मूलाँ को, निष्कारण ही चन्दन बाला पर रुष्ट रहती और चन्दन बाला के लिए कटुबचन कहती, देखकर, एक दिन उसने मूलां से कहा, कि आजकल आपका स्वभाव कैसा हो रहा है ! चन्दनबाला आपके यहां इतने काम करती है, सबकी सेवा करती है, फिर भी आप उस पर नाराज ही रहा करती हैं और उसे कटुवचन ही कहा करती है; आप ऐसा क्यों करती हैं, यह कुछ समझ में नहीं आता !

दासी का यह कथन सुनकर, मूलां उससे कहने लगी, कि तू उसकी प्रशन्सा तो कर रही है, लेकिन यह भी जानती है कि वह कौन है, किस जाति कुल की है, यहां क्यों आई है, और किस उद्देश्य से परिश्रम-पूर्वक सब काम करती है ? तुम सब तो

उसकी मीठी वातों में ही भूल रही हो। यह नहीं देखती, कि उसकी मीठी वातो के पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है। वह, सुन्दरी है, युवती है, फिर भी उसने अपने विवाह के विपय में कभी कोई वात कही है? क्या वह संसार से निराली है जो उसको इस अवस्था में भी पुरुप की चाह न हो, ? इसके सिवा तू यह भी जानती है, कि सेठ उससे इतना प्रेम क्यो करते हैं? मैंने सुना है, कि सेठ उसको वीस लाख सोनैया में मोल लाये है। उसमें ऐसी क्या विशेपता है, जो सेठने उसके लिए २० लाख सोनैया खर्च किये? केवल यही विशेपता है, कि वह सुन्दरी है और युवती है। मेरे शृंगार की सामग्री के लिए खर्च करने में तो, सेठ ने ऐसी उदारता कभी नहीं दिखाई, और उसके लिए २० लाख सोनैया खर्च कर दिये, यह क्यो? तू, इन सव वातो पर विचार कर, केवल उसकी मीठी वातों मे फँस कर ही उसका पक्ष मत ले। मैं तो समझती हूँ, कि सेठ उसको इस घर की मालकिन वनाने के लिए ही लाये है; और इसीलिए वह, परिश्रम पूर्वक इस घर का काम भी करती है; तथा सव लोगो से मीठा वोलकर, उन्हे अपने हाथ मे कर रही है। मैं तो ऐसे अवसर की खोज मे हूँ, जव उसको इस घर से निकाल सकूँ।

मूलाँ का यह कथन सुनकर, दासी उससे कहने लगी, कि आपने चन्दनवाला के विपय में जो शंका प्रकट की, मेरी समझ

से वह, व्यर्थ है। आज तक चन्दनबाला की ओर से मेरे देखने में तो ऐसी कोई बात नहीं आई, जिससे इस प्रकार की शंका की जा सके। यदि मेरी दृष्टि में ऐसी कोई बात आती, तो मैं स्वयं ही आप से कहती। मेरी दृष्टि मे तो, चन्दनबाला पूरी सती है; लेकिन आपके हृदय में, उसकी ओर से सन्देह हो गया है, इसी से आपको उसके गुण दिखाई नहीं देते, किन्तु गुण भी अवगुण जान पड़ते हैं। किसी कवि ने कहा है—

शीतलतारु सुगन्ध की, घटी न महिमा मूर।
पीनस वाले ने तज्यो, सोड़ा जानि कपूर॥

इसके अनुसार आप में भी उसकी ओर के सन्देह का रोग घुस रहा है, इससे आप उसके गुणों को भी दुर्गुण मान रही हैं, लेकिन वास्तव में, उसके गुण, अवगुण नहीं हो सकते। उसके गुण तो, गुण ही रहेंगे; हाँ, आप उससे ईर्षा करके, महान् पाप अवश्य बाँध रही हो। इसलिए आप, उसके प्रति सन्देह मत रखो, उससे ईर्षा करना छोड़ो, और उसके साथ सहृदयता का व्यवहार करो। उस सती को मिथ्या कलंक लगा कर, पाप में मत पड़ो।

दासी का यह कथन सुन कर, मूलाँ उसको डाटती हुई कहने लगी, कि—आखिर तो तू दासी ही ठहरी! दासी में यदि अधिक बुद्धि हो, तो वह दासी ही क्यों रहे!

मूलाँ को कुपित देख कर, बेचारी दासी, वहाँ से चुप-चाप चली गई। मूलाँ, चन्दनबाला के साथ, अधिकाधिक कठोर व्यवहार करती रही। इसी बीच में, एक और घटना हो गई।

एक दिन चन्दनबाला, स्नान करके खड़ी हुई अपने केश सुखा रही थी। उसी समय बाहर से, धनावा सेठ आया। चन्दनबाला को केश सुखाती देख कर, सेठ ने उससे कहा— पुत्री, जान पड़ता है, कि तू ने स्नान किया है। यदि कुछ गर्म जल शेष हो, तो मुझे दे दो, मैं भी अपने पैर धो लूँ। सेठ का यह कथन सुन कर, चन्दनबाला ने अपने केशों की व्यवस्था स्थगित कर दी। वह गई, और एक पात्र में जल, तथा साथ ही बैठने के लिए चौकी, एवं पैर धोने के लिए पात्र ले आई। उसने सेठ से कहा—पिताजी, आप इस चौकी पर बैठ कर इस पात्र में पाँव रखिये, मैं आपके पाँव धोये देती हूँ। चन्दनबाला के इस कथन के उत्तर मे, सेठ बोला—पुत्री, क्या मैं तेरे से अपने पाँव धुलवाऊँ? तुझ सती से यह नीच कार्य करा कर, अपने आप पर पाप का भार चढ़ाऊँ! तू, मेरी पुत्री है। पुत्री से, पिता को पाँव धुलाना ठीक नहीं है। पैर धोना, हल्का कार्य माना जाता है। जिस मंगलमयी ने वेश्या को भी सुधार दिया, और मेरे इस घर को स्वर्ग-सा बना दिया, वह तू मेरे पैर धोवे, यह कैसे सम्भव है! तथा मेरे लिए भी, तुझ से पैर धुलाना कैसे

उचित है ! तूने जल आदि ला दिया, यही बहुत है। मैं, स्वयं ही अपने पैर धो लूँगा; तू तो अपने केशों की व्यवस्था कर।

सेठ का कथन सुन कर वसुमति बोली—पिताजी, आप पुत्र-पुत्री में भेद करने, तथा सेवा-कार्य को हलका बताने का पाप कैसे कर रहे हैं। आप, ऐसा मत करिये। मै पूछती हूँ कि क्या पुत्री सन्तान नहीं है; पुत्र ही सन्तान है ? यदि दोनो ही सन्तान है, तो फिर पिता की सेवा करने में, दोनो का अधिकार समान क्यो नही हो सकता ? पिता के चरणों की सेवा पुत्र को तो प्राप्त हो, और पुत्री उससे वंचित क्यों रहे ? पुत्र को तो यह सुयोग दिया जावे, और पुत्री को न दिया जावे, क्या यह अन्याय नहीं है ? माता-पिता के लिए, पुत्र और पुत्री दोनों ही समान हैं अतः पुत्री को चरण-सेवा से वंचित न रखना चाहिए। इसलिए आप यह मत कहिये कि मैं, तुझ पुत्री से पॉव कैसे धुलवाऊँ !'

पिताजी, आपने कहा है कि मै, तेरे से पैर धुलवा कर, अपने पर भार कैसे चढ़ाऊँ ! मैं जानना चाहती हूँ, कि मेरे पैर धोने से आप पर भार क्यो चढ़ेगा ? क्या मुझे आप केवल मुख से ही पुत्री कहते है, वास्तव में पुत्री नही मानते ? और यदि मानते है, तो मेरे पैर धोने से, आप पर भार चढ़ने का क्या कारण है ? सन्तान, पिता की जो सेवा करे, उसका भार पिता पर कैसे चढ़ सकता है ? सन्तान पर माता-पिता का जो ऋण है, उस

ऋण से वह, माता-पिता के पाँव जन्म भर धोकर भी उऋण नहीं हो सकती, तो मैं पैर धोऊँ, इससे आप पर भार कैसे चढ़ सकता है? पिताजी, मै आपकी पुत्री हूँ, और आप मेरे पिता है। इसलिए भेदभाव करने वाली कोई बात कह कर, मुझे आपकी सेवा से मत रोकिये!

एक बात और है। आप, पैर धोने के कार्य को हल्का कह कर, मुझे उसके करने से रोकते हैं, और साथ ही मुझे सती एवं मंगलमयी भी कहते जाते है। ये दोनों बातें, एक दूसरी का विरोध करती हैं। किसी भी सेवा-कार्य के विषय में, अच्छे-बुरे या नीच-ऊँच का भेद करना, सेवा-धर्म को न समझना है। सेवा करने वाले के समीप, इस प्रकार का भेद होना ही न चाहिए। संसार मे, सेवक और सेव्य के बीच मे जो विषमता देखी जाती है, उसका कारण, कार्य मे भेद-भाव का होना ही है। यह कार्य उच्च है, और यह नीच है, तथा इस कार्य को ऊँचा करता है, और इस कार्य को नीच करता है, यह भेद-भाव ही संसार में विषमता फैलाता है। वास्तव मे, कोई सेवा-कार्य नीच नहीं है! इसलिए आप चरण धोने के कार्य को हल्का मत कहिये। इसके सिवा, आपके चरणों का कैसा महत्व है इसको मै ही जानती हूँ। इन चरणो के प्रताप से ही, मुझे इस घर में आश्रय मिला है। यदि ये चरण न होते, तो मुझे ऐसा धार्मिकता पूर्ण गृह

कैसे प्राप्त होता ? इसलिए भी आप, मुझे पैर धोने से न रोकिये।

इस तरह चन्दनबाला ने, सेठ को निरुत्तर कर दिया। सेठ और कुछ न कह सका। उसने यही कहा, कि पुत्री, जैसे तुझे सुख हो, तू वैसा ही कर। यह कह कर सेठ, चन्दनबाला की लाई हुई चौकी पर बैठ गया। चन्दनबाला ने, सेठ के सामने पैर धोने का पात्र रख दिया, और कहा पिताजी, आप अपने दोनों पैर, इस पात्र में रख दीजिये। सेठ ने, उस पात्र मे अपने पांव रख दिये, और चन्दनबाला उन पर पानी डाल कर उन्हें मलमल कर धोने लगी। उस समय मे उन दोनो के हृदय में जो पवित्र प्रेम उमड़ रहा था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। चन्दनबाला तो यह विचार कर प्रसन्न हो रही थी, कि इतने दिनों के बाद आज अनायास ही मुझे पिता के चरणों की सेवा का सुयोग प्राप्त हुआ है, और सेठ यह विचार कर प्रसन्न था, कि मुझे सद्भाग्य से ही यह पुत्री प्राप्त हुई है। इस प्रकार, दोनों ही अपने-अपने विचारों में मग्न एवं प्रसन्न थे।

चन्दनबाला, सेठ के पांव धो रही थी, इस कारण उसका शरीर हिल रहा था। शरीर हिलने से, उसके छूटे हुए लम्बे और सुन्दर केश, उसके मुख पर आ गये। सेठ ने सोचा कि यह पांव धो रही है, और इसके बाल मुंह पर हिलग आये हैं, जिससे इस को कष्ट होता होगा। यह विचार कर सेठ ने, शुद्ध स्नेह वश,

अपने हाथ से उसके केस समेट कर ऊपर की ओर कर दिये। मूलां, यह सब देख रही थी। सेठ को, चन्दनबाला के केश ऊपर करते देख कर, उसका हृदय दग्ध हो गया। वह सोचने लगी, कि मैं जो कुछ सोचती थी, वह ठीक ही है। आज तो, इनका सम्बन्ध प्रत्यक्ष ही देख लिया। जब मेरे देखते हुए ही पति ने इसके मुंह पर हाथ फिराया है, तब और क्या बाकी रहा! मेरे न देखने पर, क्या-क्या न होता होगा! और आज इनका जो सम्बन्ध गुप्त है, वह कुछ दिनों बाद उसी प्रकार प्रकट होने लगेगा जिस तरह आज प्रकट में इसके मुंह पर हाथ फिराया गया है। अभी तो ये दोनों, मुझ से दबते तथा संकोच करते हैं, तब भी मेरे सामने ही पति इसके मुँह पर हाथ फिरा रहे है, और इसने भी प्रसन्नता से मुँह पर हाथ फिरवाया है, लेकिन कुछ दिनों बाद जब मेरी ओर से किसी प्रकार का संकोच न रहेगा तब, क्या-क्या न होगा! फिर तो सब कुछ प्रकट में ही होने लगेगा; और यदि मैं किसी प्रकार का विरोध करूँगी, तो मेरा इस घर में रहना कठिन हो जावेगा! यह घर के सब काम तो करती ही है, नौकर चाकर आदि सब को इसने स्वयं के वश कर ही लिया है, प्रत्येक छोटे-बड़े काम में इसी की पूछ होती है; मुझे तो कोई पूछता भी नहीं है। ऐसी दशा में, इस घर मे मेरी आवश्यकता ही क्या रही? और जब मैं इन दोनो के सम्बन्ध का विरोध

करने लगूँगी, तब मुझे इस घर में क्यों रहने दिया जावेगा ! यह, मेरी सच्ची सौत है। मेरे सुख सुहाग के लिए काँटा है। यदि मैंने इस बढ़ते हुए विष वृक्ष को अभी ही न उखाड़ फेंका, तो फिर इसका उखाड़ना मेरी शक्ति में न रहेगा।

सेठ और चन्दनबाला में वही पवित्र प्रेम सम्बन्ध था जो पिता-पुत्री में हुआ करता है, लेकिन मूलॉ ने हृदय मलिन होने के कारण उसे दूसरा ही रूप दिया। वह, उन दोनों के पवित्र प्रेम को भी अपवित्र प्रेम समझ रही थी, और यह सोच रही थी कि चन्दनबाला को इस घर से कैसे निकालना। सेठ और चन्दन-बाला के हृदय मे इस बात की कल्पना भी नहीं हुई, कि हमारे विषय मे मूला कोई बुरा विचार कर रही होगी। इस कारण सेठ तो, उसी प्रकार बैठा हुआ चन्दनबाला से पाँव धुलवाता रहा, और चन्दनबाला धोती रही। पांव धुलवा कर सेठ, अपने काम पर चला गया, तथा चन्दनबाला, अपने केशों को सुखाने, एवं उनकी व्यवस्था करने लगी।

चन्दनबाला के विषय में मूलां सोचने लगी, यदि मैं किसी उपाय से इसको घर से निकलवा दूँगी, तो ऐसा करने से कुछ भी लाभ न होगा। पति, इसको दूसरे मकान में रख देंगे, जहां इन दोनों को और सुविधा हो जावेगी। यहां तो मेरे कारण इनको दबना पड़ता है, इस कारण ये अपना सम्बन्ध गुप्त ही रखते हैं,

लेकिन दूसरे मकान मे मेरा दवाव भी न रहेगा। इसलिए कोई ऐसा उपायकरना चाहिए, कि जिससे सदा के लिए इसका अस्तित्व ही मिट जावे और मेरे मार्ग का काँटा दूर हो जावे तथा मेरे प्रति कोई सन्देह भी न करे। इसके लिए मुझे, क्या उपाय करना चाहिए ? यदि शस्त्र प्रयोग करती हूँ तो ऐसा करने मे, भेद खुलने आदि का भय है। यदि विप प्रयोग करना चाहूँ, तो ऐसा करने में भी वहुत सी कठिनाइयां है। घर में दास दासी आदि भी रहते हैं, और सेठ भी रहते हैं। इन सव के रहते, मै ऐसा कर भी नही सकती। इसलिए मुझे, कौन सा उपाय करना चाहिए।

मूलां, इसी प्रकार विचारती रहती; और चन्दनवाला के साथ पहले से भी अधिक कठोर व्यवहार किया करती, लेकिन धारिणी की शिक्षा को ध्यान मे रख कर चन्दनवाला, सव कुछ सह लेती। मूलां के कठोर व्यवहार के विरुद्ध, वह चूँ भी न करती; किन्तु नम्रता पूर्वक अपना अपराध मान कर, मूलां से क्षमा मांगती; तथा जिस काम में मूलां खरावी वताती, उस काम को फिर कर डालती इस प्रकार कुछ दिनो तक चलता रहा। एक दिन सेठ, तीन चार दिन के लिये किसी दूसरे गांव को चला गया। मूलां ने, सेठ की इस अनुपस्थिति से लाभ उठा कर, स्वयं के लिये माने गये चन्दनवाला रूप विप वृक्ष को उखाड़ने का निश्चय किया।

जिस दिन सेठ किसी दूसरे गांव को गया, उसी दिन मूलां ने अपने यहां के नौकर चाकर आदि को भी इधर उधर भेज दिया। उसने किसी दासी से तो यह कहा, कि तू छुट्टी चाहती थी, इसलिए अब छुट्टी पर चली जा। अभी सेठ नहीं है, इस कारण घर में काम कम है। इस तरह, किसी दासी को छुट्टी पर भेज दिया। किसी दासी को, नाराज होकर घर से निकाल दिया; और किसी को लम्बी दूरी पर, काम के लिए भेज दिया; इसी तरह, नौकरों को भी इधर उधर भेज दिया। घर में, केवल चन्दना और मूलां ये ही दो रह गई। मूलां ने सोचा, कि घर में तो और कोई नहीं है, लेकिन घर का द्वार खुला रहने पर कोई आजावेगा, जिससे कार्य में बाधा पड़ेगी। कोई और न आजावे, इस उद्देश्य से मूलां ने, घर का द्वार भी बन्द कर दिया, और फिर इस विचार से प्रसन्न हुई, कि आज मैं यह सौत का कांटा निकाल सकूंगी!

किंवाड़ बन्द करके मूलां, चन्दनबाला के पास आई। मूलां ने, अपने हाथ से चन्दनबाला के हाथ पकड़ लिये, और क्रोध करके उससे कहने लगी दुष्टा, तू बड़ी ठगिन है! तूने मेरी सौत बन कर, मेरे पति को ठग लिया है! तू न मालूम किस जाति कुल की है, फिर भी मेरे घर की मालकिनी बनी है! बता किसकी लड़की है, किस जाति की है, यहाँ क्यों रहती है, और तेरा वास्तविक नाम क्या है?

चन्दनबाला के लिए. यह स्थिति कुछ नई न थी। रथी के यहां वह, इसी तरह की स्थिति अनुभव कर चुकी थी। इस लिए उसको न तो मूलॉ के व्यवहार से ही आश्चर्य हुआ, न उसके प्रश्नों से ही। वह उसी प्रकार प्रसन्न रही। मूलॉ के प्रश्नों के उत्तर में, उसने स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ कहा—माता, आज आप अपनी पुत्री से ये कैसे प्रश्न कर रही है ? पुत्री की जाति क्या दूसरी हो सकती है ? जो आपकी जाति है, वही मेरी जाति है, और पिता ने जो चन्दना नाम दिया है, वही मेरा नाम है। आपको, मेरे विपय में व्यर्थ ही शंका हो रही है। अपनी पुत्री के विपय में, इस प्रकार की शंका तो न होनी चाहिए।

चन्दनबाला का यह उत्तर सुन कर, मूलाँ और कड़क उठी वह कहने लगी— बड़ी पुत्री बनने चली है ! मैंने, सब कुछ देखा है ! पापिनी स्त्रियां पाप भी करती हैं, और जिस पुरुप के सहयोग से पाप करती हैं, उसी को पिता, भ्राता आदि भी कहती जाती हैं। इसी प्रकार पापी पुरुप भी ऊपर से धर्मात्मा बने रहते हैं, पुत्री बहन आदि कहते जाते हैं, और जिसे पुत्री बहन आदि कहते हैं, उसी के साथ दुराचार भी करते जाते है। यही बात तेरे लिए भी है। पिता माता भी कहती जाती है, और मुंह पर हाथ भी फिरवाती जाती है। बता, पांव धुलवाते समय सेठ ने तेरे मुंह पर हाथ फिराया था, या नहीं ? और फिराया था, तो क्यों ?'

चन्दनबाला—माता, पिताजी ने मेरे मुंह पर हाथ तो नहीं फिराया था ! मैं पैर धोती थी, इस कारण मेरा शरीर हिलता था, और मेरे मुंह पर केश हिलग आये थे। मेरे को कष्ट होता होगा, इस विचार से पिता ने, करुणा पूर्वक मेरे मुंह पर से वे हिलगते हुए बाल अवश्य हटाये थे। पिता का यह कार्य, अनुचित तो नहीं था। सन्तान यदि कष्ट में हो, तो उसे कष्ट मुक्त करना पिता का कर्त्तव्य ही है। आप, इस जरासी बात पर से ही सन्देह कर रही हैं ? आप, कोई सन्देह मत रखिये, और यदि आप चाहें, तो विश्वास के लिए मेरी परीक्षा करके देख लीजिये, कि मैं आपकी सच्ची पुत्री हूँ, या नहीं ! मैं आपकी सच्ची पुत्री हूँ, इस लिए आप मेरी जिस तरह की परीक्षा लेंगी, मैं उसी तरह परीक्षा देकर आपको विश्वास करादूंगी।

यद्यपि चन्दन बाला का कथन बिलकुल सत्य था, लेकिन मूलॉ पर, उसका यथेष्ट प्रभाव नहीं पड़ा। उसके हृदय में, चन्दन बाला के प्रति जो सन्देह था, उसके कारण, तथा क्रोध के कारण, वह, अपने विचार से प्रतिकूल बात की ओर ध्यान ही नहीं देती थी। चन्दन बाला का उत्तर सुनकर, वह चन्दनवाला से कहने लगी—हॉ, पिता जैसे पुत्री के केश समेटता है, उसी तरह पति ने भी तेरे केश समेटे हैं ! बड़ी पुत्री बनी है ! कुल्टा को, शरम भी नहीं आती ! दूसरे पुरुष से अपने केश संवरवाना,

अनुचित सम्बन्ध रखना, और ऊपर से कहना कि पिता की तरह समेटे थे; भले मेरी परीक्षा ले लो ! अच्छा, तू परीक्षा देती है, तो मै भी तेरी परीक्षा लेती हूँ ! देखती हूँ, कि तू किस प्रकार परीक्षा देती है !

यह कह कर मूलाँ, लपक कर कैंची ले आई। हाथ में कैंची लिये हुए मूलाँ, चन्दन वाला से कहने लगी, कि—अच्छा वैठ ! तेरे जिन केशों को मेरे पति का हाथ लगा है, तेरे जिन केशो ने मेरे पति को लुभाया है, सब से पहले, मैं तेरे उन्ही केशो को दण्ड दूंगी ! तेरे सिर पर, केश रहने ही न दूंगी !

मूलाँ की आज्ञा मानकर चन्दन वाला, प्रसन्नता-पूर्वक उसके सामने वैठ गई। उसने मूलाँ से कहा—माता, आप जिस तरह भी चाहे, मेरी परीक्षा ले सकती हैं ! चन्दन वाला का कथन सुनकर, मूलाँ को विचार हुआ, कि मेरा अनुमान था, कि केश काटने की वात सुनकर इसको दुःख होगा, लेकिन यह तो वड़ी ढीठ है ! इस तरह विचारती हुई, वह, चन्दन वाला के लम्बे, घुंघराले, और कोमल केशो को कैंची से काटने लगी।

स्त्रियों को, केश वहुत प्रिय होते हैं वे, केशों को सौन्दर्य का एक कारण मानती हैं। जिसके केश, जितने अधिक लम्बे, सुन्दर और कोमल होते हैं, उस स्त्री की उतनी ही सुन्दरता मानी जाती है ! केशो का, 'कुन्तल' नाम भी है, इसलिए जिसके

अच्छे केश होते हैं, उसे 'सुकुन्तला' (अच्छे केशवाली) भी कहा जाता है। स्त्रियां, अपने केशो को बड़े प्रेम से संवारती हैं। यदि उनके केश सॅवारने के कार्य मे किसी प्रकार की बाधा आ पड़ती है, तो उन्हे बहुत बुरा लगता है। वे अपने केशों का अपमान, नही सह सकतीं। कौरवों से सन्धि करने के लिए जाते हुए कृष्ण से, द्रोपदी ने दूसरी अनेक बातें कहते हुए यह भी कहा था, कि—दुष्ट दुःशासन ने मेरे इन केशों का अपमान किया था, इस बात को आप, सन्धि करते समय भूल मत जाना। इस तरह स्त्रियों के लिए, केशों का अपमान असह्य होता है, परन्तु चन्दन बाला, अपने सुन्दर केशो के काटने के समय भी, प्रसन्न रही। वह सोचती थी, कि माता को इन केशो के काटने से प्रसन्नता है, तो मैं दुःख क्यों करूँ! जिस बात से माता को प्रसन्नता हो, उसी में मुझे भी प्रसन्नता माननी चाहिए। माता मुझ पर रुष्ट है, फिर भी करुणालु हैं, इसी से केवल केश काट कर ही मेरी परीक्षा ले रही हैं, अन्यथा ये, दूसरी कठिन परीक्षा भी ले सकती थीं।

मूलाॅ ने, कैंची से चन्दन बाला के सुन्दर केशो को काट डाला। केशों को काट कर यह, चन्दनबाला के मुँह की ओर देखती हुई कहने लगी, कि ले, अब न तेरे मुँह पर केश आवेंगे, न मेरे पति सँवारेंगे। मूलाॅ ने, चन्दन बाला की ओर इस

अनुमान से देखा था, कि केशो के कटने से इसे दुःख होगा, और यह रो रही होगी; लेकिन उसने केश कटने पर भी चन्दन-वाला को प्रसन्न ही देखा, इसलिए उसे आश्चर्य भी हुआ, और क्रोध भी। चन्दन बाला ने, मूलाँ की बात के उत्तर मे भी यही कहा,—माता आपकी मेरे पर बहुत कृपा है, इसलिए आपने केवल केश काट कर ही मेरी परीक्षा ली है, और केश भी इस तरह काटे हैं, कि मुझे जरा भी कष्ट नहीं होने दिया! केश काटने से न तो मुझे किसी प्रकार का कष्ट हुआ, न मेरी कोई हानि हुई, फिर भी आपका सन्देह मिट गया, इससे ज्यादा प्रसन्नता की बात और क्या होगी?

चन्दनवाला का यह कथन सुनकर, मूलाँ कहने लगी, कि—वास्तव में केश कटने से तेरी क्या हानि हुई! केश तो फिर भी हो जायेंगे; और तुझ ऐसी कुल्टा के सिर पर केश हो, या न हों, वरावर ही है। केश कटने से, किसी भली स्त्री को दुःख हो सकता है, तुझको दुःख क्यों होगा! लेकिन वाल काटने मात्र से ही, मुझे सन्तोप न होगा। तू यह न समझ, कि वाल कटने से मेरी परीक्षा हो गई। मैं तेरे हाथों में हथकड़ी, और तेरे पावो मे वेड़ी डालूँगी। उसके वाद और क्या करूँगी, यह फिर बताऊँगी।

मूलाँ की, हथकड़ी-वेड़ी डालने की वात सुनकर भी, चन्दन-वाला नहीं घबराई। उसने उत्तर में कहा—माता, आपको जिस

तरह भी प्रसन्नता हो, आप वैसा ही कीजिये। जिसमें आपको प्रसन्नता है, उसीमें मुझे भी प्रसन्नता है।

'हाँ, तुझे तो प्रसन्नता होगी ही !' कहती हुई मूलाँ, जाकर, हथकड़ी-बेड़ी डालने के लिए जंजीर, तथा ताले ले आई ! उसने, जंजीर से चन्दनबाला के दोनों हाथ और दोनों पाँव बाँध कर, जंजीर में ताले लगा दिये। यह करके, मूलाँ बोली कि—अब तेरे शरीर पर ये कपड़े किस काम के ! यह कह कर मूलाँ ने, चन्दनबाला के शरीर से कपड़े खींच लिये, और उसको एक पुराने मैले कपड़े की काछ लगा दी। चन्दनबाला उस समय भी प्रसन्न ही रही, और सोचती रही, कि माता की मुझ पर पूर्ण कृपा है, इसीसे इन्होंने हाथ-पाँव काटने के बदले, उनमे हथकड़ी-बेड़ी ही डाली है; तथा बिलकुल नग्न न करके, काछ लगा दी है !

हथकड़ी-बेड़ी डालकर, और काछ लगा कर मूलाँ ने सोचा, कि अब इसको यहाँ बाहर रखना ठीक नहीं है। किवाड़, बन्द तो कब तक रखूँगी, और खुला रहने पर आने-जाने वाले लोग, इसको इस दशा में देख कर, मेरी निन्दा तथा इसकी सहायता करने लगेंगे। इसलिए इसको भोंयरे (तलघर, या भूमिगृह) में डाल देना ठीक है। पुराने बड़े मकानो मे प्रायः भोयरे रहा ही करते थे। आज भी, पुराने मकानों में भोयरे देखने में आते हैं। धनावा सेठ के घर मे भी, एक बड़ा भोयरा था। वह भोंयरा,

वहुत दिनो से साफ नहीं हुआ था; और भोयरों में प्रायः अंधेरा तो रहा ही करता है। मूलाँ, चन्दनवाला को घसीटती हुई उसी भोयरे के पास ले गई। फिर भोयरे का किवाड़ खोलकर, उसने चन्दनवाला को भोयरे में डाल दिया, और फिर किवाड़ वन्द कर दिये।

चन्दनवाला को भोयरे मे डालकर मूलाँ, इस विचार से प्रसन्न हुई. कि आज मैं मेरी सौत वनने, मेरा सुख-सुहाग छीनने, और इस घर की मालकिन वनने की इच्छा रखने वाली को, पूरी तरह दण्ड दे सकी हूँ। अव यह, इसी भोयरे मे पड़ी-पड़ी मर जावेगी; और इस प्रकार, मेरा मार्ग साफ हो जावेगा! इस तरह के विचार से प्रसन्न होती हुई मूलाँ को, सहसा यह ध्यान आया, कि मैंने इसको भोयरे में तो डाल दिया है, लेकिन मेरे यहाँ आने वाले लोग. जव इसके विपय मे यह पूछेंगे कि वह कहाँ है? तव मैं, किस-किस को क्या-क्या उत्तर दूँगी। और घर खुला रहने पर. लोग आवें-जावेंगे ही! जिन दास-दासी को यहाँ से टालने के लिए मैंने वाहर भेज दिया है, वे भी आवेंगे ही; तथा जिन्हे इस घर से सहायता मिलती है. वे लोग भी आवेंगे। मैं, किस-किस मे क्या-क्या कहूँगी! इसलिए यही अच्छा है. कि मैं ही घर से चल दूँ। न मैं यहाँ रहूँगी, न घर खुला रहेगा, न कोई आवे-जावेगा, और न इस ओर का कोई भय ही रहेगा।

जो व्यक्ति पाप करता है, उसको भय भी रहता है ! इसके अनुसार, मूलाँ को भी भय हुआ। कोई मेरे इस कृत्य को जान न ले, इस भय से मूलाँ, घर का द्वार बन्द करके, और द्वार पर ताला लगा कर, अपने पिता के यहाँ—जो कोशाम्बी में ही रहते थे—चली गई।

अभिग्रह

अमुक प्रकार से मुझे भोजन मिलेगा, अमुक चीज मेरे देखने में आवेगी, अमुक चीज मुझे प्राप्त होगी, अमुक कार्य हो जायगा, अथवा अमुक के हाथ से मुझे भोजन मिलेगा, तभी मैं भोजन लेऊँगा; या ऐसा न हुआ तो इतने दिन तक, अथवा कभी भी भोजन न करूंगा, या अमुक काम न करूंगा, आदि रीति से की गई गुप्त प्रतिज्ञा का नाम अभिग्रह है। जो प्रतिज्ञा गुप्त की जाती है, अपने गुरु आदि मान्य पुरुषों, या व्यक्ति विशेष के सिवा और किसी को जिस प्रतिज्ञा की खबर नहीं होने दी जाती, और जिस गुप्त प्रतिज्ञा के पूरी होने पर ही भोजन या और कोई कार्य किया जाता है; पूरी न होने पर सदा के लिए या कुछ समय के लिए भोजन, या प्रतिज्ञा का आधार रखने वाला कार्य नहीं किया जाता, उस प्रतिज्ञा का नाम अभिग्रह है। पहले के महात्मा लोग, अनेक प्रकार के अभिग्रह किया

करते थे, और आज भी कई महात्मा अभिग्रह किया करते हैं। यह बात दूसरी है, कि ज़माने की खराबी से आज कल, अनुचित, दूसरे पर दबाव डालने वाली, या प्रगट मे की गई प्रतिज्ञा को भी अभिग्रह कहा जाता है, लेकिन वास्तव मे उसी प्रतिज्ञा को अभिग्रह कहा जा सकता है, जो प्रकट न की जावे, जिससे किसी पर किसी तरह का दबाव न पड़े, और जो अनुचित भी न हो।

जैन-शास्त्रो में तो अभिग्रह के अनेक प्रमाण मिलते ही हैं, परन्तु बौद्ध-साहित्य में भी अभिग्रह का किया जाना पाया जाता है। जैसे एक बौद्ध ग्रन्थ मे, बुद्ध के अभिग्रह की बात आई है। उसमें कहा गया है, कि बुद्ध को आत्मज्ञान हुआ, बुद्ध ने आत्मज्ञान होने की बात, अपने शिष्य अनाथपिण्ड से प्रकट की। अनाथपिण्ड ने बुद्ध से प्रार्थना की, कि आपको जो आत्मज्ञान हुआ है, वह आप संसार के लोगो को सुनाइये, तो संसार का बहुत कल्याण हो। बुद्ध ने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है, लेकिन संसार के लोग इस ज्ञान के पात्र है या नही, इस बात को जाने बिना, मै यह उच्च ज्ञान किसी को नहीं सुना सकता। संसार के लोग इस ज्ञान को सुनने के अधिकारी तभी माने जा सकते है, जब उनमे त्याग की भावना विद्यमान हो, और इसकी परीक्षा के लिए, कोई अपना सर्वस्व दान कर सके। यदि एक भी व्यक्ति सर्वस्व दान देने वाला निकल आया, तब तो यह समझ लूंगा, कि संसार में त्याग भी है, और

दान देने की भावना भी है, अतः उस दशा में मैं प्राप्त अध्यात्म ज्ञान संसार के लोगों को अवश्य सुनाऊँगा, अन्यथा यह ज्ञान स्वयं में ही रहने देकर मर जाना तो अच्छा है, लेकिन अपात्र संसार को सुनाना अच्छा नहीं है।

बुद्ध का कथन सुन कर, अनाथपिण्ड ने उत्तर दिया, कि भगवन्, संसार मे सर्वस्व दान देने वाले लोगो की क्या कमी हो सकती है! आपके लिए अपना सर्वस्व दान देने वाले लोग बहुत निकलेंगे। यदि आप मुझे आज्ञा दें, तो मै अभी जाकर सर्वस्व दान ले आऊँ! बुद्ध ने कहा, कि तू तो अनेक की वात कहता है, परन्तु यदि एक भी व्यक्ति ऐसा निकल आवे, तो काम होजावे। तू इस विपय मे प्रयत्न करना चाहता है, तो कर, लेकिन मैं सर्वस्वदान क्यों चाहता हूँ, यह वात किसी पर प्रकट मत होने देना।

अनाथपिण्ड, पात्र लेकर कौशम्बी मे आया। सूर्योदय होने का समय था। नगर के कुछ लोग बिस्तर पर ही पड़े हुए थे, कुछ लोग उठ रहे थे, और कुछ लोग उठ चुके थे। उसी समय अनाथपिण्ड ने आवाज लगाई, कि बुद्ध, सर्वस्वदान चाहते हैं, अतः यदि कोई सर्वस्वदान देने वाला दाता हो, तो वह मुझे दे। अनाथपिंड, इसी प्रकार आवाज लगाता हुआ, चलता जाता था। लोगो ने अनाथपिण्ड की आवाज सुनी। उस समय बुद्ध बहुत प्रसिद्ध

थे, इस कारण कौशम्बी के लोग, अनाथपिंड को भी जानते थे। अनाथपिंड की आवाज सुन कर, लोग कहने लगे, कि अनाथपिंड आज सवेरे ही सर्वस्व दान लेने के लिये आया है, अतः इसको खाली न जाने देना चाहिए। इस प्रकार विचार कर अनेक स्त्री पुरुष, वस्त्र, आभूषण, रत्न आदि लेकर दौड़े, और अनाथपिंड के पात्र में डालने लगे, लेकिन अनाथपिंड, उनमें से किसी भी वस्तु को अपने पात्र में नहीं रहने देता था। पात्र को औंधा कर देता था, जिससे सब चीज नीचे गिर जाती थी। अनाथपिड कहता था, कि मैं सर्वस्व दान चाहता हूँ, ऐसा दान नहीं चाहता। पात्र में डाली हुई चीजों को अनाथपिंड नीचे गिरा देता था, इसलिए सब लोग अपनी अपनी चीज उठा कर, निराश अपने घर लौट जाते थे।

अनाथपिण्ड, सारी कौशम्बी में इसी प्रकार फिर गया, लेकिन सर्वस्व दान देने वाला कोई न मिला! चलते-चलते वह नगर से बाहर निकल गया। अनाथपिण्ड ने सोचा, कि अब तो जंगल आ गया है! जब नगर में ही कोई सर्वस्व दान देने वाला नहीं मिला, तब जंगल मे कौन मिल सकता है? लेकिन 'बहुरत्नानिवसुन्धरा' पृथ्वी पर, अनेक रत्न है। कौन रत्न कहाँ है, इसका कुछ ठिकाना नहीं है। इसलिए सर्वस्व दान पाने की इच्छा से, जंगल में जाना भी कुछ अनुचित नहीं है। इस प्रकार

विचार कर वह, जंगल में भी यही आवाज लगाता हुआ चला, कि 'वुद्ध सर्वस्व दान चाहते हैं, कोई दाता सर्वस्व दान देने वाला हो, तो मुझे दे !'

जंगल मे एक स्त्री ने, अनाथपिण्ड की यह आवाज सुनी। उस स्त्री को, महा गरीबिनी कहा जाना ही ठीक हो सकता है। उसके न तो घर वार था, न उसके पास वस्त्र पात्र ही थे। उसके शरीर पर एक फटा पुराना वस्त्र था, जो लज्जा की रक्षा के लिये पहने हुई थी। वह एक वस्त्र ही, उसका सर्वस्व था। उसके पास, उस वस्त्र के सिवा और कुछ था ही नही !

अनाथपिण्ड की आवाज सुन कर, उस स्त्री ने सोचा, कि बुद्ध सर्वस्वदान चाहते हैं, और मेरा सर्वस्व यही एक वस्त्र है। अपने इस सर्वस्व को दान करने का, दूसरा सुयोग कव मिल सकता है ! इस मेरे सर्वस्व का दान लेने वाला, बुद्ध ऐसा सुपात्र फिर कब मिलेगा ! मुझे, इस स्वर्ण-सुयोग का लाभ अवश्य लेना चाहिए। इस प्रकार विचार कर उस स्त्री ने, अनाथपिण्ड को सम्बोधन करके कहा, कि—ओ भिक्षु, आओ, मैं तुम्हे सर्वस्व दान देती हूँ। यह कह कर वह स्त्री, जिस मार्ग से अनाथपिण्ड आ रहा था, उसी मार्ग पर स्थित एक पुराने वृक्ष के खोखले में उतर गई, और उसने अपना वह एक मात्र वस्त्र निकाल कर, हाथ में ले, अनाथपिण्ड से कहा—भिक्षु यह सर्वस्व दान लो, और

ले जाकर अपने गुरू बुद्ध को दो, उनकी इच्छा पूरी करो!

अनाथपिण्ड ने, उस स्त्री का दिया हुआ वह वस्त्र हर्ष पूर्वक अपने पात्र में ले लिया, और गद्गद् होकर उस स्त्री से कहने लगा—माता, आपकी तरह सर्वस्व दान देने वाला, संसार में कौन होगा! आपके पास यही एक वस्त्र था। आप, इसी वस्त्र से लज्जा की रक्षा करती थी, लेकिन लज्जा की रक्षा के लिए आपने अपने शरीर को वृक्ष के खोखले में छिपा कर, अपना यह एक मात्र वस्त्र भी दे दिया! अब आपके पास, कुछ भी नहीं रहा! यही आपका सर्वस्व था, और इस सर्वस्व को भी आपने दान में दे दिया। आपकी तरह का उदार दानी, दूसरा कौन होगा! मुझे बहुमूल्य रत्न, वस्त्र और आभूषण आदि देने वाले और लोग भी मिले थे, लेकिन वह आपके इस सर्वस्व दान के समान न था! वे लोग थोड़ा देकर अपने लिए बहुत रख रहे थे, सर्वस्वदान नहीं देते थे; परन्तु आपने तो सर्वस्वदान दिया है, इसलिए आपको धन्य है!

उस सर्वस्व दान देने वाली स्त्री की इस प्रकार प्रशन्सा करके, उसका गुणगान करता हुआ अनाथपिण्ड, बुद्ध के पास आया। उसने बुद्ध को यह वस्त्र देकर कहा—भगवन्, यह सर्वस्व दान लीजिये। यह कह कर उसने, कौशम्बी में सर्वस्वदान न मिलने किन्तु जंगल में मिलने आदि का आद्योपान्त वृत्तान्त कहा! बुद्ध,

उस वस्त्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वह वस्त्र मस्तक पर चढ़ा कर कहा कि—मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई है,इसलिए अब मै लोगों को अवश्य ही वह ज्ञान सुनाऊँगा, जो मुझे प्राप्त हुआ है!

बुद्ध को, सर्वस्व दान तो सरलता से ही प्राप्त हो गया था। उसकी खोज, अधिक समय तक नहीं करनी पड़ी थी। इसके सिवा, बुद्ध के इस अभिग्रह के साथ ज्ञान सुनाने न सुनाने की ही बात थी, जीवन-मरण का प्रश्न न था। यदि सर्वस्व दान न मिलता, तो बुद्ध, संसार के लोगो को वह ज्ञान न सुनाते, जो उन्हे प्राप्त हुआ था; लेकिन इस अभिग्रह के पूरा न होने पर, उनके प्राण नहीं जा सकते थे। इसलिए बुद्ध का अभिग्रह कठिन था, यह नहीं कहा जा सकता; परन्तु भगवान महावीर ने, महा कठिन अभिग्रह किया था। भगवान महावीर ने जो अभिग्रह किया था, उसके साथ प्राण रहने या न रहने का सम्बन्ध था! बुद्ध का अभिग्रह एक ही दिन मे पूरा हो गया था, तथा उसकी पूर्त्ति के लिए उनके शिष्य अनाथपिण्ड ने भ्रमण किया था, लेकिन भगवान महावीर का अभिग्रह ५ मास २५ दिन मे पूरा हुआ था; तथा उसकी पूर्त्ति के लिए भगवान् ने स्वयं ही भ्रमण किया था। उस समय, उनके कोई शिष्य न था। यदि कुछ दिन भगवान् का अभिग्रह और पूरा न होता, तो उनका शरीर रहना कठिन था। इसलिए भगवान् महावीर का अभिग्रह महान कठिन था।

भगवान् महावीर को, संयम लेकर तप करते हुए ११ वर्ष बीत चुके थे। बारहवें वर्ष मे भगवान् ने, रात के समय ध्यान में यह विचार किया, कि मैं संसार के जिन जीवों का कल्याण करना चाहता हूँ, उनमें स्त्री भी हैं, और पुरुष भी हैं। यह संसार, न तो केवल स्त्रियो से ही है, और न केवल पुरुषों से ही। दोनो ही से इसकी स्थिति है, तथा दोनो ही से इसका पतन, अथवा उत्थान है। अकेला पुरुष, न तो इस संसार को गिरा ही सकता है, न उठा ही सकता है। संसार के प्रत्येक कार्य में, दोनो की शक्ति की आवश्यकता है। ऐसी दशा में जगत् का उद्धार, मैं अकेला अपनी शक्ति से कैसे कर सकता हूँ। मेरी शक्ति, एकांगी है। बिना स्त्री की शक्ति के, मेरी शक्ति पूर्ण नही हो सकती; और जब तक पूर्ण शक्ति न हो, तब तक संसार के जीवो का उद्धार करने की कल्पना व्यर्थ है। मेरा ध्येय तभी पूर्ण हो सकता है, जव मुझे किसी सती स्त्री की सहायता प्राप्त हो। वह मुझे शक्ति प्रदान करे, तभी मैं जगदोद्धार में समर्थ हो सकता हूँ। ऐसी शक्ति प्राप्त हो, और मेरे द्वारा संसार के जीवो का कल्याण हो, तव तो यह शरीर रखना ठीक है, अन्यथा मेरा जीवन, लक्ष्य विहीन व्यक्ति के जीवन की तरह व्यर्थ होगा।

इस प्रकार विचार कर, भगवान् ने निश्चय किया, कि जो राजकन्या हो, अविवाहिता हो, सदाचारिणी हो, किसी प्रकार का

अपराध न करने पर भी जिसके पाँव में बेड़ियाँ, तथा हाथ में हथकड़ियाँ पड़ी हों, सिर मुँड़ा हुआ हो, शरीर पर केवल एक काछ लगी हो, तेला किये हुई हो, पारणे के लिए रखे हुए उर्द के बाकलों को सूप में लिए हो, न घर में हो, न घर से बाहर हो; किन्तु एक पांव डेहली के बाहर तथा दूसरा पांव डेहली के भीतर रख कर, दान देने की भावना से, दृष्टि फैला कर अतिथि की प्रतिज्ञा कर रही हो, प्रसन्न मुख हो, और आंखों में आंसू भी हों, ऐसी कन्या के हाथ से दोपहर के पश्चात् अन्न मिले, तबतो भोजन करूंगा, अन्यथा यह शरीर नष्ट चाहे हो जावे, अन्न ग्रहण न करूंगा!

भगवान ने, इस प्रकार के अभिग्रह का संकल्प किया। उनने सोचा था कि, इस तरह की कन्या के हाथ से प्राप्त अन्न, संसार का उद्धार करने के लिए मेरी शक्ति को पूर्ण बना सकता है। उस दशा में मैं, संसार का कल्याण करने मे समर्थ हो सकता हूँ, अन्यथा समर्थ नहीं हो सकता, और संसार के जीवों का उद्धार न कर सकने पर, शरीर रखना भी व्यर्थ होगा!

भगवान का यह अभिग्रह, कितना कठिन था! भगवान ने जो बातें चाही हैं, उन सबका एकही जगह मिलना कितना मुश्किल है! भगवान का अभिग्रह तब पूर्ण हो सकता है, जब एकही समय में, और एकही जगह १३ बातें मिलें! यद्यपि इन

सब बातों का एक ही जगह मिलना बहुत ही कठिन है, लेकिन भगवान् में दृढता थी, इसलिए उन्होंने ऐसा कठिन अभिग्रह लिया।

जिन दिनों मे, रथी की स्त्री ने चन्दनबाला का विक्रय करने के लिए रथी को विवश किया, चन्दन बाला बाजार में बिकी, धनावा सेठ के घर आई, और मूला द्वारा दिए गए कष्टो को सह रही थी, उन्ही दिनो में भगवान महावीर, अभिग्रह के अनुसार भिक्षा प्राप्त करने के लिए, ग्राम नगर आदि जनपद मे विचर रहे थे। भगवान को विचरते हुए पांच मास से भी अधिक दिन होगए, लेकिन अभिग्रह के अनुसार अन्न प्राप्त नहीं हुआ। तप के कारण, भगवान का शरीर क्षीण होता जा रहा था। भगवान का शरीर बहुत दुर्बल हो गया था, इससे सारे संसार मे हाहाकार मचा हुआ था, देव, मनुष्य, आदि सब चिन्ता कर रहे थे, कि क्या त्रिलोक का कल्याण करने वाले, कल्पवृक्ष के समान सुखदायी ये महापुरुष इसी तरह सूख जावेंगे। संसार के समस्त भव्य प्राणी इस बात के लिए चिन्तित थे, कि भगवान महावीर का शरीर कैसे रहे!

अभिग्रह के अनुसार अन्न की गवेषणा में विचरते हुए भगवान महावीर, कोशम्बी में पधारे। इधर कौशम्बी में मूला ने चन्दनबाला का शिर मूंड कर, उसे हथकड़ी बेड़ी पहना कर, और

काछ लगा कर भोयरे मे डाल दिया। यद्यपि मूलॉ ने जो कुछ किया था, वह दुर्भावना पूर्वक चन्दनवाला का अहित करने के लिए ही, लेकिन जव उपादान कारण अच्छा होता है, तव बुरा निमित्त भी अच्छा हो जाता है। इसी के अनुसार मूलॉ का यह कार्य भी भगवान महावीर का शरीर रखने वाला, संसार के लोगों का कल्याण करने वाला, तथा चन्दनवाला को संसार-पूज्या वनाने वाला हुआ। यदि चन्दनवाला के साथ, मूलॉ ने इस प्रकार का व्यवहार न किया होता, तो भगवान का अभिग्रह कैसे पूर्ण होता! इसलिए मूलॉ ने जो कुछ किया, वह उसकी ओर से तो बुरा समझ कर ही किया, लेकिन यह सव भी, अच्छा ही हुआ।

दान ।

स्वयं के पास किसी वस्तु का बाहुल्य होने पर, उस वस्तु में से किसी को कुछ दे देना, उसमें से थोड़ी-सी वस्तु दान कर देना, कोई विशेषता की बात नहीं है। किसी क्रोड़पति ने, यदि किसी को हज़ार दो हजार रुपये दे दिये, तो इसमें क्या विशेषता हुई! इतना देने के पश्चात् भी उसके पास जो शेष रहा है, वह उसकी आवश्यकता से बहुत ज्यादा है। हाँ, उस कृपण की अपेक्षा, जो पास में बहुत ज्यादा होते हुए भी, थोड़ा भी नहीं देता, ऐसा व्यक्ति अवश्य प्रशन्सनीय माना जावेगा, अवश्य उदार कहा जावेगा, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से देखा जावे, तो इस उदारता के लिए उसे न तो किसी प्रकार का कष्ट ही उठाना पड़ा है, न स्वयं की कोई आवश्यकता ही कम करनी पड़ी है। इसलिए ऐसा दान, विशेष प्रशन्सनीय नहीं कहा जा सकता! प्रशन्सा के योग्य तो वही दान है, जिसके पीछे कुछ कष्ट सहन करना पड़े, और

जिसके लिए अपनी किसी आवश्यकता को रोकना, या कम करना पड़े ! स्वयं के पास पहले ही थोड़ी चीज है, इतनी ही है, कि जिससे स्वयं की आवश्यकता भी सरलता से पूरी नहीं हो सकती, और उस चीज में से कमी हो जाने पर स्वयं को कष्ट उठाना पड़ेगा, इस तरह की स्थिति में भी जो दान दिया जाता है, वही दान प्रशन्सनीय है। कई लोग कहा करते हैं, कि हमारे पास ज्यादा है ही नही, ऐसी दशा मे हम किसी को दें, तो कैसे ! इसी प्रकार कष्ट के समय दान देना भूल जाते है, दान देने की ओर ध्यान ही नहीं जाता। समझा जाता है, कि जो सुखी है, जिसके पास अधिक है, वही दान देने का अधिकारी है; हम दुःखी हैं, अथवा हमारे पास कम है, इसलिए हम, दान देने के अधिकारी नहीं हैं। लेकिन वास्तव में, यह धारणा भ्रम पूर्ण है। प्रशन्सनीय दान तो वही है, जो कष्ट के समय, और थोड़ा होने पर भी दिया जावे। शास्त्र में भी कहा है।

दाणं दइद्दाणि

अर्थात-दरिद्रता मे दिया गया दान ही,विशेप महत्व रखताहै।

ईसाई मजाहब की पुस्तकों में भी ऐसी एक कथा आई है, जिसमे,गरीवी मे दिये गये दान की प्रशंसा की गई है। उसमे कहा गया है, कि एक वार कहीं दुष्काल पड़ा था। वहाँ के दुष्काल-पीड़ितों की सहायता के लिए, चंदा होने लगा। ईसा, चंदा करने

वालों का नेता था। ईसा के नेतृत्व मे चंदा हो रहा था, इस लिए चंदे में, बड़ी-बड़ी रकमें आने लगी। धनवानों ने, बहुतसा रुपया दिया। उस समय वहाँ पर, एक बुढ़िया आई। उस बुढ़िया ने, दुष्कालपीड़ित सहायक फण्ड में जमा करने के लिए, ईसा को एक पैसा दिया। बुढ़िया का दिया हुआ एक पैसा, बड़े प्रेम से लेकर, ईसा, वहाँ उपस्थित सब लोगो को सम्बोधन करके कहने लगा, कि—ऐ लखपती करोड़पती लोगो, तुमने चंदे में हजारो-लाखो रुपया दिया है, लेकिन तुम्हारे दिये हुए हजारों-लाखो रुपया, इस बुढ़िया के दिये हुए एक पैसे की समता नहीं कर सकते। तुमने हजारो-लाखो रुपया दिया, परन्तु थोड़ा देकर, अपने पास, आवश्यकता से बहुत अधिक बाकी रख लिया है। किन्तु यह बुढ़िया, केवल तीन ही पैसे रोज कमाती है, और तीन ही पैसे रोज का इसका खर्च है। तीन पैसे मे से यदि कभी कमी हो जाती है, तो जितनी कमी होती है, इसको उतनी ही भूखी रहना होता है। ऐसा होते हुए भी, इसने अपने तीन पैसो में से एक पैसा दे दिया है। इस एक पैसे की कमी के कारण, इसे भूखी रहना होगा। तुमने हजारो-लाखो रुपये दिये, फिर भी तुम्हे कोई कष्ट न उठाना होगा, परन्तु इसने यह एक पैसा भूखी रह कर दिया है, इसलिए सच्चा दान तो इसीका है।

मतलब यह, कि गरीबी और कष्ट के समय, अपनी आवश्य-

कता-पूर्त्ति में से दिये गये दान का विशेष महत्व है। संगम ने, अपने जीवन मे कभी खीर नहीं खाई थी। फिर भी मुनि के आने पर उसने अपने आगे की खीर दान कर दी। उस खीर के दान के प्रताप से ही, उसे शालिभद्र के भव में विपुल सम्पत्ति प्राप्त हुई। खीर का दान, क्या अन्य किसी ने न दिया होगा ! न मालूम कितने धनिकों के यहाँ से, खीर का दान दिया जाता रहा होगा; फिर भी धनिकों को, खीर-दान करने पर वैसी ऋद्धि क्यों नहीं मिली थी, जैसी शालिभद्र को मिली थी ! इसका कारण यह है कि संगम ने उस गरीबी के समय खीर का दान दिया था, जबकि उसने खीर कभी देखी भी नहीं थी। इसलिए गरीबी या कष्ट के समय दान देने, अथवा दान देने की भावना रखने का महत्व कम नहीं है। भगवान महावीर, ऐसी दशा में दान देने वाली को खोज में ही भ्रमण कर रहे थे। वे, जिस तरह के कष्ट में पड़ी हुई से दान चाहते हैं, साधारणतया वैसे कष्ट के समय, दान की बात का याद रहना भी कठिन है। एक राजकुमारी को, अविवाहितावस्था में इस प्रकार के कष्ट सहने की क्या आवश्यकता हो सकती थी ! विवाहिता स्त्रियो ने तो कष्ट उठाये भी हैं, परंतु राजकन्या, सुंदरी, सुकुमारी, और अविवाहिता होती हुई भी, कष्ट क्यो उठावे ! वह तो, किसी राजा या राजकुमार को अपना पति बना कर, कष्ट-मुक्त हो सकती थी ! कष्ट भी किसी अपराध से नहीं, किंतु निष्कारण

२१

ही। और कष्ट भी कैसा ! हाथो में हथकड़ी, तथा पैरों में बेड़ी पड़ी हो, सिर मुंड़ा हुआ हो, और शरीर पर केवल एक काछ के सिवा दूसरा कोई वस्त्र न हो ! इतना ही नहीं, किंतु जिसे तीन दिन से कुछ खाने पीने को न मिला हो, जो तीन दिन से बिलकुल ही भूखी हो, और चौथे दिन केवल उर्द के सूखे बाकले खाने को मिले हों, वे भी दूसरे पात्र मे नहीं, निकृष्ट माने जाने वाले सूप मे। इस तरह कष्ट मे पड़ी हुई होने पर भी, जो दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, और उस कष्ट की दशा में भी जो दान दे, उसीके हाथ का अन्न लेने की भगवान की प्रतिज्ञा थी। भगवान ने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा क्यो की, इस विषय मे निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता; फिर भी विचारने से यही अनुमान होता है, कि भगवान, ऐसे अन्न में महान् शक्ति समझते थे। क्योंकि एक तो वह अन्न कन्या के हाथ का होगा, और दूसरे गरीबी तथा कष्ट में दिया हुआ होगा।

चन्दनबाला को भोंयरे में डाल कर, मूलॉ, घर मे ताला लगा कर अपने पीहर में जा बैठी। सारे घर में, कोई भी नहीं रहा केवल चंदनबाला ही रही, जो भोंयरे में वंद थी। किसी दूसरे मनुष्य, और विशेषतः स्वभाव से ही डरपोक तथा दुर्बल हृदय मानी जाने वाली कन्या के लिए, वह समय कैसे संकट का था ! अंधकार पूर्ण, सुनसान, और जिसमें बहुत दिनों से

झाड़ू तक नहीं निकला था उस भोंयरे में, किसी स्त्री का तो कहना ही क्या है, पुरुष भी भय का मारा मर सकता था, लेकिन चंदन बाला उसमें हथकड़ी बेड़ी से जकड़ी हुई पड़ी थी ! फिरभी उसके हृदय में, न तो दुःख था, न भय। वह, उस दशा में भी प्रसन्न थी, और सोचती थी, कि माता की बड़ी कृपा है, इसी से उन्होंने मुझे ईश्वर भजन के लिए ऐसा सुयोग दिया है। मुझसे, पिताजी विश्राम लेने और ईश्वर भजन के लिए कहा ही करते थे, लेकिन इसके लिए इस प्रकार अवकाश कभी नही मिला था। आज माता ने अनायास ही मुझे विश्राम, और ईश्वर भजन के लिए अवकाश दिया है, तथा स्थान भी ऐसा दिया है, कि जहां किसी भी प्रकार का विघ्न नही हो सकता ! योगी लोग, एकांत स्थान की खोज में जंगल में जाते हैं, और वहां ईश्वर भजन करते हैं, परंतु माता ने तो, मुझे घर में ही ऐसा स्थान दिया है। माता का मुझ पर बहुत अनुग्रह है, इसीसे उन्होंने स्वयं कष्ट उठा कर, मुझे ऐसा सुयोग प्रदान किया है। वैसे तो यह स्थिति दुःखदायिनी हो सकती थी, और इस स्थिति में पड़ने से रोना आ सकता था, लेकिन धन्य है माता धारिणी को, जिन्होंने शिक्षा देकर मुझे इस योग्य बना दिया, कि जिसे संसार दुःख और बुरा समझता है, जिसके कारण खेद करता है, उसे ही मैं अच्छा समझ कर, उसमें आनंद मान रही हूँ। मुझे यह सुअवसर प्राप्त कराने में मेरी

माता रथी की स्त्री का भी बहुत हाथ है। यदि उसने, मुझे बाजार में बिकने की आज्ञा न दी होती, मैं वहीं रहती, मूला माता के यहां न आई होती, तो ईश्वर भजन का यह सुयोग कैसे प्राप्त होता ! उन माता ने, मुझ पर बड़ी कृपा की, इसीसे मुझे यह सुअवसर मिला है !

चन्दनबाला को, भोंयरे मे तीन दिन बीत गए। उसे, इस बात का पता ही न लगता था, कि कब दिन निकला, और कब रात हुई ! उसके लिए तो, सदा अमावस्या का अंधकार ही था। इन तीन दिनों में, उसे न तो कुछ खाने को मिला था, न पीने को कुछ मिला था। खाना पीना तो दूसरी बात है, शुद्ध और स्वतंत्र पवन का श्वास भी नहीं मिला था। इस तरह के दूषित पवन में तीन दिन तक जीवित रहना भी कठिन होता है, लेकिन, चंदनबाला के हाथ से आगे महान् कार्य होना था, और उसका आयुष्य-बल प्रबल था, इससे उसके जीवन की क्षति नहीं हुई।

चौथे दिन दोपहर के लगभग, धनावा सेठ प्रवास से घर आया। उसने देखा कि, घर का द्वार बंद है, और ताला जड़ा हुआ है। द्वार पर, न तो कोई नौकर है, न दासी है। यह देख कर, सेठ दंग रह गया। वह, साश्चर्य विचारने लगा, कि आज तक कभी भी मेरे घर का द्वार बंद नहीं हुआ था, आज बंद होने का क्या कारण है ! घर के सब लोग, कहां चले गए ! घर पर

कमसे कम एक आदमी तो होना ही चाहिए था ! कहीं मेरी पत्नी अपने पिता के यहाँ चली गई होगी, और नौकर चाकर भी इधर उधर चले गए होंगे, लेकिन पुत्री चंदना कहां गई !

सेठ ने, अपने पड़ोसियों से पूछा, कि मेरे घर पर ताला क्यों लगा है, और घर के सब लोग कहाँ गये हैं ? पड़ोसियों ने उत्तर दिया, कि आपके घर पर तीन दिन से ताला लगा है। जिन लोगों को आपके यहाँ से दैनिकवृत्ति मिलती थी, वे लोग भी, आज तीन दिनसे निराश होकर लौट जाते हैं। नौकर-चाकर भी, ताला देखकर वापस चले जाते हैं, लेकिन हम यह नहीं जानते, कि ताला क्यों लगा है, और सेठानीजी कहाँ गई हैं ! सेठ ने फिर प्रश्न किया, कि—वह तो कभी अपने पिता के यहाँ गई होगी, लेकिन पुत्री चंदना कहाँ गई होगी ? सेठ के इस प्रश्न के उत्तर में, पड़ोसियों ने कहा, कि—हमने तीन दिन से उसे भी नही देखा।

सेठ, अपने पड़ोसियों से इस तरह बातें कर रहा था, इतने ही में वहाँ सेठ के घर का एक नौकर आ गया। सेठ ने, उससे घर मे ताला लगने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया, कि मुझे अधिक तो कुछ मालूम नहीं है, लेकिन आपके जाने के बाद सेठानी ने, हम सबको इधर-उधर भेज दिया था; घर में केवल सेठानी और चंदनबाला ये दो ही रह गई थीं। हम सब के जाने

के बाद क्या हुआ, और वे दोनों कहाँ गईं, यह पता नहीं है।
फिर तो द्वार पर, ताला ही लगा दिखाई दिया।

यह वृत्तांत सुन कर, सेठ को चंदनबाला के जीवन की ओर से संदेह हुआ। वह मूलाँ का स्वभाव, और चंदनबाला से उसका वैमनस्य जानता था। इसलिए वह सोचने लगा, कि चंदना अवश्य ही किसी सङ्कट में पड़ गई है! सेठ ने उसी नौकर को, अपनी ससुराल में सेठानी का पता लगाने, और यदि वह वहाँ हो तो उसे बुला कर लाने, अथवा उसके पास से घर में लगे हुये ताले की चाबी लाने के लिए भेजा। नौकर, सेठ की सुसराल गया। सेठानी को वहां देख कर, उसने उससे कहा, कि सेठ आये हैं, इसलिए या तो आप चलिये, अथवा घर में लगे हुए ताले की चाबी दीजिये। सेठ का आना सुनकर, सेठानी को कुछ धसका तो हुआ, परंतु इस विचार से उसे साहस रहा, कि वह दुष्टा, भोंयरे में तीन दिन से भूखी प्यासी पड़ी है, इसलिये अवश्य ही मर गई होगी, और कदाचित न भी मरी होगी, तब भी सेठ को उसका पता नहीं लग सकता। अभी एक दो रोज तो, मैं घर पर जाऊंगी ही नहीं, फिर जब जाऊंगी, तथा सेठ उसके विषय में पूछेंगे, तब कह दूंगी, कि वह तो किसी अज्ञात पुरुप के साथ निकल गई, और घर में से अमुक अमुक माल भी लेगई। इस तरह, उसी पर अपराध रख दूंगी!

सेठानी ने, उस नौकर को, घर के ताले की चावी देदी। नौकर ने, चावी लाकर सेठ को देदी। सेठ घर का ताला खोल कर भीतर गया, लेकिन उसे घर में चंदनवाला न दिख पड़ी। चंदनवाला को न देख कर सेठ, जोर-जोर से उसका नाम लेकर उसे पुकारने लगा! भोयरे के किवाड़ो की संधि मे होकर, सेठ, का यह शब्द, चंदना के कानों मे पड़ा! अपना नाम सुन कर, और सेठ का शब्द पहचान कर चंदनवाला सोचने लगी, कि पिताजी मुझे पुकार रहे हैं। उनका करुणापूर्वक शब्द बता रहा है, कि वे मेरे लिए कष्ट पा रहे है। इस प्रकार सोचती हुई, उसने वहीं से उत्तर दिया—पिताजी, आप दुःख मत करिये, मै यहां आनंद में हूँ। चंदनवाला का अस्पष्ट उत्तर, सेठ ने सुना। वह शब्द के सहारे भोंयरे की ओर चला। सेठ चंदना को पुकारता जाता था, और चंदनवाला उसे उत्तर देती जाती थी; इस कारण सेठ जैसे २ भोयरे के समीप होता जाता था, चंदनवाला के शब्द की अस्पष्टता भी कम होती जाती थी। भोयरे के द्वार के समीप पहुँचने पर सेठ को विश्वास हो गया कि चंदना इसी मे है। उस दुष्टा ने, चंदनाको इस भोयरे मे डाल रखा है।

सेठ ने, भोंयरे के किंवाड़ खोल कर चंदनवाला को आवाज दी। इस वार उसे, चंदनवाला का उत्तर स्पष्ट सुनाई पड़ा। सेठ, उस अंधेरे भोंयरे में उतरा। वह धीरे-धीरे टटोलता हुआ चंदनवाला

के पास पहुँच गया। पास पहुँचने पर उसे मालूम हुआ, कि चंदनबाला के हाथ-पांव, जंजीर की हथकड़ी-बेड़ी से जकड़े हुए हैं। चंदनबाला को इस दशा में पड़ी हुई जान कर, सेठ को बहुत दुःख हुआ। उसने साहस करके चंदनबाला को उठाया, और जैसे तैसे भोंयरे से बाहर लाया। बाहर लाकर उसने जैसे ही चंदनबाला का मुंडित मस्तक, उसके शरीर पर लगी हुई काछ और हाथ-पांव में पड़ी हुई हथकड़ी बेड़ी को देखा, वैसे ही उसका साहस छूट गया। वह, ज़ोर २ से रो पड़ा, और कहने लगा, कि—हाय, उस दुष्टा ने, तुझ सती की ऐसी दुर्दशा की। अपनी ओर से तो, उसने तेरे को मार डालने, तेरी घात करने में किसी प्रकार की कमी नहीं की थी। अपनी समझ से तो उसने, तुझ को मार ही डाला था। यह तो मेरा भाग्य अच्छा था, इस से मैं, तुझको जीवित देख सका।

इस तरह कह-कह कर सेठ, विलाप करने लगा। चंदनबाला, सेठ को समझाने और धैर्य देने लगी। परन्तु उस समय उसकी सब बातें, सेठ को दुःख रूपी गर्म तवे पर पड़ी हुई जल की बूँद के समान, व्यर्थ जाती थी। सेठ का दुःख किसी तरह कम न होता था। चंदनबाला ने सोचा, कि इस तरह पिता का रुदन बंद करना कठिन है। इस समय इन्हें कोई काम बताना चाहिए, तभी इनका दुःख-प्रवाह रुक सकता है। इस तरह सोच कर,

चंदनवाला ने सेठ से कहा—पिताजी, आपतो रोने मे पड़े हैं, और मुझे असह्य भूख लग रही है। जिस दिन से आप गए थे, मैं उसी दिन से भूखी हूँ। इसलिए आप रोना बंद करके, मुझे कुछ खाने को दीजिए। आप मुझे भोयरे मे मे निकाल कर ला रहे थे, उस समय, मैंने यह प्रतिज्ञा की है, कि पारणा करने योग्य जो भी वस्तु सबसे पहले आपके हाथ में आवेगी, मैं, वही चीज पारणा करने के लिए लूंगी. दूसरी नई तयार की हुई, या लाई हुई चीज न लूंगी।

चंदनवाला का कथन सुन कर, सेठ, यह विचार कर रोना भूल गया, कि यह सती आज तीन दिन से भूखी है। वह उठ कर, रसोई गृह मे से कोई खाद्य सामग्री लाने के लिए गया, लेकिन उसने देखा, कि रसोई घर पर भी सेठानी का ताला पड़ा हुआ है। वह, विवश होकर इधर उधर देखने लगा। उस समय वहाँ पर उसे दूसरी ऐसी कोई चीज दिखाई नहीं दी, जिससे पारणा किया जा सके; केवल एक पात्र मे सूखे हुए उर्द के बाकले दिखाई दिए, जो तीन चार दिन पहले सेठ के घोड़े के लिए उबाले गए थे, और पात्र में बचे हुए रह गएथे! सेठ ने सोचा कि प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए, मुंह मे डाल कर पारणा करने के काम तो ये बाकले आ सकते हैं, लेकिन इन्हें रखूं किस पात्र मे? इस प्रकार सोचता हुआ वह, इधर उधर कोई पात्र देखने लगा।

सेठानी की कृपा से, बाहर कोई पात्र भी न था; केवल एक सूप टँका हुआ था। सेठ उस सूप में ही उर्द के कुछ बाकले रख कर चंदनबाला के पास लेगया। उसने चंदनबाला से कहा—पुत्री, खाने योग्य कोई चीज बाहर नहीं है, केवल ये उर्द के बाकले मिले हैं, जिन्हे मैं तेरी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए, ले आया हूँ। तू तीन दिन की भूखी है। ये उर्द के बाकले खावेगी, तो हानि करेंगे। इसलिए तुम एक दाना मुँह में डाल कर, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करलो। मैं, अभी लुहार को बुला कर लाता हूँ, जो तुम्हारी हथकड़ी बेड़ी भी काटेगा, और रसोई घर आदि के ताले भी तोड़ेगा। रसोई घर के खुलते ही, मैं तुम्हारे योग्य भोजन बनाऊंगा वह भोजन करके तुम अपनी क्षुधा मिटाना।

चंदनबाला ने, प्रसन्नता पूर्वक सेठ के हाथ से वह सूप ले लिया, जिसमें सूखे हुए उर्द के बाकले रखे थे। वह यह विचार कर प्रसन्न थी, कि मुझे तीन दिन के उपवास के पश्चात् पारणा करने के लिए वह अन्न मिला है, जो सब प्रकार के अन्नों से श्रेष्ठ माना जाता है; और मिला भी है, सूप पात्र में। इस वेश में मिला हुआ यह अन्न क्या शक्ति देगा, यह नहीं कहा जा सकता। यद्यपि मैंने, आज तीन दिन मे कुछ खाया पीया नहीं है, और मुझे क्षुधा बहुत सता रही है, फिर भी क्या मैं क्षुधा से विकल होकर, अतिथि को कुछ दिये बिना ही खा लूंगी। क्या मैं

भूख के दुःख से घबरा कर, ऐसा पाप कर डालूंगी ! आज तक तो कभी भी, मैंने, अतिथि को दिए बिना भोजन नहीं किया, और आज तीन दिन के अनायास तप के पारणे के समय, इस पुण्य व्रत को भूल जाऊँगी। कष्ट के कारण, धर्म से विमुख हो जाऊँगी ! चाहे कुछ भी हो, चाहे भूख से प्राण भी निकल जावें, तब भी मैं, अतिथि को दान दिये बिना कदापि पारणा नहीं कर सकती।

इस प्रकार विचार कर, हाथ में उर्द के बाकलों का सूप लिये हुई चंदन बाला, धीरे धीरे सरकती हुई द्वार पर आई। वह, चौखट पर बैठ गई। उसका एक पांव तो चौखट के बाहर था, और दूसरा पांव चौखट के भीतर था। उसके हाथ में वह सूप था, जिस में तीन दिन पहले के उबले हुए उर्द के बाकले थे। इस तरह से बैठी हुई चंदनबाला, चारों ओर दृष्टि फैला कर किसी अतिथि को देख रही थी, तथा सोच रही थी, कि कोई अतिथि आवे, और मैं उसको दान दूँ !

जिस समय चंदनबाला, दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी समय भगवान महावीर, अभिग्रह के अनुसार अन्न की गवेषणा मे, उस ओर आ निकले। चंदनबाला ने, भगवान को देखा, और भगवान ने चंदनबाला को देखा। भगवान को देख कर, चंदनबाला को

अत्यन्त हर्ष हुआ। हर्ष के मारे, उसे रोमांच हो आया। वह अपने मन में कहने लगी, कि—मेरा सद् भाग्य है, जो तीन दिन के तप के पारणे के समय, भगवान महावीर को दान देने का सुअवसर प्राप्त होगा। भगवान महावीर को, चंदनबाला पहचानती थी। वे, चंदनबाला के नाना राजा चेड़ा की बहन महारानी त्रिशिला के पुत्र थे। भगवान महावीर भी, चंदनबाला को जानते थे। चंदनबाला को देख कर, भगवान ने विचार किया, कि मेरे अभिग्रह की और सब बातें तो बराबर हैं, लेकिन एक बात की कमी है। इसकी आंखों में, आंसू नहीं हैं। जब तक आँखों में आंसू भी न हों, तब तक मेरा अभिग्रह पूर्ण नहीं हो सकता, और अभिग्रह की सब बातें पूरी हुए बिना, मैं दान नहीं ले सकता।

अभिग्रह की बातों में अपूर्णता देख कर, भगवान महावीर, पीछे की ओर लौट चले। भगवान को लौटते देख कर, चंदनबाला को महान् दुःख हुआ। वह अपने मनमें कहने लगी, कि—हाय! मैं कैसी दुर्भागिन हूँ, जो भगवान यहां तक पधारे, फिर भी मेरे से भिक्षा न लेकर, लौटे जा रहे हैं! क्या और सब की तरह, भगवान भी मुझे छोड़ देंगे!

सांसारिक लोगों की दृष्टि से, उस समय चंदनबाला महान् कष्ट में थी; फिर भी वह उसे कष्ट मानकर दुख नहीं करती थी। उसको और किसी भी बात से ऐसा दुःख नहीं हुआ, जैसा दुःख

भगवान के लौट जाने, तथा उन्हें दान न दे पाने के कारण हुआ। और किसी भी समय उसको रोना नहीं आया, यहां तक, कि अपनी माता की जीभ खींच कर मरती देख कर भी, उसकी आंखों में आंसू नहीं आये, लेकिन भगवान महावीर सामने आ कर भी लौट गये, इस दुःख के कारण उसकी आंखों से आंसू बह चले। वह अपने दुर्भाग्य तथा दुष्कर्म को बार बार धिक्कारती थी, और भगवान को दान देने का सुयोग न मिलने के कारण आंखों से आँसू बहा रही थी।

भगवान महावीर, कुछ दूर जाकर फिर चंदनबाला की ओर लौट पड़े। उन्होंने सोचा, कि अभिग्रह की बातों में से केवल एक ही बात की कमी थी। अभिग्रह की और सभी बातें तो मिलती थी. केवल आँखो में आँसू ही नही थे। शायद है. कि मेरे लौट आने में, यह कमी भी पूरी हो गई हो। इस तरह विचार कर, भगवान, फिर चंदनबाला के सामने आये। इस बार उन्होंने देखा कि अभिग्रह पूर्ण होने के लिये जिन बातो का होना आवश्यक है, वे सभी बातें मौजूद है। भगवान को पुनः अपने सामने देखकर चंदनबाला को भी अपार आनन्द हुआ। आँखो में आँसू तो निकल ही रहे थे, साथ मे हर्ष का मिश्रण और हो गया, तथा इस प्रकार भगवान के अभिग्रह की सभी बातें मिल गई। अभिग्रह की सभी बातें मौजूद देख कर. भगवान ने.

भिक्षा के लिये चंदनवाला के आगे हाथ फैला दिये । अपने सामने भगवान को याचक रूप में हाथ फैलाए देख कर, चन्दनवाला को वर्णनातीत हर्ष हुआ। उसी हर्षावेश मे, उसने, भगवान के कर-पात्र में उर्द के बाकलों की भिक्षा दी। चंदनवाला के दिये हुए उर्द के वाकले, जैसे ही भगवान के हाथ में पड़े, वैसे ही, आकाश में देवगण दुंदुभी बजाने, और चंदनवाला का जय जयकार करने लगे। वे कहने लगे—धन्य है धारिणी और दधिवाहन की पुत्री चंदन वाला को, जिसने भगवान महावीर को दान दे कर, संसार के भव्य जीवों का उद्धार करने वाले महापुरुष के प्राणों की रक्षा की। इस प्रकार जय जयकार करते हुए, और दुंदुभी बजाते हुए देवगण, धनावा सेठ के यहाँ सौनैया आदि द्रव्य की वृष्टि करने लगे।

चंदनवाला द्वारा दिये गये उर्द के बाकलों का दान लेकर, भगवान महावीर ने, ५ मास २५ दिन के तप का पारणा किया। भगवान का पारणा होने से, संसार के सभी भव्य जीवो को आनन्द हुआ। उसी समय, अनेक देवताओ सहित इन्द्र चंदनवाला की सेवा में उपस्थित हुए। इन्द्र की शक्ति से, चंदनवाला के हाथ-पाँव की हथकड़ी-बेड़ी, दिव्य आभूषणों मे परिणत हो गई; जिस शरीर पर केवल काछ लगी हुई थी, वह शरीर दिव्य वस्त्रों से सुशोभित होगया, और जिस मस्तक का मूलाँ ने मुण्डन

कर डाला था, वह कोमल, तथा सुन्दर केशों से परिपूर्ण हो गया।

इन्द्र और देवताओं ने दिव्य सिंहासन प्रकट करके, उस पर आदर-पूर्वक चन्दनबाला को बैठाया; तथा स्वयं उसके सामने खड़े होकर, उसकी स्तुति करने लगे। वे कहने लगे—हे सती, तुम्हारा गुणगान करने में, हम पूरी तरह समर्थ नहीं हैं। जिसको भगवान महावीर ने भी आदर दिया है, जिसके आगे स्वयं याचक बन कर हाथ फैलाये हैं, उसकी प्रशंसा हम क्या कर सकते हैं! तुमने, भगवान को दान क्या दिया है, सूखते हुए महापुरुषरूपी कल्पवृक्ष को जल सिंचन किया है। जिस महापुरुष द्वारा जगत् के सब जीवों का कल्याण होना है, तुमने, उस महापुरुष के प्राणों की रक्षा की है; इसलिए सारा संसार, तुम्हारा ऋणी है। तुमने, महारानी धारिणी की भावना को, साकार रूप दिया है। महारानी धारणी ने तुम्हें जो शिक्षा दी थी, तुमने, उस शिक्षा का पूर्णतया पालन किया है। तुमने, धर्म की रक्षा करके, दधिवाहन तथा धारिणी को धन्य बनाया है। हम देव भी, तुम्हारे कृतज्ञ हैं।

इस प्रकार चंदनबाला की स्तुति करके, इन्द्रादि सब देव, अपने-अपने स्थान को गये। चंदनबाला, दिव्य वस्त्राभूषण धारण किये, सिंहासन पर बैठी रही।

सम्मेलन

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयनं ।
क्वचिच्छाकाहारा: क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि: ॥
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो ।
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु:खं न च सुखम् ॥

अर्थात्—कभी जमीन पर भी सो रहते हैं, और कभी उत्तम पलङ्ग पर; कभी साग-पात खाकर रह जाते हैं, और कभी दाल-भात खाते हैं; कभी फटी-पुरानी गुदड़ी पहनते हैं, और कभी दिव्य-वस्त्र धारण करते हैं; फिर भी, कार्य-सिद्धि के लिए कमर कस लेने वाले पुरुष, इनमे से न तो किसी को सुख का कारण मानते हैं, न किसी को दु:ख का। वे, सुख और दु:ख दोनों ही को कुछ नहीं समझते।

मनस्वी लोग, कार्य की सिद्धि के लिए सुख-दु:ख के झगड़े में नहीं पड़ते। वे, चाहे दु:ख हो, चाहे सुख हो, अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हैं। कार्य के

आगे, वे, सुख, या दुःख को कुछ भी नहीं मानते। यदि वे, किसी को दुःख मानकर उससे घबराने लगे, और किसी को सुख मानकर प्रसन्न होने लगें, तो अपना कार्य कदापि सिद्ध नहीं कर सकते। बल्कि जिसे दुःख माना जाता है, उसके सामने वे घबराने के बदले और दृढ़ हो जाते हैं; और जिसे सुख कहा जाता है, उससे वे हर्षित होने के बदले नम्र हो जाते हैं। सुख या दुःख, उनकी स्वाभाविक प्रसन्नता में कोई अंतर नहीं ला सकता। वे प्रत्येक समय, स्वाभाविक ही प्रसन्न रहते हैं।

चंदनबाला पर, उसकी माता धारिणी ने, शान्ति-समर द्वारा देश पर लगा हुआ दाग धोने का बोझ डाला था। उसकी इच्छा थी, कि मेरी पुत्री, संसार के सामने एक नूतन आदर्श रखे, संसार के स्त्री-पुरुषों में जो दुर्भावना फैल रही है, उसे मिटावे, और ब्रह्मचारिणी रह कर संसार के लोगों का कल्याण करे। धारिणी द्वारा रखे हुए बोझ को अन्त तक पहुँचाने में, चन्दनबाला को अनेक दुःखों का सामना करना पड़ा, फिर भी चन्दनबाला घबराई नहीं, किन्तु माता द्वारा बताई गई कार्यपद्धति पर, बराबर दृढ़ रही! उसकी इस दृढ़ता ने ही, उसे इस योग्य बना दिया, कि मनुष्यों की कौन कहे, इन्द्रादि देवों को भी उसके आगे नत मस्तक होना पड़ा, और अपने पर उसका ऋण मानना पड़ा।

चन्दनबाला की स्तुति करके इन्द्रादि देव, अपने-अपने स्थान

को गये। सारे नगर में, चन्दनाबला द्वारा भगवान को दान दिये जाने, और सोनैया आदि वृष्टि का समाचार विद्युतवेग के समान फैल गया। मूलां की कोई दासी, या उसके पड़ोस मे रहने वाला कोई व्यक्ति, शीघ्रता से मूलां के पास गया। उसने मूलां से कहा कि तुम्हारे घर में सोनैया की वृष्टि हुई है! यह समाचार सुन कर, मूलां को प्रसन्नता हुई; लेकिन साथ ही इस बात की चिन्ता भी हुई, कि कोई मेरे यहां से सोनैया न उठा लेजावे। मै चन्दनबाला को हथकड़ी-बेड़ी से जकड़ कर भोयरे में डाल आई हूँ, उसका क्या हुआ होगा, आदि बातों की ओर मूलां का किंचित् भी ध्यान नहीं था, उसका ध्यान तो केवल इस बात की ओर था, कि कोई मेरे यहां से सोनैया न उठा लेजावे! सोनैया के लोभ से घिरी हुई मूलां, घर की ओर दौड़ी। उत्सुकता के कारण, उसका पॉव कही का कहीं पड़ रहा था। वह, जैसे-तैसे घर आई। उसने देखा, कि घर में सोनैया का ढेर लगा है। यह देख कर वह प्रसन्न हुई, और अपने मन में कहने लगी, कि—मेरा भाग्य प्रबल है, इसी से लोगो की नीयत ठिकाने रही, और ये सोनैये बचे रहे।

मूलां, इस प्रकार विचार कर प्रसन्न हो रही थी, इतने ही में उसने, दिव्य वस्त्रालंकार पहने हुई चन्दनबाला को सिंहासन पर बैठी देखा। चन्दनबाला को इस प्रकार बैठी देख, मूलां को

बहुत ही आश्चर्य हुआ। चन्दनबाला ने भी, मूलां को देखा। मूलां को देखते ही, वह यह कहती हुई सिंहासन से उतर पड़ी, कि ओह! माता पधारी हैं। वह शीघ्रता से मूलां के सामने गई। उसने मूलां को आदर सहित प्रणाम किया, और अपने देव प्रदत्त सुंदर केशों से मूलां के पांव पोछती हुई कहने लगी—माता, यह सब आपही के चरणों का प्रताप है। आपही की कृपा से, अपने यहाँ भगवान महावीर पधारे थे, उनको दान देने का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ, और यह सब रचना—जो आप देख रही है—हुई। आपही की कृपा से, अभी यहां इन्द्रादिदेव भी आये थे।

चंदनबाला से इस प्रकार अपनी प्रशंसा सुन कर, मूलां, अपने मन में लज्जित हो रही थी। वह सोच रही थी, कि हाय! मुझ पापिनी ने तो इसके साथ कैसा व्यवहार किया था, और यह मेरे साथ कैसा व्यवहार कर रही है! मैंने तो, अपनी ओर से इसे मार डालने का ही प्रयत्न किया था, फिर भी यह मेरा उपकार मान रही है!

लज्जा की मारी मूलाँ, चंदनबाला की सब बातें सुन कर भी, चुप थी। चंदनबाला समझ गई, कि माता इस समय अपने कृत्य से लज्जित हैं, इसलिए वह मूलाँ का हाथ पकड़ कर, उसे सिंहासन पर लेगई; और अपने साथ बैठाया। मूलाँ को साथ लेकर चंदनबाला बैठी ही थी, इतने ही मे सेठ भी आगया। उसको,

मार्ग में सब वृत्तांत मालूम हो चुका था; इसलिए वह प्रसन्न था। सेठ, आया तो प्रसन्न होता हुआ, लेकिन चंदनबाला के साथ बैठी हुई मूलाँ को देखते ही, उसे क्रोध हो आया। सेठ को देख कर मूलाँ भी इस भय से काँप उठी, कि अब ये मुझे न मालूम क्या कहेंगे, और न मालूम कैसा दण्ड देंगे! चंदनबाला ने भी, सेठ को आया हुआ देखा। सेठ का आदर करने के लिए वह, सिंहासन से नीचे उतर पड़ी, और उसके साथ ही मूलाँ भी उतर पड़ी। सेठ, मूलाँ से कहने लगा, कि हे दुष्टा, तुझे इस सती के साथ बैठते शर्म भी नहीं आई! तू इस पुत्री के साथ बैठने योग्य है? पुत्री के साथ सिंहासन पर बैठने और सोनैया समेटने के लिए तो आ गई, परंतु अब तक कहाँ गई थी! अब तक क्यों नहीं आई थी! आती भी कैसे! कौनसा मुंह दिखाने के लिए आती! तू तो निर्लज्जा है, इसी से फिर यहां आई है। यदि तुझे जरा भी शर्म होती, तो क्यों आती! तुझ पापिनी का मुंह देखने से भी, पाप लगता है। जिसने इस निर्दोष सती के प्राणों को संकट में डाल दिया, इसको मार डालने का ही उपाय किया, उस पापिनी का मुंह देखने से पाप लगना, स्वाभाविक ही है। इसलिए तू यहां से हटजा! इस सती का, स्पर्श मत कर! और जहां तेरी इच्छा हो, काला मुंह करके वहाँ चली जा!

इस प्रकार सेठ, मूलाँ पर कुपित हो उठा। उसी समय सेठ

को प्रणाम करके चंदनवाला उससे कहने लगी पिताजी, आप माता पर व्यर्थ ही क्यों रुष्ट होते हैं! माता ने, अपराध क्या किया है? इन्होंने तो और उपकार किया है, इसलिये इनको धन्यवाद देना चाहिए, लेकिन आप तो और क्रुद्ध हो रहे हैं; यह क्यों? चन्दनवाला का कथन सुनकर, सेठ साश्चर्य कहने लगा—पुत्री, तू यह क्या कह रही है। जिसने तेरे हाथ पांव में हथकड़ी बेड़ी डाल कर, तेरा सिर मूंड कर, और तुझे काछ पहना कर अन्धेरे भोयरे में डाल दिया, वह, उपकार करने वाली कैसे हो सकती है! इसने, अपनी ओर से तो तुझे मार डालने का ही प्रयत्न किया था। तेरे को मार डालने मे, इसने क्या कसर रखी थी? फिर भी तू कहती है, कि इसने उपकार किया है! तेरी यह बात, मेरी समझ मे नहीं आती।

सेठ के कथन के उत्तर मे चन्दनवाला बोली—पिताजी, आपने सुना होगा, कि आपके जाने के बाद यहाँ भगवान महावीर पधारे थे, मेरे हाथ से उन्होंने उर्द के बाकलो का दान लिया था और इस कारण इन्द्रादि देव, सोनैया-वृष्टि करके यहां उपस्थित हुए थे। मेरे शरीर पर, आप जो परिवर्तन देख रहे हैं, वह सब भगवान के पधारने, और इंद्रादि के आने से ही हुआ है। भगवान के पधारने और उन्हे दान देने के कार्य को तो आपभी उत्कृष्ट ही मानेंगे, लेकिन इस उत्कृष्ट कार्य का कारण कौन है,

इसे सोचो। भगवान, ५ मास २५ दिन से निराहार विचर रहे थे। क्या उन्हे, अन्न नहीं मिलता था ? क्या संसार में कोई दाता न था ? संसार में, भगवान ऐसे पात्र को दान देने की अभिलाषा बहुतों को होगी, फिर भी भगवान ने किसी का दिया हुआ अन्न नही लिया; इससे स्पष्ट है, कि भगवान ने कोई अभिग्रह किया था, और मेरे से उस अभिग्रह की पूर्ति जानकर ही दान लिया। भगवान का क्या अभिग्रह था, यह बात मैं तो नहीं जानती थी, परंतु इंद्रादि देवों के कथन से ज्ञात हुआ, कि भगवान ने तेरह बातों का अभिग्रह किया था। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो राजकुमारी हो, अविवाहिता हो, सदाचारिणी हो, जिसका सिर मुंडा हुआ हो, जिसके शरीर पर केवल काछ ही हो, जिसके हाथों में हथकड़ी और पांवों में बेड़ी पड़ी हों, जो तीन दिन से भूखी हो, जिसका एक पांव चौखट के बाहर तथा दूसरा पॉव चौखट के भीतर हो, जो हाथ में सूप लिए हुए हो, तथा उस सूप में उर्द के बाकले रखे हों, जो दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा में इधर-उधर देख रही हो, और जो प्रसन्न भी हो, तथा जिसकी आंखों में आंसू भी हो, ऐसी कोई कन्या के हाथ से यदि अन्न मिलेगा, तब तो मैं पारणा करूंगा। नहीं तो शरीर नष्ट चाहे हो जावे भोजन न करूंगा। पिताजी, भगवान का यह अभिग्रह, माता की कृपा से ही पूर्ण हुआ है

जिन बातों के कारण, आप माता को बुरी कह रहे हैं, और माता पर रुष्ट हो रहे हैं, उन्हीं बातों से भगवान का अभिग्रह पूर्ण हुआ है। इस प्रकार माता ने, मुझ पर ही क्या, सारे संसार पर उपकार किया है, या नहीं? इसलिए आप माता को अपशब्द कहकर, इनका अपमान मत करिये। इनका अपमान करना, मेरा और भगवान महावीर का अपमान करना है।

चंदनवाला ने सेठ को इस प्रकार समझा कर शांत किया। वह सेठ और मूलाँ को लेकर सिंहासन पर बैठी।

सारे नगर में यह बात प्रसिद्ध होगई, कि वह लड़की, जो अमुक दिन बाजार में खड़ी हुई बिक रही थी, जिसे वेश्या ले रही थी, और अंत में जो धनावा सेठ के हाथ बिकी थी, राजा दधिवाहन और रानी धारिणी की कन्या है। उसने ५ मास २५ दिन के तपस्वी भगवान महावीर को दान दिया, जिससे सोनैया आदि की वृष्टि हुई है और इन्द्रादि देवों ने भी उसकी सेवा मे उपस्थित होकर स्तुति की है। इस प्रकार की खबर सारे ही नगर में फैल गई। रथी और उसकी स्त्री ने भी, यह समाचार सुना। रथी की स्त्री का स्वभाव उसी दिन से बदल गया था, जिस दिन से चंदनवाला बिकी थी। वह चंदन-बाला को रथी के साथ बाजार में बिकने के लिए भेजने के पश्चात् उत्सुकता-पूर्वक इस बात की प्रतिक्षा कर रही थी, कि

उस लड़की को बेच कर मेरे पति, २० लाख सोनैया कब लावें। वह, झरोखे में से बार-बार मार्ग की ओर देखती थी। इतने ही में उसने देखा, कि कुछ आदमी सोनैया लादे हुए चले आ रहे हैं और उनके आगे-आगे खिन्न चित्त उसके पति आ रहे हैं। सोनैयों की आय देख कर, रथी की स्त्री को प्रसन्नता हुई। देखते ही देखते रथी सोनैया लिए सेठ के आदमियों सहित घर में आया। सेठ के आदमी, रथी के घर में सोनैया रख कर चले गये। रथी दुःखित तो पहले से ही था, पुत्री-विहीन घर देखकर वह और दुःखित होगया। वह अपना दुखः हृदय में ही न रोक सका, किंतु रुदन के रूप में उसका दुःख, फूट निकला। रथी की स्त्री, जले पर नमक छिटकने की तरह रथी से कहने लगी, कि आप रो क्यों रहे है! अपने यहां इतने सोनैया आये, इस लिए यह समय तो प्रसन्नता का है; फिर आप दुःख क्यों कर रहे हैं! रथी की स्त्री, इस प्रकार बार-बार कहती थी, लेकिन रथी न तो उसकी बातों पर ही ध्यान देता था, न उसकी ओर दृष्टि उठा कर देखता ही था। वह तो केवल यही कहता था, कि हाय पुत्री, आज तू इस घर को छोड़ कर चली गई! मेरी कुभार्या के कारण, मुझे अभागा बना गई! तू ने उस वेश्या को भी थोड़ी ही देर में पवित्र बना दिया, लेकिन मेरी दुष्टा-स्त्री, तेरा महत्व न जान सकी!

इस प्रकार रुदन करते हुए रथी के आस-पास, उसके घर के नौकर-चाकर आदि भी एकत्रित हो गये, और रथी के साथ ही वे भी चन्दनबाला की प्रशन्सा करके, उसके चली जाने का दुःख करने लगे; तथा रथी से पूछने लगे, कि उसने वेश्या को किस प्रकार सुधारा, और वह किसके हाथ किस प्रकार बिकी। रथी ने, वेश्या के आने, बन्दरों के कूदने, चंदनबाला द्वारा उसकी सहायता होने, और फिर धनावा सेठ के यहाँ जाने आदि का सब वृत्तान्त कहा। रथी द्वारा कथित वृत्तान्त सुन कर, सब लोग यह कहते हुए और दुःखी हो गये, कि वास्तव में वह सती ऐसी ही थी!

अपने पति को, तथा घर के और सब लोगो को इस प्रकार विलाप करते देख कर, रथी की स्त्री विचारने लगी, कि जिसको मैं बुरी समझती थी, उसके लिये तो ये सभी लोग इस प्रकार दुःखी हो रहे हैं! यदि वह बुरी है, तो केवल मुझे ही बुरी क्यो लगी! इन लोगो में से, किसी को भी बुरी क्यो नहीं जान पड़ी। इस प्रकार विचारते-विचारते, रथी की स्त्री के स्वभाव मे एक दम से परिवर्तन हो गया। वह, इस निर्णय पर पहुँची, कि वास्तव में वह बुरी नहीं थी, मैं ही बुरी हूँ। इस निर्णय पर पहुँचने के पश्चात्, उसे, चंदनबाला को घर से निकालने के कारण पश्चात्ताप होने लगा; और वह एक दम से रोकर रथी के पैरों

पर गिर पड़ी। वह, करुण स्वर में रथी से कहने लगी, कि मुझ पापिन को क्षमा करो! मैंने उस सती पर सन्देह करके, उसे व्यर्थ ही कलंक लगाया। अब तक मैं, उसका महत्व नहीं जान सकी थी, लेकिन अब मुझे उसका महत्व मालुम हुआ है। अब तो वह सती यहाँ से चली ही गई है, और अब उसे लौटा कर लाने का प्रयत्न व्यर्थ है, फिर भी मैं आज से यह प्रतिज्ञा करती हूँ, कि अब से उसी के बताये हुए मार्ग पर चलूंगी। वह जिस तरह काम करती थी, जैसा नम्र व्यवहार करती थी, और जिस तरह ब्रह्मचर्य का पालन करती थी, उसी तरह मैं भी करूँगी। वह सती, शरीर से तो गई है, परन्तु अपने आचरण का आदर्श छोड़ गई है। मै उसी आदर्श आचरण को अपनाऊँगी, इन बीस लाख सोनैया को हाथ भी न लगाऊँगी।

अपनी स्त्री का अनायास ऐसा परिवर्तन देख कर, रथी, और उसके घर के अन्य सब लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। रथी की स्त्री ने, वे सब बातें यथार्थ भी कर दिखाई, जो उसने कही थी। इस तरह रथी की स्त्री ने, कुछ ही दिनों में अपने कार्य-व्यवहार द्वारा, स्वयं को दूसरी वसुमति ही सिद्ध कर दिखाया।

रथी की स्त्री ने भी यह सुना, कि जिस सती को मैंने बिकवाया था, वह सती धनावा सेठ के यहाँ है, उसने भगवान महावीरको दान दिया है, इससे इंद्रादि देवो ने उसकी स्तुति तथा

सोनैया आदि की वृष्टि की है, और अब नगर के लोग उसके दर्शन करने के लिए जारहे है। यह सुन कर रथी की स्त्री ने, विनय और नम्रता-पूर्वक रथी से कहा—नाथ, सुना है कि जिस सती को मैंने कष्ट दिया था, और बाजार मे बिकवाया था, वह सती, धनावा सेठ के यहां है, तथा उसने भगवान महावीर को दान दिया है, जिससे देवताओ ने उसकी महिमा की है, और सब लोग उसका दर्शन करने जा रहे हैं। मुझे बहुत दिनो से उस सती के दर्शन करने की उत्कण्ठा है। यदि आप मुझे उसका दर्शन कराडे, तो आपकी बड़ी कृपा होगी।

अपनी पत्नी की यह प्रार्थना सुनकर, रथी को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने अपनी स्त्री से कहा, कि मै तुम्हारी इस उच्चाभिलाषा की प्रशंसा करता हूॅ, और कहताहूँ, कि चलो, बहुत दिनो के बाद आज उस सती का दर्शन करके अपने नेत्र सफल करें। यह कह कर रथी ने, रथ तयार कराया, तथा अपनी पत्नी सहित, चंदनबाला का दर्शन करने चला।

उधर वेश्या ने भी सुना, की जिस लड़की को मै वेश्या बनाने लिए खरीद रही थी, वह, महाराजा दधिवाहन तथा महारानी धारिणी की पुत्री थी, और उसने भगवान महावीर को दान दिया, इससे इन्द्रादि देव, धनावा सेठ के यहाॅ उसकी महिमा कर रहे है। चंदनबाला ने, उस वेश्या को पहले ही पवित्र बना दिया था।

चंदनबाला के उपदेश से, वह, वेश्या वृत्ति-त्याग कर पवित्र जीवन बिता रही थी; और चंदनबाला के प्रति, कृतज्ञता प्रकट करती रहती थी। धनावा सेठ के यहाँ वह सती प्रकट हुई है, यह सुन कर, उसके हर्ष का पार नहीं रहा। वह भी, चंदनबाला का दर्शन करने के लिए चली।

धनावा सेठ, और मूलाँ को साथ लिये हुई चन्दनबाला, सिंहासन पर बैठी थी। उसी समय वहाँ, अपनी पत्नी को लिये हुए रथी आगया। रथी और उसकी स्त्री को देखते ही चन्दन-बाला, सिंहासन से उतर पड़ी। चन्दनबाला के साथ ही, धनावा सेठ और मूलाँ भी सिंहासन से उतर गए। चन्दनबाला, 'माता-माता' कहती हुई रथी की स्त्री की ओर चली, और रथी की स्त्री, 'पुत्री, मुझ पापिनी को क्षमा करो' कहती हुई, चन्दनबाला की ओर चली। समीप होने पर, दोनों ही एक दूसरी के पैरों पर गिर पड़ी। चन्दनबाला तो कहती थी, कि माता, मुझ पर आपका अनन्त उपकार है! यह सब आप ही की कृपा का परिणाम है। और रथी की स्त्री कहती थी, कि—हे पुत्री, मुझ पापिनी को क्षमा करो! मैंने, आपको व्यर्थ ही कलंक लगाया, तथा बिकने के लिए विवश किया! चंदनबाला के पाँव पकड़े हुई रथी की स्त्री, बार-बार ऐसा कह रही थी। चंदनबाला ने, उसे उठा कर अपनी छाती से लगाया, और उससे कहने लगी—माता,

आप दुःख न करिये। आपने, मुझ पर बहुत उपकार किया है। मेरे को इस योग्य आपही ने बनाया, कि मुझे भगवान महावीर को दान देने का सुयोग मिला। यदि आप मुझे घर से बाहर न भेजती, मैं घर में ही रहती, तो यह सब रचना न होती। इसी प्रकार, आपका भी सुधार न होता। आज आप में जो नम्रता है, वह, मैं घर से निकली, इसी कारण है।

रथी की स्त्री को इस प्रकार समझा कर, चंदनबाला ने उसे सान्त्वना दी। फिर उसने रथी को प्रणाम किया, और उससे कहने लगी—पिताजी, मै आपकी चिरऋणी हूँ। आपही की कृपा से, मुझे भगवान महावीर का दर्शन हुआ। चंदनबाला तो रथी से इस प्रकार कह रही थी; और रथी चुप-चाप खड़ा हुआ आँखो से आँसू बहा रहा था। चंदनबाला का कथन समाप्त होने पर, वह कहने लगा—हे पुत्री, तू साक्षात् देवी है। जो दुर्वृत्ति का शमन करे, वही देवी है, और तूने अनेकों की दुर्वृत्ति मिटाई है। पहले तो तूने, मुझ पापी को ही पावन बनाया। फिर वेश्या का सुधार किया, और बिक कर इस मेरी स्त्री को पवित्र बनाया। इसे तो तू जानती ही है, कि यह पहले कैसी थी, लेकिन तेरे भेजे हुए बीस लाख सौनैया लेकर मैं जैसे ही घर गया, वैसे ही इसका स्वभाव बदल गया, और यह ऐसी बन गई, कि जैसे दूसरी

तू ही है। तेरा यह कथन, कि 'मेरे बिक जाने से माता का सुधार हो जावेगा' बिलकुल ही ठीक निकला।

रथी से, सेठ भी उसी तरह बाँह फैला कर मिला, जैसे भाई से भाई मिलता है। मूलाँ भी रथी की स्त्री से मिली। उस समय वहाँ, आनन्द ही आनन्द छा रहा था। और भी बहुत से लोग, वहाँ एकत्रित हो गये थे, तथा पूर्व वृत्तांत को जान कर चंदनबाला की प्रशंसा करते थे।

रथी सेठ आदि सब मिल रहे थे, इतने ही में, वेश्या भी आ गई। वह दूर से ही 'हे सती, मुझ दुष्टा को क्षमा करो!' कहती हुई, चंदनबाला की ओर दौड़ी, तथा समीप पहुँच कर, चंदनबाला के पाँवों पर गिर पड़ी। चंदनबाला ने, उसको भी उठाया, और उससे कहा माता, आप किसी प्रकार का दुःख मत करो। वेश्या कहने लगी, कि आप ऐसी त्रिलोक को पावन करने वाली सती को, मैं, पाप की वृद्धि के लिए वेश्या बनाना चाहती थी। बल्कि इसके लिये, आपको बलात् पकड़ कर ले जाना चाहती थी, और मेरे चर्म-लोभी भक्त, इस कार्य में मेरी सहायता करने को भी तयार हो गये थे। इतना होने पर भी, आपने मुझ पर उपकार ही किया। आप ही ने, बन्दरों से मेरी रक्षा की। आपका उपदेश पहले तो मुझे नहीं रुचा था, परंतु बंदरों से छुटकारा पाते ही, मेरा हृदय एक दम से पलट गया, और हृदय पलटने के साथ ही

व्यवहार भी पलट गया। अब मैं, ईश्वर-भजन करती हुई, पवित्र रीति से अपना जीवन बिताती हूँ। जो कामी लोग, मेरे रूप की अग्नि मे स्वयं को जलाने के लिए आया करते थे, वे अब नही आते।

चंदनवाला से, वेश्या ने अपनी सब जीवन-चर्या कही। चंदनवाला ने उसे भी सान्त्वना दी, और वहाँ उपस्थित अन्य लोगो के साथ ही, उसे भी आदर-पूर्वक बैठाया।

धनावा सेठ के यहाँ तो यह सब हो रहा था, और उधर सन्तानिक के महल में, रानी मृगावती, सन्तानिक की भर्त्सना कर रही थी। नगर मे यह प्रसिद्ध हो ही चुका था, कि धारिणी और दधिवाहन की पुत्री को धनावा सेठ ने २० लाख सौनैया मे मोल लिया था, उसके साथ मूलाँ ने ऐसा-ऐसा व्यवहार किया था, आज उसने अभिग्रह धारी भगवान महावीर को दान देकर, उनका जीवन बचाया है, इसलिये इन्द्रादि देव उसकी महिमा कर रहे हैं। होते-होते यह बात, रानी मृगावती के पास भी पहुँची। उसको भी यह मालूम हुआ, कि मेरी बहन की पुत्री इस शहर में बिकी है, उसको इस-इस प्रकार कष्ट उठाना पड़ा है, और आज उसके हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ है, इसलिए देवो ने उसकी महिमा की है। यह सुनकर मृगावती को बहुत ही दु ख हुआ। वह कहने लगी, कि यह मेरे पति के अपराध का ही परिणाम है।

मृगावती ने, उसी समय सन्तानिक को सन्देश भेजा। मृगावती का सन्देश पाकर, सन्तानिक मृगावती के महल में आया! मृगावती को क्रुद्ध देख कर, सन्तानिक डर गया। मृगावती, सोलह सतियों में से एक थी। उसके सतीत्व का तेज, उस समय प्रज्ज्वलित हो रहा था, इस कारण सन्तानिक को यह भय हुआ। उसने, मृगावती से पूछा, कि—आज तुम इस प्रकार रुष्ट क्यो हो? मृगावती कहने लगी, कि आपके लोभ के कारण कैसा-कैसा अन्याय हुआ है, और किस-किस को कैसा-कैसा कष्ट भोगना पड़ा है, इसका भी कुछ पता है? मैंने, आपको वहुत समझाया था, फिर भी आप अपना लोभ न रोक सके, और चम्पा पर शांतिपूर्वक राज्य करते हुए मेरी वहन के पति पर चढ़ दौड़े! परिणामतः मेरे वहनोई दधिवाहन को जंगल की शरण लेनी पड़ी; मेरी वहन, कहाँ तथा किस दशा मे है, इसका कुछ पता नहीं है; और मेरी वहन की, लड़की को आपका कोई रथी यहाँ ले आया, जिसने उसे वाजार में वेंचा, धनावा सेठ ने उसे खरीदा, और आज उसके हाथ से तपस्वी भगवान् महावीर का पारणा हुआ है, जिससे इन्द्रादि सव देवों ने उसकी महिमा की है। आपके लोभ के कारण, मेरी वहन की पुत्री इसी नगर में विकी, फिर भी आप को इस वात का पता नहीं है! जिस राज्य के लिए आपने ऐसा अत्याचार किया, क्या वह

राज्य, आपके साथ जायेगा ? आपको, निरपराधी राजा दधिवाहन पर चढ़ाई करने, चम्पा की प्रजा को लूटने, और मार-काट करने में लज्जा भी नहीं हुई ! दया भी नहीं आई !

मृगावती ने, राजा सन्तानिक की इस प्रकार खूब भर्त्सना की। राजा सन्तानिक के पास मृगावती की बातों का कोई उत्तर न था, इसलिए वह उसकी बातों को चुपचाप सुनता रहा, और अपने मन में पश्चात्ताप करता रहा। अन्त में उसने मृगावती से यही कहा, कि मैंने, राज्य के लोभ से चम्पा की प्रजा पर अत्याचार किया, यह मैं स्वीकार करता हूँ, लेकिन तुम्हारी बहिन* की लड़की से, मेरी कोई शत्रुता नहीं थी। वह तो, जैसी दधिवाहन की लड़की है, वैसी ही मेरी भी लड़की है। यदि उसके विषय में मुझे कुछ भी पता होता, तो मैं उसको कदापि कष्ट न पाने देता ! मुझ में, इतनी नीचता तो नहीं हो सकती ! जो हुआ सो हुआ; इस समय बीती हुई बात के विषय मे अधिक कुछ विचार न कर के, अभी तो उस सती को अपने यहाँ बुलाना चाहिए। वह सती जब यहाँ आजावेगी, तब उसकी माता का भी पता लग जायेगा, और तभी यह भी मालूम हो सकेगा, कि उसको कौन रथी लाया था, तथा किसने बेचा था; आदि। मैंने, चम्पापुरी पर चढ़ाई करके उसे लुटवाया अवश्य, लेकिन किसी की लड़की; और

* पद्मावती की सपत्नी होने के कारण।

विशेषतः मेरे सम्बन्धी राजा की पुत्री को लाकर मेरे ही नगर में बेंचने का समर्थक, मै कदापि नही हो सकता। इसलिए, सब से पहले तो उस सती को यहाँ लाने के लिए, किसी को भेजना चाहिए!

सन्तानिक के इस कथन का, मृगावती ने भी समर्थन किया। सन्तानिक ने, तत्क्षण अपने कुछ सामन्तों को बुलाया, और उनको चंदनबाला का परिचय देकर, उनसे कहा, कि तुम लोग पालकी लेकर जाओ, तथा सम्मानपूर्वक उस सती को पालकी में बैठा कर ले आओ! उससे, हम दोनों की ओर से यहाँ आने के लिए प्रार्थना करना, और जिस तरह भी अनुनय—विनय—से उसको यहाँ ला सको, उस तरह ले आना।

सन्तानिक की आज्ञा से सामन्त गण पालकी लेकर धनावा सेठ के यहाँ गये। वहाँ की रचना देख कर, उन लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। वे लोग कहने लगे, कि आज हमको बहुत अच्छा कार्य सौंपा गया। हमारा पुण्य प्रबल है, इसी से आज हमारी नियुक्ति इस कार्य पर हुई, और हमको इस सती के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

चन्दनबाला के सामने जाकर सामन्तों ने, उचित रीति से उसका अभिवादन किया। फिर वे, उससे कहने लगे, कि महाराजा सन्तानिक और महारानी मृगावती ने, हम लोगों को पालकी लेकर आपकी सेवा में भेजा है, और आप महल में पधारें, यह प्रार्थना की है।

साधारण व्यक्ति को, राजमहल का ऐसा सम्मानपूर्ण आमंत्रण, बहुत प्रलोभित कर सकता है, लेकिन चन्दनबाला के समीप, इस प्रकार का प्रलोभन क्या काम कर सकता था! उसने, सन्तानिक के सामन्तों को नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया, कि आप, मासाजी, और मासीजी से मेरा प्रणाम कहियेगा, और निवेदन करियेगा, कि मैं उस राजमहल मे आने के योग्य नहीं हूँ, जिसमें कि बैठ कर, निरपराधी लोगों को लूटने-मारने आदि पाप-कार्य का विचार किया जाता है। इसलिए मुझे, क्षमा करें। उन्होंने मुझे याद किया, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

सन्तानिक के सामन्तों ने, अनुनय-विनय-पूर्वक-चंदनबाला से राज-महल में चलने का बहुत अनुरोध किया, लेकिन चंदनबाला ने उनको इस तरह समझाया, कि जिससे वे अधिक कुछ न कह सके, और चुप-चाप वापस लौट गये। उन्होंने जाकर, सन्तानिक और मृगावती को, चंदनबाला का दिया हुआ उत्तर सुना दिया। चंदनबाला का उत्तर सुन कर, मृगावती ने सन्तानिक से कहा, कि मैं तो पहले ही जानती थी, कि वह सती इस तरह न आवेगी, फिर भी मैंने आपके कथन के विरुद्ध कुछ कहना ठीक नहीं समझा। वह सती, अपने महल पर लुभाने वाली नहीं है। इसलिए यदि उसको लाना है, तो अभिमान छोड़ कर आप भी चलिए, और मैं भी चलती हूँ। अपने जाने से, सम्भव है कि वह सती आना

स्वीकार करे। वह, इस तरह सन्देशों से आनेवाली नहीं है।

मृगावती का कथन, सन्तानिक ने स्वीकार किया। उसने कहा कि अच्छा, मैं स्वयं भी चलता हूँ, और आप भी चलिये।

राजा और रानी, धनावा सेठ के यहाँ जाने के लिए तयार हुए। राज परिवार के अन्य लोग, तथा सामन्त आदि भी, साथ जाने के लिए तयार हुए। राजा और रानी की सवारी, सामन्त उमरावों सहित, धनावा सेठ के यहाँ जाने को निकली। राजा-रानी की सवारी जाती देख कर, नगर के और भी वहुत से लोग साथ हो गये। सारे नगर में इस वात की खबर फैल गई, कि जिस सती के हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ है, वह सती, महाराजा दाधिवाहन तथा महारानी धारिणी की पुत्री है, तथा महारानी मृगावती की वहिन की लड़की है। इसलिए राजा-रानी आदि सव लोग, उस सती का दर्शन करने, एवं उसको महल में लाने के लिए जारहे हैं! यह सुन कर, नगर के और लोग भी, धनावा सेठ के यहाँ को दौड़ पड़े। थोड़ी ही देर में, धनावा सेठ के यहाँ खासी भीड़ होगई। इतने ही में, राजा और रानी की सवारी भी आगई। चदनवाला को दूर से ही देख कर मृगावती और सन्तानिक, वाहन से उतर, पैदल ही चंदनवाला के सामने चले।

चंदनवाला के समीप पहुँचते ही रानी सहित सन्तानिक, चंदनवाला के पैरों पर गिर पड़ा। संतानिक, हाथ जोड़ कर चंदन-

बाला से कहने लगा, कि हे सती, मुझ पापी को क्षमा करो ! मैंने भयंकर अपराध किये हैं। आप ऐसी सती को, कष्ट में डाला है। मैं घोर पापी हूँ। यदि आप मेरे अपराधो की ओर दृष्टिपात करें, तब तो मेरा मुंह भी नही देख सकती, लेकिन आप दैवी स्वभाव की हैं, पापियो को क्षमा करने वाली, और अपनी उदारता से उनके पापो को शमन करने वाली है; इसलिए मेरे को भी क्षमा करें, तथा महल में पधार कर, मुझे कृतार्थ करें।

सन्तानिक और मृगावती को उठा कर, चंदनबाला उनसे कहने लगी, कि—आप यह उल्टी बात क्या कर रहे है। आप मेरे लिए माता-पिता के समान पूज्य हैं, फिर भी मेरे पैरो पर गिर कर, मुझ पर भार कैसे चढ़ा रहे हैं ! आपने कैसा भी भयंकर अपराध किया हो, फिर भी, मेरे लिए तो आप लोग आदरणीय ही हैं ! अपराध के कारण, मै आपको अनादरणीय नही समझ सकती। रही महल को चलने की बात। सो मुझे, किसी स्थान से द्वेप नहीं है, और जहां माता तुल्य मौसीजी तथा पिता-तुल्य आप रहते हैं, उस स्थान से तो द्वेप हो ही कैसे सकता है ! लेकिन आप ही विचारिये, कि जिस महल में विशेपतः पाप-कार्य करने का ही विचार होता रहता है, वहाँ मैं कैसे चल सकती हूँ ! यदि यह कारण न होता, तो मैं, आपके सामंतो के साथ ही क्यों न, चली आती ? मेरे हृदय में यह भावना नही थी, कि मैं सामंतों

के साथ नहीं जाऊंगी, किंतु आप लोग आवेंगे तब जाऊंगी। मेरे लिए तो आपके भेजे हुए सामंत गण भी आपही के समान आदरणीय हैं। फिर भी मैं नहीं आई, इसका कारण यही है, कि मैं उस महल में जाने योग्य नहीं हूँ! जिस महल में सदा लूटने खसोटने, तथा निरपराधियों पर अत्याचार करने का ही विचार होता रहता है, आपही बताइये, कि मैं उस महलमें कैसे जासकती हूँ। जिस महल में, मेरी भावना और मेरे विचारों से विपरीत भावना और विचारों का आधिपत्य है, उस महल में, मेरा चलना कैसे उचित हो सकता है! आप ही बताइये, कि मेरे पिता का क्या अपराध था, जो आपने चम्पा पर चढ़ाई कर दी? थोड़ी देर के लिए मान लें, कि मेरे पिता का कोई अपराध था, तो इसके लिए पिता को दण्ड मिलना चाहिए था, या चम्पा की निरपराधिनी प्रजा को? पिता, बिना युद्ध किये ही चम्पा छोड़ कर जंगल को चले गये थे। आप को चम्पा के राज्य का लोभ था, तो आप चम्पा पर अपना आधिपत्य कर लेते; चम्पा की प्रजा को लूटने, उसकी हत्या करने, और उस पर अत्याचार करने की क्या आवश्यकता थी? यदि कहो कि चम्पा की सेना ने हमारा सामना किया था, उसने हम से युद्ध किया था, तो यह अपराध सेना का था। प्रजा ने तो कोई अपराध नहीं किया था; फिर उसको ऐसा अमानुषिक दण्ड क्यों?

चन्दनबाला की इन बातों को, सन्तानिक, नीचा सिर किये चुपचाप सुन रहा था। उसके पास, चन्दनबाला को देने के लिए, कोई उत्तर न था।

चन्दनबाला, सन्तानिक से फिर कहने लगी, कि जिस महल में बैठ कर अकारण ही चम्पापुरी पर चढ़ाई करने, चम्पा-पुरी को लूटने, प्रजा पर अत्याचार करने का विचार किया गया, और यह सब करने के पश्चात् जिस महल में बैठ कर इनके उपलक्ष्य में खुशी मनाई गई, उस महल में मैं कैसे चल सकती हूँ ! मेरे कथन का उद्देश्य यह नहीं है, कि राज-धर्म त्याग दिया जावे, लेकिन राज-धर्म, प्रजा की रक्षा के लिए है, प्रजा का विनाश करने के लिए नहीं है। राजा के लिए, राज-धर्म का पालन करना आवश्यक है। राजा द्वारा राज-धर्म का पालन होने से हीं, प्रजा की रक्षा होती है। क्या चम्पा को लूट कर, आपने राज-धर्म का पालन किया है ? क्या निरपराधी लोगों को मारना, उनकी सम्पत्ति लूटना, यह भी कोई राज-धर्म है ? आप को चम्पा के राज्य का लोभ था, तो आप चम्पा पर राज्य करते, परंतु आप की सेना ने चम्पा में अत्याचार का जो ताण्डव किया, वह किस लिए ? और आपने किस राज-धर्म की रक्षा के लिए, आपकी सेना को ऐसा करने दिया ? उसको, स्वच्छन्द क्यों होने दिया ? क्या आप जानते हैं, कि आपकी सेना द्वारा चम्पापुरी के निवा-

सियों पर कैसा अमानुषिक अत्याचार हुआ है ? क्या आपको पता है, कि आपकी सेना ने चम्पा की प्रजा के साथ कैसा पैशाचिक व्यवहार किया है ? क्या आप नहीं जानते, कि सेना के हाथ में शासन-सत्ता दे देने पर, कैसा-कैसा घोर अत्याचार होता है ? उस दशा में सेना, क्या-क्या अन्याय नहीं करती ? शासन-सत्ता मिल जाने पर, सेना प्रजा को मारती है, काटती है, उसकी धन-सम्पत्ति को लूटती फूँकती है और उसकी बहू-बेटियों का सतीत्व तक नष्ट करती है। क्या चम्पा की प्रजा पर, उस समय ऐसा ही अन्याय-अत्याचार न हुआ होगा? जब आपका एक रथी, मुझको और मेरी माता को भी, अपनी नीच भावना की पूर्त्ति के लिए महल से पकड़ कर जंगल को लेगया था, तब प्रजा की बहू-बेटियों का सतीत्व कैसे बचा होगा! मेरी माता, वीर-कन्या और वीरपत्नी थी, इससे उसने प्राण त्याग कर भी अपने सतीत्व की रक्षा की, और इस प्रकार, जो रथी मेरा भक्षक-सा बन रहा था, उसे ही मेरी माता ने मेरा रक्षक बना दिया; लेकिन यदि माता में इस प्रकार के बलिदान की शक्ति न होती, वह प्राण त्याग का साहस न करती, तो उनको—और साथ ही मुझको—आपके रथी के दुराचार का साधन होना पड़ता या नहीं! क्या ऐसा होने देना भी राजधर्म है ?

चंदनबाला के मुख से धारिणी की मृत्यु का समाचार सुन

कर, मृगावती को बहुत ही दुःख हुआ। वह, विलाप करती हुई कहने लगी—हाय! इनकी राज्यलिप्सा के कारण मेरी सती बहन को एक रथी के हाथ फँसना पड़ा, और प्राणत्याग द्वारा सतीत्व की रक्षा करनी पड़ी! मेरी बहन की ही तरह न मालूम कितनी स्त्रियों को सतीत्व की रक्षा के लिए प्राण खोने पड़े होंगे, अथवा अपना सतीत्व नष्ट करना पड़ा होगा। धिक्कार है राज्यलिप्सा को! जिसके कारण ऐसा अत्याचार होता है।

मृगावती को धैर्य बँधाने के लिए, चंदनबाला उससे कहने लगी, कि—मासीजी, माता के विषय मे आप ज़रा भी दुःख मत करिये। उन्होंने वही कार्य किया है, जो एक सती स्त्री को करना चाहिए। उन्होंने, पंडित-मरण से प्राण त्यागा है, इसलिए उनकी मृत्यु, किंचित् भी चिन्ता के योग्य नहीं है। संसार में जो जन्मा है, उसे मरना तो पड़ता ही है; लेकिन इस प्रकार का पण्डित-मरण होना, बड़े पुण्य का परिणाम है। इसलिए माता के विषय में, आप किंचित् भी दुःख मत करिये। आज आप जो रचना देख रही हैं, और भगवान महावीर को दान देने का जो कार्य मेरे हाथ से हुआ है, वह सब माता की शिक्षा का ही परिणाम है। यदि माता ने मुझे, शान्ति-समर में धैर्य रख कर दुःख में भी प्रसन्न रहने, तथा किसी पर भी क्रोध न करने की शिक्षा न दी होती, तो आज यह आनन्द कैसे होता!

मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह माता को मरना पड़ा इस विचार से नहीं कह रही हूँ, किन्तु मैं यह बता रही हूँ, कि जिस महल में चलने के लिए मुझ से कहा जा रहा है, उस महल मे राजधर्म के नाम पर किस-किस प्रकार के अन्याय अत्याचार करने का विचार किया गया है ! राजा का काम है, कि वह अपने देश तथा नगर में होने वाली समस्त नूतन प्राचीन बातों की जानकारी रखे। मासाजी को भी, इस नगर में होने वाली समस्त घटनाओं से परिचित होना चाहिए था, लेकिन इन्होंने तो राज्य का उद्देश्य ही दूसरा समझ रखा है। इन्होंने तो यह मान रखा है, कि उत्तमोत्तम भोग भोगने के लिए ही राज्य है, राज्य-प्राप्ति का इससे ज्यादा कोई उद्देश्य नहीं है। इस प्रकार के विचारों के कारण ही, मासाजी, दूसरों को लूटने-खसोटने, खजाना भरने, और विषय भोग करने में ही रहे; प्रजा की रक्षा, तथा उसको सुख-सुविधा पहुँचाने की ओर इन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। यदि ध्यान दिया भी, तो केवल इस सीमा तक, कि किसी प्रकार हमारी आय मे कमी न हो। नगर में कौन दुःखी है, किस पर किस तरह का अत्याचार होता है, और मेरे राज्य में कैसा २ अनैतिक व्यापार होता है, इस ओर ध्यान देने का कष्ट तक नहीं किया। इनकी राजधानी में ही, दास-दासी के क्रय-विक्रय का व्यापार होता है। क्या मासाजी ने, इस प्रकार के

नीच व्यापार की ओर कभी ध्यान दिया है ? और ऐसे व्यापार को रोकने की चेष्टा की है ? स्वयं मैं, इसी नगर के चौराहे पर खड़ी होकर बिकी हूँ। मुझे ये वेश्या माता ले रही थी। जब मैंने इनके यहाँ जाना अस्वीकार किया, तब इन्होंने मुझे जबरदस्ती पकड़ लेजाने का निश्चय किया था। यह तो अनायास वन्दरों ने कूद कर माता के इस निश्चय मे विघ्न डाल दिया, और अबतो ये वेश्यामाता भी पवित्र हो गई हैं, लेकिन उस समय इनकी सहायता के लिए, बहुत से नागरिक भी तयार होगये थे। फिर इन सेठ पिता ने, मुझे अपने यहां स्थान दिया, और इन रथी पिता को वीस लाख सोनैया देकर, इनकी पत्नी को सन्तुष्ट किया। इन सेठ पिता के यहां, सेठानी माता की कृपा से मैं भगवान महावीर का अभिग्रह पूरा करने योग्य बनी, और मेरे हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ। इस तरह जो कुछ हुआ वह एक तरह से मेरे लिए तो अच्छा ही हुआ। यदि यह सब न होता तो मेरे हाथ से भगवान महावीर का पारणा कैसे होता ! लेकिन मैं मासाजी से कहती हूँ, कि क्या राज-प्रासाद इसीलिए हैं, कि उनमें बैठ कर अन्याय अत्याचारों के विषय में मंत्रणा की जावे ! अथवा प्रजा की गाढ़ी कमाई का द्रव्य लूट कर, महलों में उनका अपव्यय किया जावे ! उसके द्वारा पाप बढ़ाया जावे ! मासाजी, या दूसरा कोई, जो भी इस तरह के पाप करता है। उसे उन पापों

का परिणाम भोगना ही होगा; लेकिन मुझे अपनी आत्मा तो बचाना ही चाहिए। ज्ञानियों का कथन है, कि क्षेत्र और वहां के वातावरण का प्रभाव पड़ता ही है। इसी कारण वे लोग कष्ट तो भोग लेते हैं, परन्तु जहाँ जाने से आत्मा के गुणों की घात होने का भय रहता है, वहां कदापि नहीं जाते। इसी लिए मैंने महल में जाने से इन्कार किया है। आप लोग मुझे क्षमा करिये, मैं यहां आनन्द में हूँ। यहां रहने से, मैं, भगवान महावीर और उनके गुणों के समीप हुई हूँ। यह बात, आपके उस महल में कदापि नहीं मिल सकती, जहां सदा पाप-पूर्ण कार्यों का ही विचार हुआ करता है। आपके महल में अच्छे कार्य कौनसे हुए हैं जो मै वहां चलूं!

पश्चात्ताप ।

मनुष्य, आवेशवश कोई अनुचित तथा अन्याय पूर्ण कार्य कर तो डालता है, उस कार्य के करने के समय तो उसको कार्य की बुराई के विषय में कुछ भी विचार नहीं होता, अपितु वह उस बुरे कार्य मे भी अच्छाई ही देखता है, इसी से उसे करता है; लेकिन जब किसी घटना वश, ज्ञानी के उपदेश से, अथवा स्वयं की बुद्धि से उसको वह कार्य बुरा मालूम होता है, उस समय उसके पश्चाताप की सीमा नहीं रहती। तब वह, अपने कार्य पर लज्जित होता है, स्वयं को पाप के बोझ से दबा हुआ मानता है, और यथाशक्ति उस पाप से मुक्त होने का उपाय करता है। परदेशी राजा, हत्या करने, मारने, प्रजा को लूटने, और उस पर भारी कर लगाने आदि पाप-पूर्ण कार्यों में आनन्द मानता था। उसे, इन कार्यों के करने में प्रसन्नता होती थी, लेकिन जब उसको केशीश्रमण महाराज के उपदेश से अपने कार्यों की बुराई

मालूम हुई, उनके अनौचित्य की ओर उसका ध्यान गया, तब उसको अपने कार्यों से बहुत ही घृणा हुई, और फिर उसने पाप से छुटकारा पाने के ही कार्य किये। चण्डकौशिक सॉंप, लोगों को अपने विष से मारने में ही अपने लिए प्रसन्नता की बात मानता था। उसने न मालूम कितने प्राणियों को अपने विष से भस्म कर दिया था। किंतु जब उसने भगवान् महावीर से बोध पाया, और उसको अपने कार्य की बुराई जान पड़ी, तब उसने सब से वैर त्याग कर, निश्चेष्ट हो, संथारा द्वारा प्राण त्याग दिये, तथा इस प्रकार अपने पाप का पश्चात्ताप किया। सम्राट् अशोक को भी, युद्ध बहुत प्रिय था; परन्तु कलिंग देश के युद्ध का रक्तपात और जन-संहार देख कर युद्ध जैसे पाप पूर्ण कार्यों की ओर से, उसको सदा के लिये अरुचि हो गई। फिर वह, एक धार्मिक व्यक्ति बन गया। इसी तरह के अनेकों उदाहरण ऐसे हैं, जिनसे यह सिद्ध है, कि पाप करने के समय तो पाप के कार्यों को अच्छा समझा, लेकिन फिर उनसे बहुत ही घृणा हुई, और उनके विषय में अत्यंत पश्चात्ताप हुआ !

संतानिक को, मृगावती, समय-समय पर, युद्ध आदि हिंसा-प्रधान कार्यों से बचने एवं प्रजा का पुत्रवत् पालन करने के लिए बहुत समझाया करती थी, लेकिन उस समय वह, मृगावती के कथन की उपेक्षा करने के साथ ही, धर्म का भी उपहास किया

करता था। उस समय उसको युद्ध करना अच्छा मालूम होता था, तथा वह समझता था, कि हम राजा हैं, हमारा जन्म ही लोगों पर शासन करने, दूसरे राज्यों को जीतने, सुन्दर स्त्रियों के साथ रमण करने, और अच्छे-अच्छे पदार्थ भोगने के लिए है। संसार के अच्छे-अच्छे पदार्थ, हमारे भोग के लिए ही हैं। प्रजा, हमारे लिए भोग-सामग्री जुटाने का साधन मात्र है।' इस प्रकार के विचारों के कारण वह किसी भी पाप-पूर्ण कार्य करने में संकोच नहीं करता था, अपितु उनके करने में प्रसन्नता मानता था। ऐसे विचारों की प्रेरणा से ही, उसने चम्पा पर चढ़ाई की थी। यद्यपि उस समय राजा दधिवाहन ने संतानिक को यह बताने की चेष्टा भी की, कि आपकी चढ़ाई अनुचित है, लेकिन गर्वी राजा संतानिक ने, उल्टे दधिवाहन का ही अपमान किया, तथा चम्पा को लुटवा कर, उसे तहस-नहस कर डाला। वहाँ की प्रजा का आरतनाद और करुणक्रन्दन सुन कर भी, उसका हृदय नहीं पसीजा। चम्पा के राज-परिवार से शून्य महल पर, अपना झण्डा उड़ाने मे उसे आनंद हुआ। उस समय, न तो उसको अपने कार्य का अनौचित्य ही मालूम हुआ, न जनहत्या, या सम्बन्धी आदि के विषय में ही किसी प्रकार का कुछ विचार हुआ। लेकिन चंदनबाला द्वारा भगवान महावीर का पारणा होने के पश्चात, मृगावती की फटकार और चंदनबाला के वचनों से, उसको अपने

कार्यों का अनौचित्य मालूम हुआ । इस कारण उसके हृदय में, अत्यन्त लज्जा, ग्लानि, और पश्चात्ताप हुआ ।

मस्तक नीचा किये संतानिक, चंदनबाला की बातों को सुन रहा था । पास ही खड़ी हुई मृगावती भी, आँखो से आँसू बहाती हुई चंदनबाला की बातें सुन रही थी, और अपने पति के दुष्कृत्यों का विचार करके, मन ही मन लज्जित हो रही थी । चंदनबाला का कथन समाप्त होने पर, संतानिक कहने लगा, कि—हे सती, आपने जो कुछ कहा है, वह उचित ही है । वास्तव में, मैं भयंकर अपराधी हूँ । मैंने, महान पाप किया है । मित्रद्रोह, जनहत्या आदि किसी भी पाप के करने में, मैंने संकोच नहीं किया । मैं, अवश्य ही ऐसा पापी हूँ, कि जिसका मुँह देखने से भी पाप लगता है । मेरी भावनाएँ तब तक वैसी ही थीं, जैसी कि आपने कही हैं । मै, राजाओं का जन्म, और राज्य-प्राप्ति का लाभ, उत्तमोत्तम भोग-विलास करना ही समझता था, तथा इसमें बाधा पहुँचाने वाले, नूतन भोग विलास की प्राप्ति में रुकावट डालने वाले को मार डालना, वीरता का कार्य मानता था । इस भावना के कारण, मैंने अवश्य ही बहुत से पाप किये, और इसी से आप की माता को प्राण खोने पड़े, तथा आपको इस प्रकार कष्ट भोगने पड़े हैं; लेकिन इस प्रकार की भावना होने पर भी, मै ऐसा नीच तो नही था, कि जो सेना द्वारा किसी की बहू-बेटी, और विशेषतः आपकी

माता का सतीत्व लूटने की छूट देता। मेरे हृदय में चम्पा के राज्य का लोभ अवश्य आया, मैंने अपने निकट-सम्बंधी दधिवाहन को राज्यच्युत भी अवश्य किया, और चम्पा लूटने की आज्ञा भी अवश्य दी, परंतु किसी का सतीत्व नष्ट करने, और स्त्रियो को विशेषतः राज परिवार की स्त्रियो को लूटने, उनका अपहरण करने, या उनका सतीत्व नष्ट करने की आज्ञा, मैंने कदापि नहीं दी थी। मेरी आज्ञा का किस प्रकार दुरुपयोग किया गया है, उसकी ओट में कैसा अत्याचार किया गया है, यह बात मुझे आज मालूम हुई है। फिर भी, मै इन सब बातो के लिए स्वयं को ही अपराधी मानता हूँ। इसी नगर में आप इतने समय तक कष्ट पाती रही, तथा यहां बिकी, आदि बातो के लिए भी मैं स्वयं को ही अपराधी समझता हूँ। यदि मैंने उचित रीति से सब बातोंकी ओर ध्यान दिया होता,अपने यहाँ दास-दासीके क्रय-विक्रयकी प्रथा न रहने दी होती, तो ऐसा क्यो होता! इसी प्रकार जब राजा दधिवाहन मेरे सामने ही जंगल को चले गये थे, तब यदि मैंने इस बात कापता लगाया होता, कि उनका परिवार कहाँ है, तो आपको कष्ट क्यों भोगना पड़ता, तथा आपकी माता को क्यो मरना पड़ता! यह सब, मेरे ही अपराधों का परिणाम है। इन सब बातों के लिए, मैं स्वयं को पापी समझता हूँ। आज तक तो मैं अपने इस प्रकार के कार्यों को अच्छा समझता था, इस तरह के कार्य करने मे गर्व

अनुभव करता था, लेकिन आज मैं उन्हीं कार्यों के लिए, बहुत ही लज्जित हूँ। मेरे हृदय में, अपार पश्चात्ताप है। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता, कि जिसके द्वारा मैं पाप से मुक्त हो सकूँ। हे सती, मुझ ऐसे पापी का उद्धार करने वाली, आप हीं हैं। आप ही, मेरा उद्धार कर सकती है।

यह कहते-कहते, सन्तानिक की आँखें डबडबा आईं। उसका हृदय, दुःख से भर आया, और वह चंदनबाला के पांवों पर गिर पड़ा। सन्तानिक को इस तरह पश्चात्ताप करते हुए दुःखी देख कर, चन्दनबाला ने विचार किया, कि अन्त में तो यह कुलीन और वीर क्षत्रिय है। इसको,इस समय बहुत दुःख है। यदि ऐसे दुःख के समय इसे धैर्य न बंधाया गया, सॉत्वना न दी गई, तो इसका कलेजा फट जावेगा, और यह मर जावेगा।!

इस प्रकार विचार कर चंदनबाला ने सन्तानिक को उठा कर उससे कहा—पिताजी, पाप का पश्चात्ताप करने से, और दूसरे की जो हानि की है उसकी पूर्ति करने से, पाप कम हो जाता है। आपको, अपने कार्यों के विषय में बहुत ही अधिक पश्चात्ताप है, और आप मुझसे उद्धार करने के लिए कह रहे हैं, इसलिए मैं आपसे यह कहती हूँ, कि आपने जिसका स्वत्व छीना है, उसका स्वत्व उसे लौटा दीजिये, तथा भविष्य में इस प्रकार का पाप न करने की प्रतिज्ञा कीजिये। ऐसा करने पर, फिर आप में पाप न

रहेगा, किन्तु आप पवित्र हो जावेंगे। मैं यह नहीं कहती, कि आप राज धर्म का पालन न करें। राज धर्म का पालन करना, अपराधी को दण्ड देना, और प्रजा की रक्षा करना तो राजाओं का कर्त्तव्य ही है। जो राजा इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करता वह, पतित और पापी है। इसलिए मैं, राज धर्म का पालन न करने को नही कहती, किन्तु यह कहती हूँ, कि राज्य को अपने लिए न समझ कर, स्वयं को राज्य के लिए समझना। राज्य को, अपने भोग-विलास का साधन न मानना, स्वयं को शासक और प्रजा को शासित समझने की भावना न रखना, किन्तु यह समझना, कि मेरे पर राज्य एक भार है, और मैं उस भार को उठा कर, प्रजा की रक्षा करने वाला, प्रजा को सुख पहुँचाने वाला, उसका एक सेवक हूँ। इस तरह की भावना रखने पर, राज्य, पाप का कारण नही होता। उस दशा में, दूसरे का राज्य छीनने, और दूसरों पर अत्याचार करने की इच्छा नही होती, किन्तु यही इच्छा रहती है, कि प्रजा-पालन, और दीन-दुःखी की रक्षा में ही मेरी शक्ति का उपयोग हो! मेरे पिताजी, ऐसी ही भावना रख कर चम्पा का राज्य करते थे। यही कारण है, कि उन्होंने अपने यहां सेना भी नहीं बढ़ाई, और आपने चढ़ाई की तब, युद्ध द्वारा जन-संहार करने की अपेक्षा वन जाना ही पसंद किया।

चन्दनबाला का कथन सुन कर, संतानिक कहने लगा, कि

हे सती, आपने आज जिस विवेक का उपदेश दिया, मेरे में उस विवेक की ही कमी थी। कहावत है, कि—

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्व मविवेकिता।
एकैक मप्यनर्थाय किमुयत्र चतुष्टयम्॥

अर्थात् यौवन, धन-सम्पति, प्रभुत्व और अविवेक, इनमें से प्रत्येक अनर्थकारी हैं; तो जहां ये चारो ही एकत्रित हों, वहाँ के अनर्थ का तो कहना ही क्या है!

हे सती, मुझमें ये सभी बातें थी। मुझे सलाहकार भी ऐसे ही मिले थे, कि जो मेरा अविवेक बढ़ाते थे, और मेरी दुर्भावना को प्रोत्साहन देते थे। आपने, मुझे आज जो विवेक दिया है, उसे पाकर मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि भविष्य में मैं, स्वयं को प्रजा का सेवक समझ कर, उसके हित के ही काम करूंगा। ऐसा कोई काम न करूंगा, जिससे प्रजा का अहित हो। अबसे मैं, किसी का भी स्वत्व छीनने का प्रयत्न न करूंगा। बल्कि, मेरे द्वारा जिनका स्वत्व छीना गया है, मैं उन्हें उनका स्वत्व लौटा दूंगा, तथा उनसे अपने कृत्य के लिए हार्दिक क्षमा चाहूँगा। महाराजा दधिवाहन कहाँ है, इसका पता आज नहीं है, लेकिन मैं उनकी खोज कराऊंगा, उनको सम्मान-पूर्वक वापस बुलाऊंगा, चम्पा का राज्य उन्हें लौटा दूंगा, और चम्पा की जो क्षति हुई

है, उसकी पूर्ति करूंगा। इस प्रकार मैं, अब तक किये गए अपने पापो का प्रायश्चित करके, आगे से अपना जीवन भर इस तरह का कोई पाप न करूंगा।

सन्तानिक की यह प्रतिज्ञा सुन कर, वहाँ उपस्थित सब लोग आश्चर्य करने लगे, और धन्य-धन्य कह कर कहने लगे, कि आज इस सती ने, महाराजा को भी पवित्र बना दिया! अपने पति की प्रतिज्ञा सुन कर, मृगावती को भी बहुत प्रसन्नता हुई, और चन्दनबाला भी आनन्दित हुई। उसने सन्तानिक से कहा, कि आपने इस प्रतिज्ञा द्वारा स्वयं को पवित्र बना लिया है, इसके लिए मैं आपकी प्रशन्सा करती हूँ, लेकिन अभी एक बात की कमी और है। इस प्रतिज्ञा के साथ ही, आप अब तक का सब वैर भूल जाने, तथा अब तक के सब अपराधियों को क्षमा प्रदान करने की उदारता और कीजिये। आपकी आज्ञा से, अथवा आपकी आज्ञा के विरुद्ध जिन-जिन ने जो-जो अपराध किये हैं, उन सबको, क्षमा प्रदान करके निर्भय कर दीजिये। पुराने अपराधो के लिए, अब किसी को दण्ड मत दीजिये।

चन्दनबाला के कथन के उत्तर में, सन्तानिक ने कहा, कि मैं आपके इस कथन को भी स्वीकार करता हूँ। केवल उन अपराधियों को, जिनने प्रजा की स्त्रियों में से किसी का सतीत्व नष्ट किया है, और विशेषतः जिसके कारण महारानी धारिणी को

मरना, तथा आपको बाजार में बिकना पड़ा है, उनको छोड़ कर, शेष समस्त अपराधियों को मैं क्षमा करता हूँ। जिन अपराधियों ने किन्ही स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया है, तथा जिसने महारानी धारिणी का सतीत्व नष्ट करना चाहा, और आपको बाजार में बेचा, उन अपराधियों को तो मैं अवश्य ही दण्ड दूँगा। ऐसे भयंकर अपराध, क्षम्य नहीं हो सकते। ऐसे अपराधी को क्षमा करना राजधर्म की अवहेलना करना है।

चन्दनबाला और सन्तानिक की बातें, रथी भी सुनरहा था। चन्दनबाला ने, सन्तानिक से जैसे ही रथी के कृत्यों का वर्णन किया था, वैसे ही रथी ने यह समझ लिया था, कि अब मेरी कुशल नहीं है। फिर सन्तानिक का निर्णय सुन कर तो, उसको यह निश्चय ही हो गया, कि अब मेरा जीवन नहीं है। इस प्रकार उसको भय तो हुआ, परन्तु चन्दनबाला ने अपने उपदेश से उसमें जो दृढ़ता भरी थी, उसके कारण उसने विचार किया कि मैंने जो पाप किये हैं, उनका दण्ड मुझे मिलना ही चाहिए। अपराध को छिपाना, या उनके विषय में क्षमा चाहना ठीक नहीं है। ऐसा करने से, आत्मा वैसा पवित्र और निर्मल नहीं होता, जैसा पवित्र और निर्मल, दण्ड भोगने से होता है।

रथी, इस प्रकार विचार कर ही रहा था, इतने ही में चंदनबाला ने सन्तानिक से कहा, कि आपने कुछ अपराधियों के

सिवा और सबको क्षमा कर दिया यह अच्छा किया, लेकिन अब आप किसी भी अपराधी को दण्ड मत दीजिये, किंतु सभी को क्षमा कर दीजिये। जब आपके समस्त अपराध पश्चात्ताप से मिट सकते हैं, तब क्या उन अपराधियों को पश्चात्ताप न होगा? और उनके पाप न मिटेंगे? यदि वे अपराधी दण्ड के पात्र हैं, तो आप स्वयं को भी दण्ड का पात्र समझिये, और यदि आप अपने अपराधों के विषय में पश्चात्ताप मात्र पर्याप्त समझते हैं, तो फिर उनको भी क्षमा कर दीजिये। जिसके विषय में अपराधी पश्चात्ताप कर चुका है, उस प्राचीन अपराध को लेकर किसी को दण्ड देने से, वैर की वृद्धि होती है, और एक बार का बँधा हुआ वैर, जन्म जन्मान्तर तक चला करता है। इसलिये अब आप, अब तक के सभी अपराधियों को क्षमा कर दीजिये।

इस कथन के उत्तर में संतानिक कहने लगा कि आपका कहना बिलकुल ही उचित है। मुझे भी, अपनी आत्मा को पवित्र बनाने के लिए दण्ड भोगना ही चाहिए, और मेरे लिए आप जिस दण्ड की व्यवस्था करती हो, मैं वह दण्ड भोगने के लिए तयार हूँ। इसी प्रकार जिन लोगों ने महान् अनैतिक अपराध किया है, उनको भी दण्ड मिलना ही चाहिए।

संतानिक का कथन समाप्त होते ही, रथी एक दम से उठ खड़ा हुआ, और साहस-पूर्वक आगे बढ़ कर संतानिक से कहने लगा,

कि महाराज, चम्पा के राज परिवार को कष्ट में डालने का अपराधी मैं ही हूँ। मैंने ही, कामवासना की प्रेरणा से यह भयंकर अपराध किया है। मुझ अधम से सतीत्व बचाने के लिए ही, धारिणी ऐसी सती को प्राण त्यागने पड़े। इस सती के बाजार में बिकने, तथा अन्य कष्ट भोगने का कारण भी मैं ही हूँ। महारानी धारिणी ने, मुझको बहुत समझाया था, परंतु मैं उनके सौन्दर्य पर ऐसा मुग्ध हुआ था, कि मेरी समझ में उनकी कोई बात नहीं आई। मेरे समीप उनका उपदेश गरम तवे पर गिरी हुई जल की बूँद के समान रहा। इस कारण, अंत में उस सती को प्राण त्यागने पड़े। इसलिए आप मुझे कठोर से कठोर दण्ड दीजिये, जिससे मेरी आत्मा पवित्र बने।

रथी का कथन सुन कर, सन्तानिक के साथ ही और सब लोग दंग रह गये। सब यही कहने लगे, कि अपने भयंकर अपराध को भी इस तरह मुक्त-हृदय से स्वीकार करने वाला, हमारे देखने में कोई नहीं आया। और सब लोग तो इस प्रकार आश्चर्य कर रहे थे, लेकिन चंदनबाला प्रसन्न हो रही थी। वह सोचती थी, कि माता के उपदेश ने इन रथी पिता को कैसा पवित्र बना दिया है, कि ये मृत्युदण्ड मिलने ऐसे अपने अपराध को भी स्वीकार कर रहे हैं, और उसके लिए दण्ड माँग रहे है।

इस प्रकार के विचार से प्रसन्न होती हुई चंदनबाला,

सन्तानिक से कहने लगी कि—पिता जी, अपराधी को दण्ड देने का उद्देश्य अपराध का बदला लेना नहीं हुआ करता है, किन्तु अपराधी के हृदय में, उस अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न करना होता है। यदि बदला लेने के लिए ही अपराधी को दण्ड दिया जाता हो, तो ऐसा करने से न तो अपराधों में ही कमी हो सकती है, न अपराधी, या दण्ड देने वाले मे पवित्रता ही आ सकती है। बल्कि बदला लेने की भावना से दण्ड देने वाला, स्वयं भी अपराधी हो जाता है। इसलिए दण्ड देने का उद्देश्य, अपराधी में अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न करना होना चाहिए। लेकिन जब अपराधी को स्वयं ही अपने अपराध के लिये पश्चात्ताप हो, उसके हृदय में अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई हो, और वह अपराध को अपराध मान कर भविष्य में वैसा अपराध न करने का निश्चय कर चुका हो, उस दशा मे उसे दण्ड देने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इसके अनुसार,अब न तो आपको ही दण्ड लेने की आवश्यकता है, न इन रथी-पिता को ही दण्ड देने की आवश्यकता है। इनको, मेरी माता ने अपना भाई, और मैंने अपना पिता माना है। अब इनको दण्ड देना, माता का और मेरा अपमान करना है। माता ने, इनको सुधारने के लिए ही अपने प्राणो का बलिदान किया था। माता के उस बलिदान ने इनको सुधार भी दिया, इसीसे इन्होंने निर्भयता-पूर्वक अपना

अपराध स्वीकार किया है, और ये आपसे दण्ड माँग रहे हैं।' अब आपके लिए यही उचित है,कि आप इनको अपना भाई बनालें, इनके पहले के सब अपराध क्षमा करदें, और अपने गले से इनका गला लगा कर मिल लें। मैं, इनकी पुत्री हूँ। मेरे रहते इनकी कोई हानि हो, यह मेरे लिये लज्जा की बात है। मेरे लिए ये भी उसी प्रकार श्रद्धास्पद हैं, जिस प्रकार आप, ये सेठ पिता, और दधिवाहन पिता हैं।

रथी को अपराध स्वीकार करके दण्ड माँगते देख कर, सन्तानिक आश्चर्य तो कर ही रहा था, उसी समय चंदनबाला के उपदेश ने, उसमें एक नया जीवन उत्पन्न कर दिया। वह, रथी के पास गया, और उसको अपनी छाती से लगा कर कहने लगा, कि आज से तुम मेरे भाई हो। मै, तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा करता हूँ।

सन्तानिक और रथी को आपस में मिलते देख कर, उपस्थित लोग जय जय कार करते हुए कहने लगे, कि धन्य है अपराध स्वीकार करने वाले को! और धन्य है क्षमा देने वाले को! अब तक हमने न तो किसी को इस तरह अपराध स्वीकार करते ही देखा, न ऐसे अपराधी को क्षमा प्रदान करते ही देखा!

जनता का कोलाहल शांत होने पर, सन्तानिक, चन्दन-बाला से कहने लगा, कि—हे सती, अब तो आप महल

को पधारिए! जो दोष था, वह तो मेरे में ही था, महल में तो कोई दोष था नहीं! महल, न तो उस में बैठकर बुरे विचार करने का ही कहता है, न अच्छे विचार करने से रोकता ही है। उसमें बैठ कर, अपनी भावना के अनुसार अच्छा विचार भी किया जा सकता है, और बुरा विचार भी किया जा सकता है। अब तक मेरे में जो दुर्भावना भरी हुई थी, महल में बैठ कर मैं उसी भावना के अनुसार बुरे विचार करता था, लेकिन अब आपकी कृपा से मेरी भावना पवित्र हो गई है, मेरा विकार निकल गया है, इसलिए अब उसी महलमे बैठ कर पवित्र विचार करूंगा। क्षेत्र, क्षेत्री के अनुसार हुआ करता है। उसे तो जैसा भी बनाया जावे, वह वैसा ही बन जाता है। क्षेत्री अच्छा हो, तो क्षेत्र भी अच्छा हो जाता है; और क्षेत्री बुरा हो, तो क्षेत्र भी बुरा हो जाता है। अब तक मैं स्वयं ही बुरा था, इसलिए महल भी बुरा था; परन्तु अब मैं पवित्र हो गया हूँ, तो महल भी अच्छा हो जावेगा। इसके सिवा, आप तो अपवित्र को भी पवित्र बना देती हैं। जब आप उस महल मे पधारेंगी, तब क्या वह महल पवित्र न हो जावेगा! अवश्य ही पवित्र हो जावेगा। इसलिए अब आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करके, महल को पधारिये।

सन्तानिक के कथन के उत्तर में चंदनवाला कहने लगी, कि

आपका यह कथन तो ठीक है, वास्तव में आपने सत्य को पहचान कर एक दम से अपना परिवर्तन कर लिया है, महल की दृष्टि से अब मुझे आपके यहां चलने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती, परन्तु यहां से मेरा जाना धर्म-विरुद्ध होगा। मेरा यह शरीर, इन सेठ-पिता के यहां २० लाख सोनैया मे बिका हुआ है। इसलिए यहां से आपके यहां जाने की बात तो दूर रही, मैं मरने के लिए भी स्वतन्त्र नहीं हूँ। मुझ पर जब तक इन सेठ-पिता का ऋण है तब तक मैं, कहीं जाने के लिए स्वतन्त्र नहीं हूँ। अब आप की ओर से तो किसी प्रकार की ऐसी कमी नहीं रही है जिसके कारण मुझे महल में चलने में कोई आपत्ति हो सकती हो, परंतु मुझे आपके यहां जाने से, धर्म रोकता है। स्वयं पर ऋण होते हुए भी, मेरा जाना विश्वासघात होगा, और विश्वास-घात भयंकर पाप है। विश्वासघात का पाप, सभी पापों से बढ़ कर है। इसलिए मै, आपके यहां चलने मे असमर्थ हूँ।

चंदनबाला का कथन समाप्त होते ही रथी कहने लगा—सती जी, आप इसकी चिंता मत करिये। आपने जो २० लाख सोनैया मुझे दिलाये थे, वे मेरे यहां ज्यों के त्यों रखे हैं। मैं, अभी वे सोनैया लाकर इन सेठ को दिये देता हूँ, जिससे आप पर कोई ऋण न रहेगा!

यह कह कर रथी, सोनैया लाने के लिए अपने घर जाने

लगा; लेकिन सेठ ने उसको रोक लिया। चंदनबाला का कथन सुन कर, उसके हृदय को बहुत खेद था। उसकी आंखें, सजल हो आईं थीं। वह, दीन-स्वर में चंदनबाला से कहने लगा, कि-हे सती, आपने यह क्या कहा, कि मैं इन के यहां बिकी हुई हूँ! क्या आप मेरे यहां बिकी हुई हैं! क्या मैं आपको खरीद सकता हूँ! सारे त्रिलोक की सम्पति, आपके मूल्य का एक अंश भी नहीं है, तो मैं आपको कैसे खरीद सकता हूँ! मुझ तुच्छ से, आपको खरीदने की शक्ति कहां से हो सकती है! आप, स्वयं को मेरे यहां बिकी हुई न समझें। मैंने रथी को बीस लाख सोनैया अवश्य दिये थे, लेकिन भाई बना कर; और यह बात उसी समय स्पष्ट भी हो चुकी थी, कि ये सोनैया उपहार-स्वरूप हैं, मूल्य-स्वरूप नहीं हैं। इसके सिवा, वे बीस लाख सोनैया भी, मुझको कई गुना होकर मिल गये। देवों ने जो सोनैयादि की वृष्टि की, वह बीस लाख से कई गुना अधिक है। इसलिए हे सती, आप यह न कहिये कि मैं बिकी हुई हूँ। हां, मैं अवश्य आपके हाथ बिका हुआ हूँ। आपने मेरे इस घर को पवित्र बना दिया, मेरी इस पत्नी को सुधार दिया, तथा मुझको धर्म का लाभ दिया है। भगवान महावीर ऐसे महापुरुष के चरण, आप ही की कृपा से मेरे यहां पड़े है। इस प्रकार आपने, मुझे जन्म-जन्म के लिए खरीद लिया है। कदाचित यह भी मान लिया जावे, कि

आप मेरे यहां बिकी हुई हैं, तब भी आपका महल को जाना, विश्वासघात नहीं हो सकता। क्योंकि ये महाराजा सन्तानिक, मेरे स्वामी हैं। इनकी आज्ञा का पालन करना, मेरा परम कर्तव्य है; और जब मेरे लिए भी इनकी आज्ञा पालनीय है, तो जो मेरे यहां बिका हुआ है, उसके लिए पालनीय क्यों न होगी! इस प्रकार महाराजा की बात मान कर, आपका महल को पधारना, विश्वासघात नहीं हो सकता। आप, प्रसन्नता-पूर्वक पधार सकती हैं। मैं, अपने मुंह से यह तो कदापि नहीं कह सकता, कि 'आप जाइये!' परन्तु यह अवश्य कहूँगा, कि आज आपका तीन दिन के तप के पारणे का दिन है, इसलिए आप मेरे यहां से भूखी तो न पधारें!

चन्दनबाला से यह कह कर धनावा सेठ, सन्तानिक से कहने लगा, कि आप स्वामी हैं, और मैं सेवक हूँ। सेवक के यहां स्वामि-आगमन, कल्याण का कारण है। मै स्वयं तो आप को मेरे यहां बुलाने की शक्ति नहीं रखता, लेकिन आज इन सती की कृपा से आपका मेरे यहां पधारना हुआ है, जो मेरे लिए बहुत ही हर्ष की बात है। मेरा भाग्य ऐसा कहां था, जो आप मेरे यहां पधारते! इन सती की कृपा से ही आपका पधारना हुआ है। आप, इन सती से महल में चलने के लिए कहते हैं, इस में मेरा क्या इनकार हो सकता है! आप मेरे स्वामी हैं, इस

लिए आप इन सती को ले जाने के अधिकारी हैं। मैं तो, आप का सेवक हूँ। आपकी आज्ञा के विषय में, मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती। फिर भी मेरी यह प्रार्थना अवश्य है, कि आज इन सती का तीन दिन के तप के पारणे का दिन है, इसलिए इनका पारणा यहां आप ही के हाथ से हो जाना चाहिए। मैं, केवल इसी कार्य के लिए आपको नहीं बुला सकता था. परन्तु जब आप पधार गये हैं, तब तो आप हीं के हाथ से इन सती का पारणा होना चाहिए। यह सती मेरे यहां से भूखी जावे, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैं आप से केवल यही चाहता हूँ, कि आप साथ बैठ कर, सती को पारणा करा दीजिये।

धनावा सेठ की बात समाप्त होने पर, चन्दनबाला बोली—पिताजी, आप पारणे के लिए व्यर्थ ही इतना अनुरोध करते हैं। मैं, यहां से भूखी भी नहीं जा सकती, और मासाजी तथा मासीजी की उपस्थिति में, अकेली भोजन भी नही कर सकती। ऐसी दशा में, आप इतना आग्रह करने का कष्ट क्यो करते हैं! आप भोजन की व्यवस्था कराइये; मासाजी और मासीजी सहित मैं, भोजन करूंगी।

चन्दनबाला का कथन सुन कर, धनावा सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। उसने, भोजन की व्यवस्था की। सब व्यवस्था हो जाने

पर, सती चन्दनबाला, सन्तानिक, मृगावती, रथी और उसकी स्त्री आदि सब ने भोजन किया। इस प्रकार वहां, बहुत ही हर्षपूर्ण समारोह रहा।

महल को !

श्रेष्ठ आदमी, उच्च स्थिति मे होने पर भी छोटो को नहीं भूलते। वे चाहे जैसी सम्पत्ति पा जावे, चाहे जितना बढ़ जावें, और उनको चाहे जैसा सम्मान प्राप्त हो जावे, वे नम्र ही रहते हैं, तथा अपने से छोटों पर कृपा रखते हैं। वे जानते हैं, कि इन छोटों से ही मेरा बड़ापन है। छोटों ने ही, मुझे बड़ा बनाया है। यदि ये छोटे न हों, तो हम बड़े भी नहीं हो सकते। इस प्रकार के विचार के कारण, वे किसी भी समय छोटो की उपेक्षा नहीं करते, किन्तु इस बात का सदा प्रयत्न करते रहते हैं, कि मैं छोटो को अधिक से अधिक सुख-सुविधा पहुँचा सकूँ। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे, एक बार अपने सुखों तथा अपनी बड़ाई को भी त्याग देते हैं। महाराजा श्रीकृष्ण, राज्य-चिह्न से युक्त होकर हाथी पर बैठे हुए थे। उस समय उन्हे, बड़े-बड़े नागरिक अभिवादन कर रहे थे, और बड़े-बड़े राजा महाराजा वीर सरदार आदि साथ थे। फिर भी एक वृद्ध पुरुष

को ईंटें उठाने का कष्ट करते देख कर, उनसे न रुका गया। उन्होंने, उस समय अपने पद वैभव आदि किसी भी बात का विचार नही किया, किन्तु उस वृद्ध की ईंट उठा कर उसे कष्ट-मुक्त किया। इस प्रकार उच्च दशा में होने पर भी श्रेष्ठ आदमी, छोटो के प्रति स्नेह रखते है, उनको सुख-सुविधा पहुँचाने का ध्यान रखते हैं, तथा उनकी अपेक्षा रखते है। तुच्छ लोग ही, बड़े होकर छोटो को भूल जाते है। उन्हीं की दृष्टि, धन वैभव आदि बड़ाई पाकर फिरती है। महान लोग तो, बड़ाई पाकर और भी विनम्र हो जाते है। कहावत ही है, कि:—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूमि विलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषा समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

अर्थात्—परोपकारी सत्पुरुषों का यह स्वभाव ही होता है, कि वे समृद्ध होने पर उद्धत नहीं रहते, किन्तु उसी प्रकार नम्र हो जाते है, जैसे फल से लदे हुए वृक्ष, और जल से भरे हुए बादल झुक जाते है।

चन्दनबाला के लिए भी, यही बात थी। उसके हाथ से भगवान् महावीर का पारणा हुआ, इस कारण इन्द्रादि देवों ने उसकी सेवा स्तुति की थी, रानी और सामन्तों सहित राजा सन्तानिक, उससे महल में चलने की प्रार्थना कर रहा था; फिर

भी वह रथी, रथी की स्त्री, वेश्या, धनावा सेठ, तथा मूलाँ आदि को नहीं भूली। उनकी उपेक्षा नहो की, किन्तु उनका उपकार मान कर उनके हित का ही प्रबन्ध किया। राजा सन्तानिक, रथी को प्राण दण्ड से कम दण्ड नहीं दे सकता था; लेकिन चन्दनवाला ने उन दोनो को भाई-भाई के सम्बंध से जोड़ दिया। इसी प्रकार पारणा कर चुकने के पश्चात् सन्तानिक के महल में जाते समय भी, उसने मूलाँ और धनावा सेठ से यही कहा, कि हे माता, और हे पिता, मैंने इस घर मे वहुत सुख पाया है। इस घर मे रहती हुई मैं जैसे धर्म-कार्य कर सकी, वैसे धर्म कार्य, और कहीं रहती हुई नहीं कर सकती थी। यहाँ रहने से ही, मुझको भगवान महावीर का दर्शन, और उन्हे दान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं, आपकी वहुत ऋणी हूँ मुझ पर आप का जो ऋण है, उस से मैं कदापि मुक्त नहीं हो सकती। सो मैं ही नहीं, किंतु सारा संसार आपका ऋणी है। संसार का कल्याण करने वाले भगवान महावीर का पारणा आपके यहाँ के अन्न से ही हुआ है। आपके कथनानुसार, मैं आपके यहाँ बिकी हुई न भी होऊँ तब भी मेरे पेट मे आपके यहाँ का अन्न-जल है, और आपके आश्रय मे रह कर धर्म की वृद्धि की है, इसलिए आपकी ऋणी तो हूँ ही। आज मै इस घर से जा रही हूँ, परंतु इस घर का मुझ पर जो उपकार है, उसको मै कदापि

विस्मृत नहीं कर सकती। आपसे भी मेरी यही प्रार्थना है, कि मुझे विस्मृत मत करना किंतु मुझ पर सदा ही कृपा रखना।

यह कह कर चंदनबाला ने, सेठ और मूलां को प्रणाम किया। सेठानी सहित सेठ की आंखों से, आँसू बह चले। दोनों ने, चंदनबाला को आशीर्वाद देकर, उसे अपने गले से लगाया। रथी, रथी की स्त्री, वेश्या, और सेठ के यहाँ के नौकर चाकर, सेठ के आश्रित, तथा पड़ोस में रहने वाले आदि सब लोगों से चंदनबाला इसी प्रकार मिली। फिर सन्तानिक के यहाँ से आई हुई पालकी मे बैठ कर, राजा रानी तथा अन्य लोगों से घिरी हुई राजमहल की ओर चली। जिस पालकी में चंदनबाला बैठी हुई थी, उसके पीछे रथ में सवार राजा-रानी थे राज कर्मचारीगण, चंदनबाला की पालकी को चारों ओर से घेर कर, भीड़ से पालकी की रक्षा कर रहे थे। शेष सब लोग भी, पालकी के आगे-पीछे तथा बराबर चल रहे थे। मार्ग में, सती चन्दनबाला की जय हो!' भगवान् महावीर को पारणा कराने वाली महाराजा दधिवाहन और महारानी धारिणी की पुत्री की जय हो!' आदि वाक्य कह कर, सब लोग सती चन्दन-बाला का जय-जयकार करते जाते थे। इस प्रकार सती चन्दन-बाला की पालकी समारोह-पूर्वक राजमार्ग से महल की ओर चली।

नगर में पहले की सब खबरें तो फैल ही चुकी थी। चन्दनबाला राजमहल को जा रही है, यह खबर सुनकर नगर के प्राय: सभी स्त्री पुरुष सती का दर्शन करनेके लिए दौड़ पड़े। सब लोग कहते जाते थे, कि अभागेको अच्छी वस्तु का योग नहीं मिलता इसी के अनुसार, जब वह सती बिक रही थी तब हम उसको नहीं ले सके! जो हुआ सो हुआ अब उसका दर्शन तो करले! उसके चरणों का स्पर्श करके, शरीर को पवित्र तो बनालें, चंदनबाला का दर्शन करने के लिए आने वाले लोग, इसी प्रकार की बातें कहते हुए चंदनबाला के चरण छूने को पालकी की ओर बढ़ने लगे। जो राज कर्मचारीगण चारो ओर से पालकी की रक्षा कर रहे थे, दर्शनार्थी लोग उनको भी धकेलने लगे। राज-कर्मचारियों के लिये, उस भीड़ का रोकना कठिन हो गया। तब वे लोग, धक्के देकर भीड़ को हटाने लगे। यह दृश्य देख कर सती से न रहा गया। उसने सोचा, कि मेरे कारण इन लोगों की इस प्रकार अवज्ञा हो, यह ठीक नहीं है। ये सब, मेरे भाई हैं। मुझ पर, इनका भी अधिकार है। इसलिए मुझे, पालकी त्याग कर इन लोगों के साथ चलना ही ठीक है, जिसमें राज-कर्मचारियों द्वारा किसी को कष्ट न हो!

इस प्रकार विचार कर सती चंदनबाला, पालकी से नीचे उतर पड़ी। सती को सहसा पालकी से उतरी देख कर, लोगों

को बहुत ही आश्चर्य हुआ। राजा रानी आदि सब लोग कहने लगे, कि सती किस कारण नीचे उतर पड़ी ! सती को पालकी से उतरी देख कर, राजा-रानी भी रथ से नीचे उतर पड़े, और सती ने किस कारण पालकी त्यागी, यह जानने की चेष्टा करने लगे। सती ने, सबको संतोष देते हुए कहा, कि—मै किसी दूसरे कारण से पालकी से नीचे नहीं उतरी हूँ किंतु इसलिए नीचे उतरी हूँ, कि मै भी सब लोगों की तरह पैदल चलूँ, जिससे राज-कर्मचारियो को भी कष्ट न करना पड़े, तथा मेरे कारण किसी की अवज्ञा भी न हो !

चंदनबाला, सब लोगों के साथ पैदल ही चलने लगी। दर्शनार्थी लोग, उसका दर्शन, एवं उसके चरणो का स्पर्श करके प्रसन्न हो जाते थे।

सब लोग, जय-जयकार करते हुए जा रहे थे। उनके बीच मे सती चंदनबाला चल रही थी। चलते २ सती ने विचार किया, कि इन सब लोगो को दो शब्द ऐसे सुना देना चाहिएँ. जिससे ये लोग मेरे शरीर से ही प्रेम करने में न रहे किन्तु आत्मा से सम्बन्ध जोड़ सके। इस तरह विचार कर वह, चलती-चलती एक ऊंचे स्थान पर चढ़ कर खड़ी हो गई। वहां खड़ी हुई सती का दर्शन, सब लोगों को अच्छी तरह हो रहा था। सती को इस प्रकार खड़ी देख कर, सब लोग भी सती की ओर मुंह करके

खड़े हो गये। सभी लोग यह जानने के लिए उत्कण्ठित थे, कि सती इस प्रकार रुक कर खड़ी क्यों हो गई! इतने ही में, चंदनबाला ने सब को सुनाते हुए कहा, कि आप लोग इस मेरे भौतिक शरीर को ही देख कर, और इसी से प्रेम-सम्बन्ध जोड़ कर न रह जावें, किन्तु मेरे आत्मा से सम्बन्ध जोड़े। मेरे आत्मा से सम्बन्ध किस तरह जोड़ा जा सकता है, यह बताने के लिए ही मैं यहां पर खड़ी हुई हूँ, मैं आप लोगो से जो कुछ कहूँ, उसे आप ध्यान देकर सुने।

चन्दनबाला का कथन सुन कर, सब लोग इस विचार से बहुत ही प्रसन्न हुए, कि हमको सती के पवित्र मुख की वाणी सुनने को मिलेगी। उपस्थित स्त्री-पुरुष, शान्त भाव से खड़े हो गये। सब लोग, एक-टक सती के मुख की ओर देखने लगे। उस स्थान पर बहुत से स्त्री-पुरुष एकत्रित थे, फिर भी स्तब्धता छाई हुई थी। सती चन्दनबाला ने, अपनी वाणी द्वारा वह स्तब्धता भंग की।

चन्दनबाला कहने लगी—मेरे कौशम्बी निवासी उपस्थित भाइयो, एक दिन मैं इसी नगर के चौराहे पर खड़ी हुई बिक रही थी, और आप सब लोगों से कह रही थी, कि आप मुझे खरीद लें, मैं आपके गृह के सभी कार्य करूंगी, तथा मेरे लिए व्यय किये गये द्रव्य को व्यर्थ न जाने दूंगी। मैं, बार बार ऐसा

कहती थी, फिर भी आप लोगो को मेरे कथन पर विश्वास नहीं हुआ। आप लोगों मे से किसी ने भी, मेरे बदले में बीस लाख सोनैया खर्च करना उचित नही समझा। केवल एक ये माता, जो पहले वेश्या कहलाती थीं, परन्तु अब पवित्र जीवन बिताती है, मुझे लेने के लिए तयार हुई। इन्होने मेरे बदले २० लाख सोनैया देना स्वीकार किया; लेकिन इनका उद्देश्य कुछ दूसरा था। ये मुझे वेश्या बना कर, मेरे द्वारा पुरुषों को कामाग्नि में भस्म कराना चाहती थी, और इस नीच उपाय द्वारा धनोपार्जन करना चाहती थी। मैने, इन माता के साथ जाना अस्वीकार कर दिया। तब ये मुझे, बलात् पकड़ लेजाने को तयार हुई। आप लोगों में से बहुत से लोग भी, इन माता की सहायता के लिये तयार हुए थे। माता की सहायता करने को जो लोग तयार हुए थे वे भी यही चाहते थे, कि यह वेश्या बन जावे तो अच्छा। उस समय मेरे कारण भयंकर कलह होने की सम्भावना थी, परन्तु प्रकृति ने उस कलह के अवसर को टाल दिया और अब ये माता भी, अपने उस समय के सहायकों को घृणा की दृष्टि से देखती हैं। अन्त में इन सेठ पिताने मेरे बदले २० लाख सोनैया देकर, मुझे अपने यहाँ आश्रय दिया। इन सेठ पिताके आश्रय में रह कर, मैने धर्म की वृद्धि की, और आज आप लोग जो कुछ देख रहे हैं, यह सब इसी का परिणाम है।

मतलब यह, कि एक दिन मैं स्वयं बिक रही थी, आप लोगों से मुझे खरीदने का अनुरोध करती थी, किन्तु आप लोगो ने २० लाख सोनैया के सामने मुझे तुच्छ समझा। लेकिन आज आप लोगो को इस बात का पश्चात्ताप हो रहा होगा, कि इस सती को हमने क्यो न खरीद लिया ? ऐसा पश्चात्ताप, किसी को तो इस विचार से होता होगा, कि यदि हमने इसको खरीद लिया होता, तो भगवान महावीर का पारणा हमारे यहाँ के अन्न से ही होता, तथा यह सब रचना भी हमारे ही घर होती। और किसी को इस विचार से पश्चात्ताप होता होगा, कि यदि हमने इसके लिए २० लाख सोनैया खर्च किये होते, तो आज हमारे यहाँ साढ़े बारह क्रोड़ सोनैया की वृष्टि होती। इस तरह पश्चात्ताप का कारण तो अपनी-अपनी भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा, लेकिन पश्चात्ताप अवश्य होता होगा। जैसा पश्चात्ताप आज हो रहा है, वैसा ही पश्चात्ताप आपको फिर न करना पड़े, इसलिए आप अभी से सावधान हो जावें, और मेरे कथन पर विश्वास करके, जैसा मैं कहती हूँ, वैसा करें। कदाचित आप लोग मेरे इस शरीर को खरीद भी लेते, तब भी यह निश्चय नहीं था, कि जिस लाभ से वंचित रहने के कारण आज आपको पश्चात्ताप हो रहा है, वह लाभ आप को होता ही। क्योंकि जब तक भगवान् महावीर का अभिग्रह पूरा न होता, वे दान न लेते; और दान न

लेते तो स्वर्ण-वृष्टि भी न होती। इसलिए मुझे खरीदने पर तो लाभ अनिश्चित था, लेकिन इस समय मैं आपसे जो कुछ कहूँगी, उस पर विश्वास करके उसके अनुसार कार्य करने पर, लाभ निश्चित ही है। मुझे खरीदने में आपको द्रव्य खर्च करना पड़ता था, इसी कारण उस समय आप लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ था, परन्तु जो बात मैं इस समय बताती हूँ, उसके लिए द्रव्य न खरचना होगा; इसलिए अविश्वास का भी कोई कारण नहीं हो सकता। फिर भी यदि आप लोग मेरे कथन पर अविश्वास करेंगे, और मेरे कथन के अनुसार कार्य न करेंगे, तो आपको जन्म जन्मांतर तक पश्चात्ताप करना होगा।

आप लोगों से मैं यह कहती हूँ, कि आप लोग मेरे आत्मा से सम्बन्ध जोड़ें। मेरे आत्मा से सम्बन्ध जोड़ने पर, आपको अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होगा। मेरे आत्मा से सम्बन्ध जोड़ने के लिए आप यह देखें, कि मेरे आत्मा में क्या गुण है! मुझे, किन गुणों के कारण आप लोग आदर की दृष्टि से देख रहे हैं; इनका अनुसन्धान करें, और उन्हीं गुणों को आप भी अपनावें। ऐसा करने से, मेरे और आपके आत्मा का सम्बन्ध जुड़ सकता है।

किन गुणों के कारण आप लोग मेरा आदर करते हैं, और मेरे में वे गुण कैसे आये, यह मैं बताती हूँ। मेरी माता ने, वैसे

तो जन्म से ही, और विशेषतः जब मुझे और मेरी माता को ये रथी-पिता रथ मे वैठा कर जंगल को ले जा रहे थे उस समय मुझ को यह शिक्षा दी थी, कि:—

शान्ति-समर में कभी भूल कर धैर्य नहीं खोना होगा।
वज्रप्रहार भले सिर पर हों किन्तु नहीं रोना होगा॥
अरि से वदला लेने का मन बीज नहीं वोना होगा।
घर में कान तूल देकर फिर तुझे नहीं सोना होगा॥
देश-दाग को रुधिर-वारि से हर्षित हो धोना होगा।
देश-कार्य की भारी गठड़ी सिर रख ढोना होगा॥
आँखे लाल भवें टेढी कर क्रोध नहीं करना होगा।
बलि-वेदी पर तुझे हर्ष से चढ़कर कट मरना होगा॥
नश्वर है नर-देह मौत से कभी नहीं डरना होगा।
सत्य मार्ग को छोड़ स्वार्थ-पथ पर पैर नहीं धरना होगा॥
होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा।
मातृ-भूमि के लिए हर्ष से जीना या मरना होगा॥

माता ने, यह शिक्षा मुझे हृदयंगम करा दी, इतना ही नहीं, किन्तु इस शिक्षा का क्रियात्मक आदर्श भी मेरे सामने रखा। मेरी माता, वीर-पुत्री और वीर नारी थी। जब इन रथी पिता ने उससे अनुचित प्रस्ताव किया, उसको कटुवचन कहे, तव यदि वह चाहती, छल-बल से इनको मार सकती थी। लेकिन यदि वह

ऐसा करती, तो उसने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह थोथी होती। मुझ पर उसकी शीक्षा का प्रभाव न होता, किन्तु उसके कार्य का प्रभाव होता। परन्तु माताने मुझे जो शिक्षा दी थी, उसी के अनुसार व्यवहार भी किया। उसने, इन रथी-पिता को अन्ततक अपना भाई ही माना, इन्हे कल्याणकारी उपदेश ही दिया, और इन पर जरा भी क्रोध नही किया। जब ये किसी भी तरह न माने, तब उसने अपना बलिदान देकर इन पिता के हृदय की भावना ऐसी पलट दी, कि ये मेरे रक्षक बन गये।

माता ने मुझे जो उपदेश दिया था, मैंने उसी के अनुसार व्यवहार किया, इसीसे आज आप सब लोग मेरा सम्मान कर रहे है। माता के उपदेशानुसार व्यवहार करके मैंने, हिंसात्मक युद्ध के कारण देश पर जो दाग लगा था उसे धो डाला। ये संतानिक पिता, अब तक हिंसात्मक-युद्ध के प्रबल समर्थक थे। इन्हे, हिसात्मक-युद्ध बहुत ही प्रिय था परन्तु आज इनको अपनी युद्ध-प्रियता पर खेद है. युद्ध द्वारा की गई धन-जन की हानि के लिए पश्चात्ताप है, और इन्होंने पिता को बुला कर उन्हें चम्पा का राज्य वापिस देने का निश्चय किया है। इस तरह देश पर हिंसा का जो दाग लगा था, वह धुल गया। साथ ही इनका सुधार भी हुआ। इसी प्रकार इन रथी-पत्नी का, मूलाँ माता का, और जो पहले वेश्या कहाती थी उन माता का भी सुधार हुआ। इन रथी-पिता

की पत्नी ने मुझको अनेक कटु शब्द कहे। मुझ पर, मिथ्या कलंक भी लगाये; तथा मुझको बाजार में भी बिकवाया; तब भी मैंने उन पर क्रोध नहीं किया, न बदला लेने कीही भावना रखी। इन वेश्या माता ने भी मेरे साथ कैसा व्यवहार किया था, यह तो आप लोगो को मालूम ही है। फिर भी मैंने इनपर किंचित् भी क्रोध नहीं किया, न मेरेमें यही भावना आई, कि इनका अहित हो। बल्कि जब बन्दरों ने इनको पीड़ा पहुँचाई, तब इनके सहायक लोग तो भाग गये, और मैंने आगे बढ़ कर इनकी सेवा की। पश्चात् इन मूलाँ माता ने भी, सन्देह के कारण मुझे कलंक दिया, मेरा सिर मूंडा, मेरे हाथ-पांव में हथकड़ी बेड़ी डाली, और मेरे शरीर के वस्त्र छीन केवल काछ लगा कर मुझे इस इच्छा से अन्धेरे भोयरे मे डाल दिया, कि यह इसी मे मर जावे! फिर भी, मेरे हृदय मे न तो इनके प्रति क्रोध ही हुआ, न इनसे बदला लेने की भावना ही हुई। इस प्रकार की सहनशीलता और अक्रोध आदि का ही यह परिणाम है, जो आप देख रहे हैं।

तात्पर्य यह, कि माता ने अपनी शिक्षा द्वारा मेरे मे जो गुण भरे थे, उनके प्रताप से मैंने यह समझा, कि सुख मिलने का उपाय है दूसरे को सुख देना, किसी पर क्रोध न करना, किसी प्रकार की सेवा करने में संकोच न होना, बदले की भावना को न जन्मने देना, और अपकार को भी उपकार मानना। इन्हीं

ब्बातो से, सुख प्राप्त हो सकता है। आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि मेरे में ये गुण थे, तो अपकार की दृष्टि से किये गये कार्य भी मेरे लिये उपकार रूप हो गये। रथी-पिता और सेठ-पिता के यहां मेरे लिये जो कुछ किया गया, यदि वह न किया जाता, तो क्या भगवान महावीर का अभिग्रह पूरा हो सकता था? और उस दशा मे, आज आप जो रचना देख रहे है, वह हो सकती थी? यह सब उन्ही कार्यो का प्रताप है, जो करने वालों ने अपकार की दृष्टि से किये, परन्तु मैंने जिन्हें उपकार रूप माना।

अब मैं आपसे यही कहती हूँ, कि मेरे आत्मा से सम्बन्ध जोड़ने के लिए आप उन्ही गुणो को अपनाओ, जो माता की शिक्षा से मेरे में आये है। इन गुणों को अपनाने पर मेरे और आपके आत्मा का सम्बन्ध जुड़ेगा, फिर आपको किसी प्रकार का पश्चात्ताप न करना पड़ेगा, किंतु आप सदा ही सुखी रहेंगे। आप लोग यदि अधिक बातों को ध्यान मे नही रख सकते, तो केवल इतना ही ध्यान में रखें कि दूसरे को सुख देने से ही स्वयं को सुख प्राप्त होता है। यदि आपने इतनी भी बात ध्यान में रखी, और सबको सुख देने मे ही रहे, कोई आपको दुःख दे, तब भी आप उसको सुखी बनाने, सुख पहुँचाने का ही उपाय करते रहे तो, फिर आपको सदा

सुख ही मिलेगा, दुःख तो कभी होगा ही नहीं, तथा मेरे आत्मा से सम्बन्ध भी जुड़ जावेगा।

चन्दनबाला का, पूर्व-इतिहास सहित उपदेशपूर्ण भाषण सुन कर, सब लोग गद्गद् होगये। कोई तो कहते थे, 'कि वास्तव में उस समय इस सती का महत्व न जान कर, तथा धर्म की उपेक्षा करके, हमने वेश्या का साथ दिया था। हम चाहते थे, कि यह बहुत सुन्दरी है, इसलिए वेश्या हो जावे तो अच्छा। परन्तु आज हमको अपने उस कृत्य के लिए यह विचार कर पश्चात्ताप है, कि यदि यह सती वेश्या हो जाती, तो संसार की क्या दशा होती। त्रिलोक का कल्याण करनेवाले भगवान महावीर का जीवन, कैसे रहता! जो हुआ सो हुआ, अब से हम इस सती के उपदेशानुसार ही व्यवहार करेंगे।' कोई कहते थे, कि 'वास्तव मे जब यह सती बिक रही थी, तब हमने इसके कहने पर विश्वास नहीं किया था, और बीस लाख सोनैयो को बहुत माना था। धन्य है धनावा सैठ को, जिसने इस सती के लिए २० लाख सोनैया व्यय करके, अपने धन का सदुपयोग किया हमें अपनी उस भूल के लिए खेद है, लेकिन अब सती के उपदेशानुसार कार्य न करने की भूल न करेंगे!

इस प्रकार उपस्थित जनता, सती का उपदेश सुन कर गद्गद् हो गई। सब के हृदय पर, चन्दनबाला के उपदेश का बहुत

अच्छा प्रभाव पड़ा और सभी ने, यथाशक्ति उपदेशानुसार व्यवहार करने का निश्चय किया। यह देख कर, सन्तानिक दंग रह गया। वह सोचने लगा, कि जो कार्य हज़ार तलवार से नहीं हो सकता था, वह कार्य सती ने सहज ही कर डाला। धन्य है इनको और इनके माता-पिता को।

सब लोगों को उपदेशामृत पान करा कर, जनता से घिरी हुई सती चन्दनबाला, सन्तानिक के महल को चली। सती का उपदेश सुनने से, जनता का हर्षोत्साह बहुत बढ़ गया था; इसलिए वह, पहले से भी अधिक जोर से जयजय नाद करती जाती थी। उसी जयध्वनि के मध्य चन्दनबाला ने, सन्तानिक के महल में प्रवेश किया। सन्तानिक ने, भक्ति-भाव पूर्वक चन्दनबाला का सत्कार किया, और उसे सिंहासन पर बैठाया।

सिंहासन पर बैठ कर चन्दनबाला ने, धनावा सेठ, मूलाँ, वेश्या, रथी आदि साथ आये हुये लोगों को, प्रिय वचन कह कर बिदा किया। सती का गुण गान करते हुए सब लोग, अपने घर चले। सती, आनन्द-पूर्वक महल में रहती हुई धर्माराधन करने लगी। मृगावती से उसकी धर्मचर्चा हुआ करती, जिसमें सन्तानिक भी भाग लिया करता। इस प्रकार जिस महल में किसी समय पाप हत्या, और अत्याचार की ही बातें हुआ करती थीं, उसी में चन्दनबाला के आने से धर्म-चर्चा होने लगी।

शत्रु से मित्र ।

शत्रुता या मित्रता का उद्गम स्थान, हृदय है। हृदय मे जो भावनाएँ होती है, उन्ही से शत्रुता या मित्रता की उत्पत्ति होती है। जब हृदय मे किसी के प्रति अच्छे भाव होते हैं, तब तो मित्रता का जन्म होता है, और जब बुरे भाव होते है तब शत्रुता का जन्म होता है। जिसके प्रति न अच्छे भाव होते है, न बुरे भाव होते है, उसके प्रति उदासीनता रहती है। ऐसे व्यक्ति के प्रति न तो शत्रुता ही रहती है, न मित्रता ही।

किसी के प्रति अच्छे, और किसी के प्रति बुरे भाव, धर्म को न समझने वाले अज्ञानी लोगो मे ही होते है। जिनमे राग-द्वेष है, उन्हीं में इस तरह का भेद-भाव हुआ करता है। बल्कि जिसमे जितना भी अधिक राग-द्वेष है, उसमे इस प्रकार के भेद को भी उतना ही आधिक्य है। लेकिन जो ज्ञानी है, जिन्होने राग-द्वेष को जीत लिया है, उनमे इस तरह का भेदभाव नही होता,

किन्तु सबके प्रति अच्छा भाव ही रहता है। वे, सभी का कल्याण चाहते हैं। उनमें, किसी के प्रति शत्रुता का जन्म ही नही होता। वे, सभी को मित्र मानते हैं। यह शत्रु है, यह मित्र है, और यह न शत्रु है, न मित्र है, इस तरह का भेद अज्ञानियों में ही रहा करता है। जिससे किसी प्रकार क. स्वार्थ सधता है, उसे मित्र माना जाता है; जिससे किसी स्वार्थ की हानि होती है, या जो स्वार्थ में बाधक है, उसे शत्रु समझा जाता है; और जिससे न तो स्वार्थ बनता है, न विगड़ता है, उसके प्रति उदासीनता रहती है। इस प्रकार शत्रुता और मित्रता का जन्म, स्वार्थ-भावना से ही है, और वह स्वार्थ-भावना भी सांसारिक पदार्थों की। ज्ञानियो में इस प्रकार की स्वार्थ-भावना नहीं रहती, वे संसार के किसी भी पदार्थ की चाह नहीं करते, वे किसी को भी अपने स्वार्थ में बाधक नहीं समझते इसलिए उनमे किसी के प्रति शत्रुता भी नहीं रहती; किन्तु सब के प्रति मित्रता पूर्ण सम्बन्ध ही रहता है।

राजा सन्तानिक भी, दधिवाहन को अपना शत्रु समझता था। जब से उसके हृदय मे चम्पा के राज्य का लोभ हुआ था, तभी से वह चम्पा के राजा दधिवाहन को बाधक मान कर शत्रु समझता था. और अपने इस शत्रु को जीतकर अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए ही, उसने चम्पा पर चढ़ाई की थी। सन्तानिक को

लाभ ग्रस्त समझ कर, उसकी भावना जान कर, दधिवाहन, बिना युद्ध किये ही चम्पा का राज छोड़ कर जंगल को चला गया था! दधिवाहन के चले जाने पर तो सन्तानिक के हृदय मे उसके प्रति शत्रुता न रहनी चाहिए थी, परन्तु सेनापति आदि के कहने से उसको इस बात का भय था कि अपना राज्य पुनः प्राप्त करनेके लिए दधिवाहन, किसी समय आक्रमण न करे! इस भय के कारण उसने दधिवाहन को मार डालने, या बन्दी बनाने का उपाय भी किया, किन्तु उसे इस प्रयत्न में सफलता नहीं मिली। इसी बीच, में उसे मृगावती और सती चन्दनबाला के उपदेश की फटकार लगी, जिससे वह पर द्रव्य लोलुप न रहा और उसकी भावना एकदम बदल गई। वह समझ गया, कि मेरा चम्पा का राज्य लेना, तथा दधिवाहन को शत्रु मानना, अनुचित है। मैंने, चम्पा पर चढ़ाई करके अन्याय किया है। इन बातों को समझने के कारण ही, उसने सबके सामने यह प्रतिज्ञा की, कि मैं दधिवाहन का पता लगवा कर उन्हें वापस बुलाऊंगा, उनसे क्षमा चाहूँगा, और उनका राज्य उन्हें लौटा कर, चम्पा की जो हानि हुई है, उसकी पूर्ति करूंगा।

इस निश्चय के अनुसार सन्तानिक ने, अपने आदमियों को दधिवाहन की खोज में भेजा। उसने उनसे कहदिया, कि दधिवाहन जहां हो, वहाँ से उन्हें सम्मान-पूर्वक ले आओ। दधिवाहन

को खोजते हुए सन्तानिक के आदमी, दधिवाहन के पास जा पहुँचे। उन्होंने, नम्रता-पूर्वक दधिवाहन से कहा, कि चलिये, आपको महाराजा सन्तानिक याद कर रहे हैं! यह सुन कर, दधि-वाहन कहने लगे, कि—क्या अभी सन्तानिक की दुर्भावना नहीं मिटी है? क्या चम्पा का राज्य पाकर भी, उसको सन्तोष नहीं हुआ? मैं, उसके लिए चम्पा का राज्य छोड़ कर जंगल में चला आया; राजसी ठाट के बदले यहां, जंगली मनुष्यों की तरह जीवन निर्वाह करता हूँ; वन के फलों से अपना पेट भरता हूँ; फिर भी वह मेरे प्राण लेना चाहता है! क्या उसको, मेरी ओर का भय बना हुआ है? तुम लोग जाकर सन्तानिक से कह दो, कि वह मेरी ओर से, किसी भी प्रकार का भय न रखे। राज्य की इच्छा से युद्ध करने की भावना, मेरे हृदय में कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती। यदि मुझे युद्ध करना होता, तो सेना होते हुए भी मैं, युद्ध न करके यहाँ क्यों चला आता! मुझे, युद्ध से घृणा है। फिर सन्तानिक मेरी ओर से भय क्यों रखता है; और मुझे बुला कर, व्यर्थ ही क्यों मेरी हत्या करना चाहता है।

दधिवाहन का कथन सुन कर, सन्तानिक के आदमी कहने लगे, कि आप विश्वास रखिये; आपको सन्तानिक ने आपकी हत्या करने के लिए नहीं बुलाया है। संतानिक, अब वह संतानिक नहीं रहा है, जो पहले था। अब उसका, सर्वथा परिवर्त्तन हो गया है।

यह कह कर उन लोगों ने, धारिणी के बलिदान, चन्दनबाला के बिकने, उसके द्वारा भगवान महावीर का पारणा होने, इन्द्रादि द्वारा उसकी महिमा, सन्तानिक को उपदेश, और सन्तानिक का सुधार उसकी प्रतिज्ञा आदि सब वृत्तान्त कह सुनाया। पश्चात् उनने कहा, कि सन्तानिक ने, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चम्पा का राज्य देने के लिए ही. आपको बुलाया है। इसलिए आप किसी प्रकार का सन्देह मत रखिये, और कौशम्बी को पधारिये।

धारिणी की मृत्यु, और मृत्यु का कारण जान कर, दधिवाहन को बहुत ही दुःख हुआ। साथ ही, चन्दनबाला का सब वृत्तांत सुन कर प्रसन्नता भी हुई; और यह विचार भी हुआ, कि मैं अपनी पुत्री वसुमति,—जो अब चन्दनबाला के नाम से प्रसिद्ध है,—को मुंह कैसे दिखाऊं! मैं, उन माता पुत्री को अरक्षित छोड़ कर जंगल में चला आया था, इसी कारण धारिणी को सतीत्व-रक्षा के लिए मरना पड़ा, और पुत्री को अनेक कष्ट भोगने पड़े। ऐसी दशा में, मैं उसके सामने कैसे जाऊं! इस प्रकार के विचारों के कारण, दधिवाहन को कौशम्बी जाने से सङ्कोच होने लगा, लेकिन सन्तानिक द्वारा भेजे गये आदमियों के बहुत समझाने बुझाने पर, दधिवाहन ने, कौशम्बी चलना स्वीकार किया।

सन्तानिक ने, अपने आदमियों के साथ दधिवाहन के लिए जो वाहन भेजा था, उस पर बैठ कर दधिवाहन कौशाम्बी को चला। दधिवाहन आ रहे है, इसकी सूचना सन्तानिक को हुई। सन्तानिक ने, दधिवाहन के स्वागतार्थ नगर, महल आदि को सजवाया। फिर वह, प्रतिष्ठित-प्रतिष्ठित पुरवासियों एवं कर्मचारियों को लेकर, दधिवाहन का स्वागत करने चला। नगर के और लोग भी, सन्तानिक और दधिवाहन का मिलन देखने के लिए चले। कौशाम्बी के बाहर, सन्तानिक और दधिवाहन की भेंट हुई। दधिवाहन को देखते ही सन्तानिक ने, और सन्तानिक को देखते ही दधिवाहन ने, अपना-अपना वाहन त्याग दिया; तथा पैदल ही एक दूसरे की ओर चले। समीप पहुँचने पर सन्तानिक, दधिवाहन के पैरों पर गिर पड़ा, और कहने लगा, कि—मुझ पापी को क्षमा करो! मैंने, आप ऐसे धर्मात्मा पर बहुत ही अत्याचार किया है! मेरी लोभ-भावना के परिणाम स्वरूप ही, आप ऐसे आदर्श प्रजा पालक राजा को, जंगल की यातनाऐ भोगनी पड़ी हैं, सती धारिणी को प्राण त्यागने पड़े हैं, और आपकी पुत्री सती चन्दनबाला को, अनेक कष्ट सहने पड़े हैं। मैंने, भयंकर अपराध किये हैं। मैं, आपसे अपने सब अपराधों के लिए क्षमा चाहता हूँ; आप उदारता पूर्वक क्षमा प्रदान करके, मेरा उद्धार करें।

सन्तानिक को इस प्रकार पश्चात्ताप करते देखकर, दधिवाहन का हृदय भर आया। दधिवाहन ने, सन्तानिक को उठा कर अपने गले से लगाया, और उससे कहा, कि—जो होना था, वह हुआ; अब उन बीती बातों को याद करना, व्यर्थ है; तुम, मेरे सम्बन्धी और मित्र हो। आज अपना सम्बन्ध तथा अपनी मित्रता, पुनः नवीनता को प्राप्त हुई है, जो चिरस्थायी रहेगी। इसलिए आप किसी तरह का खेद न करें, किन्तु प्रसन्न हो।

सन्तानिक को इस प्रकार धैर्य देकर, दधिवाहन ने उसका खेद मिटाया। सन्तानिक, सन्मान-पूर्वक दधिवाहन को लेकर महल की ओर चला। साथ की जनता, जयजयकार करती जा रही थी। नगर मे यह बात प्रसिद्ध हो चुकी थी, कि जिस सती के हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ है, उस सती के पिता महाराजा दधिवाहन आज पधार रहे हैं। यह प्रसिद्ध होने से, नगर की समस्त जनता राज-मार्ग की ओर उमड़ पड़ी, और उसके दोनो किनारे खड़ी होकर, महाराजा दधिवाहन की प्रतीक्षा करने लगी। महाराजा दधिवाहन के आने पर उनका दर्शन करके सब लोग प्रसन्न होकर धन्य-धन्य तथा जय-जय की ध्वनि करने लगे।

इस प्रकार के समारोह के साथ महाराजा दधिवाहन, सन्तानिक के महल के समीप आये। सन्तानिक का भव्य महल,

दधिवाहन के स्वागतोपलक्ष्य में पूरी तरह सजा हुआ था; और जन्म से महलों में रहने वाले दधिवाहन, बहुत दिनों तक जंगल में भी रह चुके थे, इसलिए दधिवाहन को सन्तानिक का महल देख कर प्रसन्नता होनी चाहिए थी, फिर भी दधिवाहन को, महल में प्रवेश करने में बहुत संकोच हो रहा था। वह यही सोचते थे, कि इसी महल में पुत्री है, जिसे मैं अपना मुंह कैसे दिखाऊंगा। इस संकोच के कारण, दधिवाहन का पाँव बड़ी कठिनाई से आगे की ओर पड़ता था।

दधिवाहन, जैसे-तैसे सन्तानिक के महल में गया। सन्तानिक ने बड़े आदर पूर्वक दधिवाहन को सिंहासन पर बैठाया, और उसका उचित सत्कार किया।

महल की दासियों ने, चन्दनबाला को दधिवाहन के आने की सूचना दी। चन्दनबाला के स्थान पर यदि कोई दूसरी कन्या होती, तबतो वह दधिवाहन का मुंह भी न देखना चाहती; अथवा उसकी यह कह कर भर्त्सना करती, कि तुम पिता होकर भी मुझको और मेरी माता को छोड़ कर जंगल को भाग गये! लेकिन चन्दनबाला को, दधिवाहन के बन जाने का कारण धारिणी ने भी समझाया था, तथा चन्दनबाला स्वयं भी जानती थी, कि किस ध्येय को सामने रख कर पिता ने युद्ध नहीं किया, और वे वन को चले गये। इस जानकारी के कारण उसके हृदय में,

दधिवाहन के विषय में कोई प्रतिकूल विचार नहीं हुआ। दधिवाहन का आगमन सुन कर, वह प्रसन्न ही हुई। वह सोचती थी, कि मुझे माता ने जो शिक्षा दी थी, उस शिक्षा के अनुसार कार्य करने मे मैं कहाँ तक सफल हुई हूँ, यह बात तो पिता से ही मालूम होगी। मैं तो समझती हूँ, कि माता ने मुझे जो शिक्षा दी थी. उसके अनुसार व्यवहार करने से ही, आज मासा और पिता का मिलना हुआ है, तथा ये दोनों मित्र बन सके हैं।

इस प्रकार विचारती और प्रसन्न होती हुई चन्दनबाला दधिवाहन के सामने आई। उसने, दधिवाहन का नम्रता पूर्वक अभिवादन किया। चन्दनबाला को प्रणाम करती देख कर, दधिवाहन रो पड़ा। वह रोता हुआ चन्दनबाला से कहने लगा, कि—हे सती. तू किस दुष्ट को प्रणाम कर रही है! मैं वही पापी हूँ. जो तुझको और तेरी माता को अरक्षित छोड़ कर जंगल को चला गया था. तथा जिसके परिणाम स्वरूप तेरी माता को अपना सतीत्व बचाने के लिए प्राण त्यागने पड़े और तुझे बाजार मे बिक कर अनेक कष्ट भोगने पड़े। यद्यपि मैं कायरता-वश जंगल को नहीं गया था, किन्तु जन-हत्या न हो. इस उद्देश्य से गया था. तथा मुझको यह विश्वास भी था, कि तुम दोनों अपनी २ रक्षा करने में समर्थ हो, फिर भी, मेरे लिए तो यह आवश्यक कर्त्तव्य था, कि मै तुम्हारी रक्षा का प्रबन्ध करता। मैंने, अपने

इस कर्त्तव्य का पालन न करने का पाप किया है, इसलिए मैं अपराधी हूँ, और इस योग्य नहीं हूँ, कि तुझ-सी सती मुझे प्रणाम करे। मुझे यही आश्चर्य हो रहा है, कि तुझ जैसी सती, मेरी पुत्री कैसे हुई! यह वैसी ही आश्चर्य की बात है, जैसी आश्चर्य की बात, अरण्ड में आम लगने की हो सकती है। वस्तुतः मै इस योग्य नहीं हूँ, कि तुम्हारा पिता कहाऊं!

दधिवाहन को इस प्रकार अधीर देख कर, चन्दनबाला उसे सान्त्वना देने लगी। वह कहने लगी—पिताजी, आप ऐसे धीर वीर के लिए, इस प्रकार का विलाप अशोभनीय है। आपने जो कुछ किया, वह किस उच्च आदर्श को दृष्टि में रख कर किया, और उसका परिणाम कैसा अच्छा हुआ, इसका विचार करो। यदि आप जनहत्या से घृणा करके बन को न जाते, और युद्ध करते, अथवा मुझको और माता को भी वन में साथ लेजाते, या किसी दूसरी जगह भेज देते, तो जो रचना हुई है, क्या वह रचना हो सकती थी! यदि माता ने अपने प्राण न दिए होते, तो उन्होंने मुझे जो उपदेश दिया था, क्या वह उपदेश चिरस्थायी हो सकता था? और क्या जिन रथी ने पितावत् मेरी रक्षा की, वे सुधर सकते थे? उनसे, मेरी रक्षा हो सकती थी? इसी प्रकार, क्या मेरे हाथ से भगवान महावीर का पारणा हो सकता था? कदाचित् ये सब बातें हो भी जातीं, तब भी आपकी और

मासाजी की शत्रुता तो बनी ही रहती। वह तो, न मिटती। आपने युद्ध नहीं किया, और मुझे तथा माता को छोड़ कर चले गये, इसी का यह सब प्रताप है। यदि आप हमको छोड़ कर वन न भी जाते, तब भी क्या हमारी रक्षा कर सकते थे? क्या कोई किसी की रक्षा मे समर्थ है? वास्तव में, कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता, केवल धर्म ही सबकी रक्षा करने में समर्थ है। दूसरे तो. निमित्त मात्र हैं। आपके चले जाने से, मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ। जिसे आप या दूसरे लोग कष्ट समझते हैं, वह कष्ट नहीं, किन्तु भगवान महावीर का आह्वान करने. देश पर लगे हुए हिंसात्मक युद्ध का कलक मिटाने, और राज्य-लोभ के कारण, आप में और मासाजी में जो वैर-भाव उत्पन्न हो गया था, उसे नष्ट करके उसके स्थान पर मित्रता स्थापित कराने के लिए तपस्या थी। इसलिये मेरे विषय मे, किसी प्रकार का खेद अनावश्यक है। रही माता के मरने की बात, लेकिन यदि आप माता के मरण पर भली प्रकार विचार करेंगे, तो आपको किसी प्रकार का खेद न होगा, अपितु प्रसन्नता होगी।

यह कह कर चन्दनबाला ने, धारिणी की मृत्यु का आद्योपान्त वर्णन, दधिवाहन को सुनाया। यह करके, वह फिर दधिवाहन से कहने लगी, कि—पिताजी, माता की मृत्यु कभी तो होती ही,

फिर क्या इस प्रकार का पण्डित-मरण कुछ बुरा है, जो आप उनकी मृत्यु के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता करें !

इस प्रकार चन्दनबाला ने, अपनी ओज-पूर्ण वाणी से, दधिवाहन का समस्त खेद मिटा दिया। साथ ही सन्तानिक और दधिवाहन मे स्थायी मित्रता स्थापित करा दी। इतने ही मे, रथी भी वहाँ आगया। वह दधिवाहन के पैरों पड़ कर उनसे कहने लगा, कि— आपकी सती-पत्नी की मृत्यु का कारण मैं ही हूँ। इसलिए आप जो भी उचित समझें, मुझे दण्ड दीजिये'। चन्दन-बाला ने दधिवाहन को रथी का परिचय करा कर, अपना और धारिणी का उससे क्या सम्बन्ध है, यह बताया; तथा सन्तानिक द्वारा उसे अभय किए जाने का वृत्तांत भी कहा। चंदनबाला द्वारा कहा गया सब वृत्तांत सुन कर, दधिवाहन ने भी रथी को अपने गले से लगाया, और सांत्वना देकर उससे कहा, कि आज से तुम मेरे भाई हो, इसलिये किसी प्रकार का भय मत करो। इस प्रकार चंदनबाला ने, रथी और दधिवाहन मे भी बंधुत्व स्थापित करा दिया।

दधिवाहन को कुछ दिन विश्राम लेने देकर, एक दिन चंदन-बाला और मृगावती की उपस्थिति मे, संतानिक ने दधिवाहन से कहा, कि—महाराज, इस सती के प्रताप से ही मेरा और आपका पुनः मिलना, और मित्र-भाव स्थापित हुआ है। यदि

यह सती न होती, तो ऐसा न होता। कदाचित मेरे बदले आप विजयी हुए होते, तब भी वैर तो बना ही रहता। इस सती के प्रताप से ही, मुझको अपनी सब बुराइयाँ मालूम हुई है, और मै यह समझ पाया हूँ, कि जिसमे प्रजा-पालन की भावना है; जो अपना हित नही देखता, किंतु प्रजा का हित देखता है; और प्रजा के हित के ही कार्य करता है, वही राजा है। जिसमे यह बात नहीं है, वह राजा होने योग्य नहीं है। यह ज्ञात होने से मै इस बात को जान सका हूँ, कि वास्तव मे, राजा होने के योग्य आप ही हैं। मै, राजा होने के योग्य नहीं हूँ। यह बात दूसरी है, कि आगे चल कर आपकी कृपा से मेरे मे भी ऐसी योग्यता आ जावे, परंतु मेरे अब तक के कार्य यह बताते है, कि मैं राज्य करने के अयोग्य हूँ। इसलिये मैने निश्चय किया है, कि अपना राज्य आपको सौप कर, मै आपके समीप रहता हुआ इन बातो का ज्ञान प्राप्त करूंगा. कि राज्य किस तरह किया जाता है, और प्रजा का हित किन-किन कार्यों से होता है। चम्पा का राज्य तो आपही का है, वहाँ का राज्य आपको सौप कर राज्याभिषेक किया ही जावेगा, लेकिन मेरी इच्छा है, कि चम्पा के राज्य का राज्याभिषेक करने के साथ ही, कौशाम्बी का राज्य भी आपही को सौप दूं। आप कौशाम्बी का भी राज्य करे, और आपके राज्यकाल में चम्पा की प्रजा जिस आनन्द का अनुभव

कर चुकी है, तथा अब करेगी, उस आनन्द का अनुभव, कौशाम्बी की प्रजा को भी करावें।

जिस महल में बैठ कर, जो राजा संतानिक, किसी दिन दधिवाहन से चम्पा का राज्य छीनने का विचार करता था, उपाय सोचता था, और चम्पा पर चढ़ाई करने का निश्चय किया था, उसी महल में वही संतानिक, दधिवाहन को चम्पा का राज्य लौटाने के साथ ही, कौशाम्बी का राज्य भी देना चाहता है। इस प्रकार के परिवर्तन का कारण, सती चंदनबाला के प्रताप से दुर्भावना मिट कर, सद्भावना का आना है।

संतानिक की बात सुन कर, दधिवाहन ने प्रसन्न होते हुए उससे कहा—राजन्, आप चम्पा का राज्य मुझे लौटाना चाहते हैं, यह जान कर मेरे को प्रसन्नता नहीं हुई, लेकिन आपके हृदय का जो परिवर्तन हुआ है, उससे मुझे अवश्य ही अत्यधिक प्रसन्नता है आप में पहले चाहे जो बुराई रही हो, लेकिन अब मैं आप में कोई बुराई नहीं देखता। आपका यह दृष्टिकोण, जो राज्य के विषय में पहले था, अब बदल गया है। उस दृष्टिकोण के बदलने से, आप, प्रजा पालक और धर्मात्मा नरेश सिद्ध होंगे, तथा प्रजा भी प्रसन्न रहेगी, एवं सुख-समृद्ध होगी। मैं, अब वृद्ध हुआ हूँ। दीर्घकाल तक वन में रहने के कारण, मेरे में पहले की सी शक्ति भी नहीं रही है। अब तो मेरी यही इच्छा

है, कि मैं अपना जीवन, परमात्मा के भजन मे लगाऊं! वैसे तो मैं चम्पा का राज्य छोड़ सकता, या न छोड़ सकता, लेकिन आप की कृपा से, मेरे शिर पर से वह बोझ भी उतर गया है, मैं नहीं चाहता, कि जो बोझ मेरे सिर पर से सहज ही उतर गया है, उसे मैं फिर अपने सिर पर लूं। लेकिन आपतो मेरे सिर पर दुगुना बोझ लादना चाहते हैं। आप मुझे क्षमा करिये, और जिस तरह अभी दोनो जगह का राज्य कर रहे है, उसी तरह करते रहिये। मुझे अब राज्य के झंझट में मत डालिये।

दधिवाहन और सन्तानिक, दोनों ही, एक दूसरे से राज्य करने का अनुरोध करने लगे। सन्तानिक कहता था, कि मैंने राज्य का उद्देश्य केवल उत्तमोत्तम-भोग भोगना ही समझ रखा था। इस उद्देश्य के कारण प्रजा को कैसा कष्ट भोगना पड़ता है, आदि बातों की ओर मेरा किंचित् भी ध्यान नहीं था। सती की कृपा से, अब यह मेरी भावना बदली अवश्य है फिर भी पूर्व संस्कारो के कारण, अभी इस भावना के पुनः जागृत होने का भय है। आपकी अधीनता में कुछ दिन तक रहने से, मेरी इस प्रकार की भावना सदा के लिए नष्ट हो जावेगी, और उस दशा में, मेरा राज्य करना अनुचित न होगा। आप, दोनों जगह के राज्य का भार अपने पर लेकर, मुझे ऐसा अवसर दीजिये। मैं,

आपकी आज्ञानुसार सब काम करने के लिए, सदा तयार हूँ; परन्तु राज्य तो आपही कीजिये।

सन्तानिक तो, दधिवाहन से इस प्रकार कहता था, और दधिवाहन, संतानिक से कहता था, कि—आप, वज्रलेपी विचार के क्षत्रिय है। जब तक आप मे बुरी भावना थी, तब तक आपने उसके अनुसार कार्य किया; परन्तु अब आपकी भावना वदल गई है, इसलिए आपसे उस तरह के कार्य नहीं हो सकते। मै वृद्ध हूँ, इसलिए आप मुझे राज्य के झगड़े मे मत डालिये।

राज्य के विषय मे दोनों की वातें सुन कर, मृगावती और चंदनबाला, प्रसन्न हो रही थी। वे सोचती थी कि जिस राज्य के लिए युद्ध करके महान् जनहत्या की जाती है, उस राज्य को, ये दोनो आज उसी प्रकार एक दूसरे की ओर फेंक रहे है, जैसे गेंद खेलने वाले लोग, एक दूसरे की ओर गेंद फेका करते हैं।। यह सब, धर्म समझने का ही प्रताप है।

संतानिक और दधिवाहन के पारस्परिक अनुरोध का अंत न देख कर, चंदनबाला कहने लगी, कि—आप दोनो, आज इस प्रकार एक दूसरे को राज्य सौपना चाहते है, यह तो प्रसन्नता की बात है, लेकिन जो भार दो आदमियों से उठने योग्य है, जिसे उठाने में एक आदमी को कठिनाई हो सकती है, उस भार को किसी एक पर ही डालना, ठीक नही हो सकता। राज्य, प्रजा

की रक्षा करने, और उसे सुख-सुविधा पहुँचाने के लिए ही है। इसके सिवा, राज्य का कोई उद्देश्य नही है, और यदि कोई व्यक्ति दूसरा उद्देश्य समझता है, तो वह पथ भ्रष्ट है। राज्य को अपने भोगोपभोग के लिए मान कर राज्य करना एक बात है, और प्रजा की सेवा के लिए राज्य करना, दूसरी बात है। जो व्यक्ति, राज्य को स्वयं के भोगोपभोग के लिए समझता है, वह अपना राज्य दूसरे को देने की इच्छा नहीं कर सकता; हाँ, दूसरे का राज्य हड़पना अवश्य चाहेगा। लेकिन आप दोनों में, राज्य को स्वयं के भोगोपभोग के लिए मानने की भावना नही है, किंतु प्रजा की सेवा की भावना है। इस भावना से राज्य करने में, किसी प्रकार की बुराई नही है, अपितु ऐसा करना, क्षत्रियों का कर्त्तव्य है। इसलिये यदि आप लोग मेरी बात मानें, तो मैं आपसे यही कहती हूँ, कि दोनो जगह के राज्य का भार किसी एक पर मत डालिये, किंतु स्वयं के राज्य का भार स्वयं ही उठाइये; और आपने मेरे मे जो भावना देखी है, उसी भावना के अनुसार राज्य कीजिये।

सती का यह कथन सुन कर, दोनो चुप हो गये। न तो संतानिक ही और कुछ कह सका, न दधिवाहन ही। इस विषय में और कोई बात न करके संतानिक ने, दधिवाहन, मृगावती, चन्दनबाला, तथा और लोगो की सम्मति से, दधिवाहन को चम्पा

का राज्याभिषेक किये जाने का दिन नियत किया, और राज्याभिषेक की तयारी करने की आज्ञा दी। साथ ही, चम्पा को भी इसकी सूचना भेज दी।

दधिवाहन के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य मे, कौशाम्बी नगरी सजाई गई। जगह-जगह, मंगलोत्सव होने लगा। नियत तिथि समीप जान कर, चम्पा के बहुत से लोग, कौशाम्बी आये। दधिवाहन से मिल कर उन्हे वैसी ही प्रसन्नता हुई, जैसी प्रसन्नता बछड़े को अपनी माता से मिलने पर होती है। दधिवाहन ने, उन सबकी कुशल पूछ कर, उनका उचित सत्कार किया। अन्त में नियत तिथि के दिन, समारोह-पूर्वक दधिवाहन को चम्पा का राजा बनाया गया। स्वयं सन्तानिक ने, दधिवाहन को राजमुकुट पहनाया। पश्चात् अपने दुष्कृत्यों का वर्णन करके, सन्तानिक ने उनके विषय में पश्चात्ताप किया, और दधिवाहन की प्रशंसा करते हुए कहा, कि—मैंने, आज इन सुयोग्य तथा सज्जन नरेश का राज्य इन्हें लौटा कर, अपने दुष्कृत्यो का यत्किंचित् प्रायश्चित किया है। यह सब, इन सती का ही प्रताप है। इन सती की कृपा से ही, मेरे हृदय का परिवर्तन हुआ है, तथा यह सब रचना हुई है।

इस प्रकार संतानिक ने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया, जिसे सुन कर सब लोग प्रसन्न हुए, तथा सती चंदनबाला, दधिवाहन

और संतानिक की प्रशंसा करके, उन्हें धन्यवाद देने लगे। संतानिक के भाषण के उत्तर में, दधिवाहन ने भी संक्षिप्त भाषण देकर, संतानिक को, हृदय-परिवर्तन के लिए बधाई दी, एवं उसकी प्रशंसा की। इस प्रकार राज्याभिषेक-महोत्सव समाप्त हुआ, तथा दधिवाहन और संतानिक, आनंद से कौशाम्बी में रहने लगे।
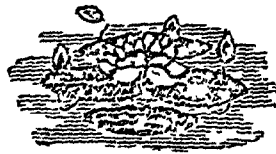
उच्च-ध्येय ।

किसी भी व्यक्ति को—जो पहले चाहे कैसे भी आचरण का रहा हो—जब श्रेष्ठ आचरण रुच जाता है, वह किसी श्रेष्ठ आचरण की श्रेष्ठता को हृदय से स्वीकार लेता है, तब वह उस श्रेष्ठ आचरण को अपनाता ही है। यदि कोई व्यक्ति, किसी श्रेष्ठाचरण की श्रेष्टता को मुख से तो स्वीकार करता है, लेकिन उसे अपनाता नहीं है, तो उसके लिए यही कहा जावेगा, कि या तो उसकी आत्मा दुर्बल है, अथवा वह केवल ऊपर से ही श्रेष्ठाचरण को श्रेष्ठ कहता है, हृदय से उसकी श्रेष्ठता नहीं स्वीकारता। यदि उसकी आत्मा दुर्बल न हो, वह स्वयं द्वारा आचरित बुरे आचरण से परास्त न हो गया हो, उससे अत्यधिक प्रभावित न हो, तो जिसे वह श्रेष्ठ मानता है, उसको न अपना कर, अश्रेष्ठाचरण में कदापि नही रह सकता। और जो व्यक्ति केवल ऊपर से ही श्रेष्ठता स्वीकार करता है, हृदय में उसके

विपरीत भाव रखता है, वह व्यक्ति तो पाखण्डी है। उसके विषय में तो, कुछ कहना ही नहीं है।

जब दुराचारी व्यक्ति भी, श्रेष्ठाचरण की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेने पर, दुराचरण को त्याग कर श्रेष्ठाचरण को ही अपनाता है, श्रेष्ठाचार की उपेक्षा नहीं करता, तो जो श्रेष्ठाचार की श्रेष्ठता भी मानता है, और उसको अपनाये हुए भी है, वह श्रेष्ठाचार को कब त्याग सकता है! संसार में बहुत से ऐसे दुर्बल-हृदय लोग भी होते हैं, जो श्रेष्ठाचार की श्रेष्ठता को मानते हुए, और उसका अनुगमन करते हुए भी उसे त्याग देते हैं, लेकिन ऐसे लोग अपवाद-स्वरूप हैं, इसलिये यहाँ उनका वर्णन नहीं है। यहाँ तो उन वीरात्मा के विषय में कहा जाता है, जो पत्थर की लकीर की तरह अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हैं।

चंदनवाला को, उसकी माता ने बचपन से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी थी। उसने, चंदनवाला मे विवाह की भावना को जन्म ने ही नहीं दिया था। उसका विचार था, कि मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी रह कर, स्त्री-पुरुषों के सामने एक उच्चतम आदर्श रखे। उसने, इस विचार से चंदनवाला को ब्रह्मचर्य की ही शिक्षा दी थी; और चंदनवाला के हृदय में भी, माता की शिक्षा पूर्णतः स्थान कर चुकी थी, उसको अपनी माता की शिक्षा पर किंचित् भी संदेह या अविश्वास नहीं था। ब्रह्मचर्य का पालन न करने

पर संसार में कैसी-कैसी घटनाएँ घटती है, इस बात को भी वह धारिणी की मृत्यु के समय, रथी के यहां, वेश्या के व्यवहार से, और धनावा सेठ के यहाँ भली प्रकार जान चुकी थी। इस कारण माता की शिक्षा पर, उसका विश्वास और भी बढ़ गया था। पश्चात्, भगवान महावीर का दर्शन करने से तो, उसमें और भी अधिक पवित्रता आगई थी। इस कारण वह, ब्रह्मचर्य को छोड़ कर, विवाह-बंधन में पड़ना कैसे स्वीकार कर सकती थी! फिर भी लौकिक रीति के अनुसार, कन्या का विवाह करने के विषय में, माता-पिता को चिंता होना स्वाभाविक ही है। इस लिये दधिवाहन को, चंदनबाला के विवाह की चिता हुई ही।

एक दिन संतानिक ने देखा, कि महाराजा दधिवाहन किसी गम्भीर विचार में पड़े हुए हैं। यह देख कर संतानिक, दधिवाहन के पास गया। उसने, दधिवाहन की विचार-मग्नता भंग करके दधिवाहन से कहा, कि—महाराज, आज आप किस विचार में पड़े हुए थे? मैंने, इतने दिनों में आपको आज की तरह विचार मग्न कभी नहीं देखा। यदि मुझ से गुप्त रखने योग्य न हो, तो मैं जानना चाहता हूँ, कि आप किस विचार में पड़े हुए थे?

सन्तानिक का यह प्रश्न सुन कर, उत्तर में दधिवाहन ने कहा, कि—आपसे छिपाने योग्य कोई बात नहीं है; वल्कि जिस विषय में मैं विचार कर रहा था, वह विषय आपके लिए भी

विचारणीय है। मैं यही सोचत था, कि चंदनबाला विवाह के योग्य हो गई है, अतः इस विषय में क्या करना चाहिए! यद्यपि मुझे यह मालूम है, कि चंदनबाला को उसकी माता ने ब्रह्मचर्य की ही शिक्षा दी है। इस विषय में, चंदनबाला की माता से मेरी अनेक बार बातचीत भी हो चुकी है, लेकिन उस बातचीत को बहुत समय बीत चुका है। उस समय चंदनबाला छोटी थी, और अब बड़ी हुई है। अब वह अपने विषय मे, किसी प्रकार का निर्णय करने की अधिकारिणी हो चुकी है! इसलिए उस समय की बातचीत के आधार पर, इस समय भी चंदनबाला से किसी प्रकार की बातचीत न करना, अनुचित है। आज चंदनबाला की माता नही है, परन्तु उसकी मौसी तो मौजूद है। माता और मौसी, समान ही हैं, इसलिए इस विषय मे आप भी अपनी सम्मति प्रकट कीजिये, और चंदनबाला की मौसी की भी सम्मति लीजिये। फिर जैसा ठीक जान पड़े उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। मेरी समझ से तो चंदनबाला का विवाह बड़े समारोह से करना चाहिए, जिसमे अपना अब तक का सब खेद भी मिट जावे, और वह भी सुखी हो।

दधिवाहन का कथन सुन कर, संतानिक प्रसन्न हुआ। उसने दधिवाहन के कथन का समर्थन किया, और मृगावती को बुला कर, उसे भी सब बातों से परिचित किया। मृगावती ने भी,

यह कह कर दोनों की बातों का समर्थन किया, कि वास्तव में अब चंदनबाला विवाह के योग्य होगई है, इसलिये उसका विवाह कर देना ही उत्तम है। इस प्रकार तीनों इस निश्चय पर तो आये कि चंदनबाला का विवाह करना, लेकिन चन्दनबाला से स्वीकृति लेने का प्रश्न शेष रह गया। इसके लिये दधिवाहन ने मृगावती से कहा, कि विवाहादि कार्यों के विषय में, स्त्रियाँ जिस चातुरी से काम लेती हैं, वैसी चातुरी पुरुष नहीं दिखा सकते; और यह बात, कन्या के विवाह से अधिक सम्बन्ध रखती है। इसलिए चंदनबाला से विवाह करने की स्वीकृति लेने का भार, आप अपने पर लीजिये! चन्दनबाला से, आप ही जैसा उचित समझें, वैसा कहिए। यदि आप चाहेंगी, तो हम दोनो भी आपके कथन का समर्थन करने के लिए आपके साथ रहेंगे, परन्तु उससे बातचीत करने का विशेष भार तो, आप ही पर होगा।

दधिवाहन की इस बात का भी, सन्तानिक ने अनुमोदन किया। मृगावती ने भी, चंदनबाला से बातचीत करने का भार अपने पर लिया। अंत में यह निश्चय हुआ, कि अपन तीनों अमुक समय में चंदनबाला के पास चलें, और उससे बातचीत करके, विवाह करना स्वीकार करावें।

निश्चित समय पर मृगावती, संतानिक, और दधिवाहन, चन्दनबाला के पास गये। इन तीनों का आगमन जानकर, चंदन-

वाला को प्रसन्नता हुई। उसने हर्ष-सहित तीनो को प्रणाम करके, योग्य आसन पर बैठाया। फिर हाथ जोड़ कर उनसे कहने लगी, कि आज मेरा अहोभाग्य है, जो आप तीनों का एक साथ आगमन एवं दर्शन हुआ। मैं जानना चाहती हूँ, कि आप लोगो ने किस उद्देश्य से पधारने का कष्ट किया है ? यदि आप लोगों की इच्छानुसार, मै कोई काम कर सकी, तो स्वयं को वड़ी सद्भागिन समझूँगी।

चन्दनवाला का कथन सुनकर, तीनो को वहुत प्रसन्नता हुई चंदनवाला के कथन के उत्तर में मृगावती कहने लगी, कि—पुत्री, तुम सब योग्य हो। तुमने जो वचन कहे हैं, वे तुम्हारे योग्य ही हैं ! तुमसे हमें, ऐसे ही वचनो की आशा थी। हम जिस उद्देश्य से आये हैं, तुम्हारे वचनो से उसके पूरा होने की भी पूर्ण आशा हो चुकी है। तुम्हारी कृपा से ही, इन दोनो का मिलना हुआ है, और ये मित्र बन सके है। अब हमारी एक इच्छा और है। हमें विश्वास है, तुम हमारी उस आशा को भी पूरी करोगी !

मृगावती की वात सुनकर, चंदनवाला बोली, कि—मातृ-भगिनी, आपने मेरी प्रशंसा में जो कुछ कहा है, वह आपका वड़प्पन है। वड़े लोग, छोटों को इस तरह वड़ाई दिया ही करते हैं; इसलिए आपके कथन के उत्तर में, मुझे कुछ कहने की

जरूरत नहीं है मुझे आप जो आज्ञा देंगी, वह भी धर्म-युक्त ही होगी। क्योंकि, माता अपनी पुत्री को अधर्म युक्त कोई आज्ञा नहीं दे सकती, और जो आज्ञा धर्मयुक्त है, उसका पालन करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

चंदनवाला का कथन समाप्त होने पर, मृगावती कहने लगी, कि—हम लोग जिस धर्म का पालन कर रहे हैं, हमारा कथन भी अवश्य ही उस धर्म के अनुसार होगा। हम इस समय, गार्हस्थ्य—धर्म का पालन कर रहे है। इसलिए हमारी बात भी उसके अनुकूल ही होगी। संतान के वयस्क और योग्य होने पर, उसका विवाह करना, धर्म है। इस धर्म की प्रेरणा से ही मैं तुमसे यह कहने के लिये आई हूँ, कि तुम्हारा शरीर विवाह के योग्य होगया है। इस अवस्था के होजाने पर भी, यदि कन्या अविवाहित रहती है, तो उसके माता—पिता आदि पर अपवाद लगाया जाता है, तुम्हारे प्रताप से और सब आनंद तो हुआ ही है, अब हमारी इच्छा आपके विवाहोत्सव का आनंद लेने की है। परंतु हमारी इस इच्छा की पूर्ति, तुम्हारी स्वीकृति के आश्रित है। गार्हस्थ धर्म के अनुसार, संतान की स्वीकृति के विना उसका विवाह करना अपराध है पाप है। संतान, अपने हिताहित का विचार कर सकने योग्य होजावे, तव उसकी स्वीकृति लेकर, उसकी इच्छानुसार, और उसके अनुरूप वर या कन्या से, उसका

विवाह किया जा सकता है। जबतक संतान अपने हिताहित के विषय में विचार नहीं कर सकती, तब तक उससे ली गई स्वीकृति भी प्रमाणिक नहीं हो सकती, और हिताहित के विषय में विचार करने योग्य होने पर उससे स्वीकृति न लेना भी, अनुचित है। तुम, योग्य हो; अपने हिताहित का विचार करने में पूर्ण समर्थ हो, इसीलिए हम तीनों तुमसे स्वीकृति लेने के लिए आये हैं। हमारा विश्वास है, कि तुम स्वीकृति देकर हमारी इच्छा पूर्ण करोगी।

इतना कह कर, मृगावती चुप हो गई। तब महाराजा संतानिक कहने लगे, कि—रानी ने जो कुछ कहा है, वह अक्षरशः ठीक है। हमारे हृदय में, तुम्हारा विवाहोत्सव देखने की बहुत उत्कण्ठा है। संतानिक के यह कह चुकने पर, दधिवाहन कहने लगे, कि—पुत्री, वैसे तो तू स्वयं ही बुद्धिमती है, इसलिए तू, हमारे बिना कहे ही सब बातें जानती समझती है; फिर भी हम अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए, तुझ से कुछ कहते है। कन्या के विवाह के विषय मे, माता, सब बातों पर जिस तरह से विचार कर सकती है, उस तरह से, पिता विचार नहीं कर सकता। आज तेरी माता नहीं है, लेकिन तेरी मौसी तो मौजूद है। मौसी और माता, समान ही मानी जाती हैं। बल्कि कई अंश मे तो, मौसी, माता से भी बढ़ कर है। इसलिए तुझे, इनकी आज्ञा-

नुसार कार्य करना उचित है। इनने जो कुछ कहा है, वह तेरे हित को दृष्टि मे रख कर ही कहा है। इनके कथन से, मैं भी पूर्णतः सहमत हूँ। मेरी भी यह प्रबल इच्छा है, कि किसी योग्य पुरुष के साथ तेरा विवाह करके अपने कर्त्तव्य का पालन करूँ, और विवाहोत्सव देख कर, अपने हृदय को प्रसन्न करूँ। इसलिए महारानी मृगावती के कथनानुसार विवाह करना स्वीकार करके, हम सब की अभिलाषा पूर्ण कर।

यह कह कर, दधिवाहन भी चुप हो गये। तीनो, चन्दन-बाला के मुँह की ओर देखने लगे, कि यह क्या उत्तर देती है। तीनों की बातो को चन्दनबाला, स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ सुनती रही, और उनकी बात समाप्त होने पर कहने लगी, कि—आप तीनो का कथन, योग्य ही है। माता के समान मौसी को, और पिता के समान मौसा को, मेरे विवाह की चिन्ता होना स्वाभाविक है, तो जो पिता है, उनको चिन्ता क्यों न होगी! साधारण लोगों को भी, अपनी युवती कन्या देखकर उसके विवाह की चिंता होती है, इसलिए आप लोगों को मेरे विवाह की चिंता हो, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस प्रकार की चिंता करना, गृहस्थों का कर्त्तव्य ही है। साथ ही यह भी कर्त्तव्य है, कि संतान की स्वीकृति लिये बिना उसका विवाह न करें, इसीलिए जब तक संतान अपने हिताहित का विचार करने योग्य नहीं

हो जाती, तब तक उसका विवाह नहीं किया जाता है। इस प्रकार आपका कथन, और मुझसे स्वीकृति चाहना, उचित ही है। मैं, विवाह करने को बुरा भी नहीं कहती हूँ। गार्हस्थ्य जीवन बिताने के लिए, विवाह करना एक आवश्यक बात है। आदि तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ने भी, विवाह किया था। मेरे हाथ से दान लेने की कृपा करने वाले, भगवान महावीर ने भी विवाह किया था। और तो और, जिन से मेरा जन्म हुआ है, उन माता-पिता ने भी विवाह किया था! इस लिए मैं, विवाह प्रथा की निंदा नहीं कर सकती, किन्तु यह स्वीकार करती हूँ, कि जिनमें ब्रह्मचर्य-पालन की क्षमता नहीं है, उनके लिए विवाह करना आवश्यक है; लेकिन यह स्वीकार करती हुई भी, मै यही कहूँगी, कि श्रेष्ठ तो ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य-पालन की शक्ति न होने पर भी, मैं ब्रह्मचर्य स्वीकार करने का नहीं कहती, परंतु इस शक्ति के होते हुए भी ब्रह्मचर्य न पाल कर विवाह करना, ऊपर से नीचे गिरना है। मेरी माता ने, मुझको जन्म से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी है। इस कारण मेरी नस-नस में, ब्रह्मचर्य घुसा हुआ है। मैं ब्रह्मचर्य के सामने विवाह को हेय समझती हूँ। मेरे लिए आप लोग आदरणीय हैं, और आप लोगों की आज्ञा पालनीय है; फिर भी आप लोगो के कहने से मैं ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन त्याग कर, वैवाहिक जीवन मे नहीं पड़ सकती। न आप ऐसे सुयोग्य माता पिता

अपनी पुत्री को ब्रह्मचर्य के उच्च ध्येय से गिरा कर, वैवाहिक जीवन में डालना चाहेंगे। इसलिए आप, अपनी आज्ञा के विषय में पुनः विचार करें। मेरा विश्वास है, कि आप लोग भी मेरे ब्रह्मचर्य के विचार को ही प्रोत्साहन देंगे। इसके सिवा, मैं विवाह करूं भी किस पुरुष के साथ! किस पुरुष के लिए तेल उबटन लगाऊं! संसार में विवाह के समय तेल चढाया जाता है। कन्या पर, जिस पुरुप के नाम का तेल चढ़ाया जाता है, वह कन्या, संसार में केवल उसी पुरुष को शुभ मानती है, दूसरे पुरुषों को शुभ नही मानती। लेकिन मैं तो, इस प्रकार के शुभाशुभ से ही निकल चुकी हूँ! मेरे लिए कोई अशुभ रहा ही नहीं फिर मै किसी एक पुरुष के नाम का अपने पर तेल चढ़ा कर, अन्य पुरुषो को अशुभ कैसे मान सकती हूँ! आप लोगों को, मैने अपने अनुभव में आई हुई सब बातें सुनाई ही है। शुभाशुभ के झंझट से न निकलने पर क्या होता है, यह बताया ही है। इस प्रकार के अनुभव के पश्चात् भी, मैं शुभाशुभ में कैसे रह सकती हूँ! विवाह के समय जिस पुरुप के नाम का उबटन चढ़ाया जाता है, स्त्री को, उस पुरुष की दासी होकर रहना, उसी के हित का विचार करना, और उसकी प्रसन्नता में ही प्रसन्न रहना होता है। यह स्त्रियों का साधारण धर्म है, जो पतिव्रत धर्म-के नाम से प्रसिद्ध है। जो स्त्री, विवाह-बंधन में बँध कर भी

पतिव्रत-धर्म का पालन नहीं करती, वह पतित मानी जाती है। वास्तव में. है भी ऐसा ही। प्रत्येक कार्य के नियमोपनियम का पालन तो, करना ही चाहिये। इसी के अनुसार, जब विवाह किया है, तो पतिव्रत धर्म का भी पालन करना ही चाहिए। फिर तो, पति से जो उचित या अनुचित विरोध रखता है, उसका मुंह भी न देखना चाहिये। रावण, राम का शत्रु था; इसीलिए सीता ने उसका मुंह भी नहीं देखा। रावण तो अन्यायी-अत्याचारी था। लेकिन यदि पति अन्यायी-अत्याचारी हो, और वह किसी सज्जन पुरुप से अनावश्यक ही विरोध मानता हो, तो पतिव्रत धर्म के अनुसार स्त्री को भी, उस सज्जन से विरोध रखना ही पड़ता है। मुझसे यह कैसे हो सकता है, कि किसी को मित्र और किसी को शत्रु मानूं! मेरे लिए तो, संसार के सभी पुरुप समान हैं। मैं तो, सभी का हित और कल्याण चाहती हूँ। विवाह करने के पश्चात, मैं सभी का हित और कल्याण नहीं चाह सकती। ऐसी दशा में, किस पुरुप के नाम का तेल-उबटन चढ़ाऊँ? किसकी पत्नी बन कर, केवल उसी का हित चाहूँ!

एक बात और है। मेरी माता ने, शांति—समर विषयक जो शिक्षा दी थी, मैंने, उसके अनुसार कार्य करके तो माता का उद्देश्य पूरा कर दिया; परन्तु जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए माता ने मुझे बचपन से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी थी, अभी वह उद्देश्य

मैंने पूरा नहीं किया है, और बिना ब्रह्मचर्य के, वह उद्देश्य पूरा भी नही हो सकता। माता ने, संसार में फैली हुई पुरुषों की उच्छ्रृंखलता, और स्त्रियों की पतितावस्था देख कर, मुझे उनमें साम्यभाव फैलाने के उद्देश्य से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी थी। मैंने, माता के इस उद्देश्य को, अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है। ऐसी दशा में मैं, विवाह करना कैसे स्वीकार कर सकती हूँ!

चंदनबाला का कथन सुनकर, मृगावती, संतानिक, और दधिवाहन, साश्चर्य प्रसन्न हुए। मृगावती कहने लगी, कि—हम दोनों, ब्रह्मचर्य को बुरा नही समझते। विवाह करने की अपेक्षा, ब्रह्मचर्य पालन करना श्रेयस्कर है। हम भी, ब्रह्मचर्य को आदर की दृष्टि से देखते हैं, लेकिन ब्रह्मचर्य का पालन करना, कोई सरल कार्य नही है! जलती हुई अग्नि को पी जाना, और भुजाओं से तैर कर समुद्र को पार करना तो सरल भी हो सकता है। ब्रह्मचर्य का पालन करना, इनसे भी कठिन है। ब्रह्मचर्य की कठिनाई को दृष्टि मे रख कर ही, हम आपसे विवाह करने का अनुरोध करते है। जैसे कोई बालक स्वयं की शक्ति से परे का काम करना चाहे, तो माँ-बाप उसको वह कार्य करने से रोकते हैं, उसी तरह तुम्हे भी, हम ब्रह्मचर्य पालन से रोकते हैं। बहुत से लोग, क्षणिक आवेश में पड़कर ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा तो कर डालते हैं, लेकिन फिर, काम-प्रकोप से पराजित हो कर भ्रष्ट हो जाते हैं।

ऐसे लोग, स्वयं का भी अहित करते हैं. और जनता का भी अहित करते हैं। तुम्हारे द्वारा ऐसा करने का समय आवे, और कुलको कलंक लगे, यह हम नहीं चाहते। इसलिए भी, हम तुमसे विवाह करने का ही कहते है।

सन्तानिक और दधिवाहन ने भी, मृगावती की बात को पुष्ट किया। वे भी कहने लगे, कि वास्तव में तुम यह नहीं जानती, कि ब्रह्मचर्य का पालन करने मे किन और कैसी कठिनाइयो का सामना करना होता है। उन कठिनाइयो से भय खाकर, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी पतित होजाते हैं; तो तूतो आखिर कन्या ही है। हमारे निष्कलंक वंश में उत्पन्न हुई कन्या द्वारा, ब्रह्मचर्य की ओट में दुराचार का सेवन, नितान्त लज्जास्पद बात होगी। इसलिए तुम ब्रह्मचर्य पालन का साहस मत करो किन्तु विवाह करना स्वीकार कर लो। विवाह करने के पश्चात भी, यदि तुम नीति-पूर्वक जीवन व्यतीत करोगी, तो गृहस्थाश्रम में पाले जानेवाले ब्रह्मचर्य का पालन कर सकोगी।

तीनों की बातों के उत्तर मे चंदनबाला कहने लगी कि वास्तव में ब्रह्मचर्य का पालन करना सरल नहीं है; किंतु आपने जैसा बताया, उससे भी ज्यादा कठिन है; और मैं भी, ब्रह्मचर्य को कठिन समझ कर ही स्वीकार कर रही हूँ। ब्रह्मचर्य की ओट में अब्रह्मचर्य का सेवन न हो, इसकी चिता रखना, उचित और

आवश्यक है। ऐसा करने वाले लोग, अपने साथ ही दूसरे लोगों को भी डुबाते है। परंतु मेरी ओर से आप इस प्रकार का भय मत करिये। मुझे, जन्म से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी गई है। मैंने, ब्रह्मचर्य को ही अपना मुख्य आचरण बना रखा है। विषय-विकार का वातावरण, मेरे समीप आने भी नहीं दिया गया है, न मैंने ही अपने मन को उस ओर जाने दिया है। इसलिए मुझमें ब्रह्मचर्या पालन की क्षमता है, और अब तो भगवान महावीर का दर्शन करने से, मेरी यह शक्ति और बढ़ गई है। मेरी बुद्धि, और मेरी वाणी, भगवान महावीर की तपाग्नि में पड़ कर पवित्र हो गई है। अब उसमें, किसी प्रकार का विकार रहा ही नही है। इसलिए आप मेरे ब्रह्मचर्य पालन के विषय में, किसी भी प्रकार का सन्देह न करे। मै किसी भी समय ब्रह्मचर्य से पतित नही हो सकती। देव दानव यक्ष राक्षस आदि कोई भी, मुझको ब्रह्मचर्य से पतित करने मे समर्थ नही हो सकता। मै, महारानी धारिणी की पुत्री हूँ। महान् संकट के समय भी अपने चारित्र की रक्षा किस तरह की जा सकती है, वह उपाय भी, माता ने मुझे बता दिया है। इस लिए आप, इस विषय में किंचित भी चिन्ता न करें।

चन्दनबाला का कथन सुन कर, तीनों ही को बहुत प्रसन्नता हुई, और वे चन्दनबाला को धन्यवाद देकर कहने लगे, कि—आपकी इस पवित्र भावना की जितनी भी प्रशन्सा की जावे,

कम है। हम स्वयं ही यह अनुमान करते थे, कि आप पवित्र-भावना से अपवित्र-भावना में नहीं जा सकतीं, फिर भी हमने, अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए ही आपसे विवाह की स्वीकृति चाही थी, और ब्रह्मचर्य पालने से रोका था। हम, अपने इस कार्य के लिए आपसे क्षमा चाहते हैं!

इस प्रकार चन्दनबाला को धन्यवाद देकर मृगावती कहने लगी, कि—हे सती, वैसे तो मेरे मे धर्म के प्रति पहले से ही श्रद्धा है, लेकिन आज आपकी बातें सुन कर, वह श्रद्धा और बढ़ गई है! मैं सोचती हूँ, कि आपने सांसारिक विषय-भोग का अनुभव किये बिना ही उनको त्याग दिया, लेकिन मैं, उनका अनुभव करके भी उन्हें अब तक नहीं त्याग सकी। सच्ची बात तो यह है, कि अब तक मेरे सामने आपकी तरह ब्रह्मचर्य का आदर्श रखने वाला कोई न था। आज आपके मुख से ब्रह्मचर्य पालन का निश्चय सुन कर, मुझको भी यह विचार हुआ है, कि मैं, संसार के विषय-भोग मे कब तक पड़ी रहूँगी। इसलिए आज से, मैं आपको पुत्री के बदले गुर्वी (गुरवानी, या गुरुणी) मान कर यह निश्चय करती हूँ, कि आज से मै भी ब्रह्मचर्य का ही पालन करूंगी, विषय-भोग मे न रहूँगी, और जिस मार्ग को आप अपनावेंगी, उसी मार्ग को मै भी आदर्श मानूंगी।

मृगावती का निश्चय सुन कर, सन्तानिक को भी प्रसन्नता

हुई। वह कहने लगा, कि महारानी के इस निश्चय का मैं भी समर्थक हूँ। इतना ही नहीं, किन्तु यह भी निश्चय करता हूँ, कि आज से मैं भी ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। अब, अब्रह्मचर्य में कदापि न रहूँगा।

सन्तानिक और मृगावती की प्रतिज्ञा सुन कर, चन्दनबाला और दधिवाहन ने, उन दोनों को धन्यवाद दिया। फिर दधिवाहन कहने लगा, कि—वैसे तो जब से मेरा विवाह महारानी धारिणी के साथ हुआ था, तभी से मैं नीति-पूर्वक जीवन व्यतीत करता रहा हूँ; लेकिन आज यह प्रतिज्ञा करता हूँ, कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। कभी भी, अब्रह्मचर्य की ओर पाँव न जाने दूंगा।

दधिवाहन के इस निश्चय की, चन्दनबाला मृगावती और सन्तानिक ने सराहना की। इस प्रकार, चन्दनबाला से विवाह की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए आये हुए सन्तानिक मृगावती और दधिवाहन, चन्दनबाला के निश्चय से स्वयं भी ऐसे प्रभावित हुए, कि उनने भी ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा कर ली। प्रसन्न होते हुए वे तीनों, चन्दनबाला के समीप से अपने-अपने स्थान को गये।

दधिवाहन और सन्तानिक, प्रेमपूर्वक रहने लगे। चम्पा की प्रजा, बार-बार दधिवाहन के पास आकर, उससे चम्पा चलने

का अनुरोध करने लगी। वहाँ के लोग दधिवाहन से कहते, कि—चम्पा की प्रजा से आपका बिछुड़ना, बहुत दिनों से हुआ है। यदि आपका पता न होता, या आप न आते, तब तो दूसरी बात थी, लेकिन अब आपको आया जान कर, और यह जान कर कि आप पुनः हमारे स्वामी हुए है, चम्पा के लोग, आपका दर्शन करने के लिए लालायित हैं। इसके सिवा, राजा के दूर रहने पर, प्रजा की रक्षा भी पूरी तरह नहीं हो सकती। इसलिए अब आप, चम्पा पधारने की कृपा करें।

चम्पा के लोग, दधिवाहन से इस तरह का अनुरोध अनेक बार कर चुके थे, परन्तु संतानिक के प्रेम से बँधे हुए दधिवाहन का यह साहस नहीं होता था, कि वह संतानिक से विदा माँगे। कुछ ही दिनों में, संतानिक को चम्पा की प्रजा का अनुरोध ज्ञात हुआ; इससे उसने विचार किया, कि चम्पा की प्रजा का अनुरोध उचित ही है। वास्तव मे अब, महाराजा दधिवाहन का चम्पा जाना ही अच्छा है। इस प्रकार विचार कर उसने दधिवाहन से कहा, कि—महाराज, आपके वियोग से चम्पा की प्रजा दुःखी है। अब उसको अधिक समय तक दुःखित रखना, अनुचित है। वैसे तो मैं स्वयं भी आपसे अलग नहीं होना चाहता, परंतु जब अपने सिर पर प्रजा की रक्षा का भार है, तब प्रेमवश कर्त्तव्य की उपेक्षा करना, ठीक नहीं। प्रजा की पूर्ण रक्षा तभी की जा सकती है,

जब उसके समीप रहा जावे, और वह बिना किसी कठिनाई के अपना दु:ख-दर्द सुना सके। इसीलिए आपसे अलग होने की इच्छा न होने पर भी, अब मै आपका चम्पा पधारना ही ठीक समझता हूँ। मै आपको अकेले ही चम्पा नहीं भेजना चाहता, किंतु मैं स्वयं भी आपके साथ चलना चाहता हूँ। वहाँ चम्पा की प्रजा से अपने अपराधों की क्षमा मांग कर, मैं अपने पाप का यत्किंचित् प्रायश्चित् करूंगा, और तब कौशाम्बी को वापस लौट आऊंगा।

संतानिक का कथन सुन कर, दधिवाहन मुसकराये। उन्होंने संतानिक को उत्तर दिया, कि आप जैसा भी ठीक समझिये, वैसा ही करिये। मैं तो आपके प्रेम में ऐसा बँधा हूँ, कि चम्पा की प्रजा का बहुत अनुरोध होने पर भी, आपसे यह न कह सका, कि मैं चम्पा को जाऊं!

संतानिक ने, चम्पा जाने की तयारी कराई। संतानिक और दधिवाहन ने चंदनबाला के पास जाकर उससे कहा, कि—आप भी चम्पा को पधारिये, और जो राजमहल बहुत दिनों से सूना पड़ा है, उसे सुशोभित करिये, तथा महल के दास-दासी, और चम्पा की प्रजा को आनंदित करिये। संतानिक और दधिवाहन के कथन के उत्तर में चंदनबाला ने कहा, कि मैं अभी यहीं रहना चाहती हूँ। मेरा विचार, इस समय चम्पा आने का नहीं है। यहां मुझे भगवान का दर्शन हुआ है, इसलिए अभी मैं यहीं

रहना चाहती हूँ। आप लोग, आनंद से चम्पा जाइये। चम्पा, मुझे प्रिय है! वह मेरी जन्मभूमि है। मेरा यह शरीर, वहीं के जलवायु और पृथ्वी से बना है, इसलिए चम्पा का मुझ पर अनन्त उपकार है। फिर भी, मेरे लिए अभी चम्पा चलने का अवसर नहीं आया है। मैंने, भगवान महावीर का मार्ग अपनाने का निश्चय किया है! इसलिए जब भगवान महावीर को केवल-ज्ञान प्राप्त होगा, तब मैं संयम स्वीकार करूंगी, और उस समय चम्पा आऊंगी।

चंदनबाला ने अपने उत्तर से, दधिवाहन और संतानिक को सन्तुष्ट कर दिया। वे दोनों, चंदनबाला से चम्पा चलने के लिए विशेष अनुरोध न कर सके। दोनो का उचित अभिवादन करके चंदनबाला ने उन्हे अपने स्थान से विदा किया।

दधिवाहन को लेकर संतानिक, राजसी ठाट-बाट के साथ चम्पा को चला। जिस चम्पा पर एक दिन वह चढ़ाई करके गया था, अब वही चम्पा दधिवाहन को सौंपने के लिए जा रहा है। हमारे महाराजा दधिवाहन आ रहे हैं, यह समाचार सुन कर, चम्पा की प्रजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। उसने, दधिवाहन के स्वागत की, पूरी तरह तयारी की। चम्पा के राज्य से प्रवेश करते ही, प्रजा, दधिवाहन का स्वागत करने लगी। मार्ग में प्रजा द्वारा किया गया स्वागत स्वीकार करते हुए, दधिवाहन और

संतानिक ने, समारोह-पूर्वक राजमहल में प्रवेश किया। जो राजमहल बहुत दिनों से सूना था, वह राजमहल, दधिवाहन के आने से, जयनाद और हर्षध्वनि से गूंज उठा। संतानिक ने, राजमहल में पहले से ही सब तयारी करा रखी थी। राजमहल को पूर्ववत् सजा दिया, और उसमें आवश्यक व्यवस्था भी करादी थी। राजमहल में पहुँच कर उसने, महाराजा दधिवाहन को राज्यासन पर बैठाया; और स्वयं सामने खड़ा रहा। दधिवाहन को राज्यासन पर बैठा देखकर, प्रजा को बहुत ही आनन्द हुआ। उसने, जयध्वनि से महल को कंपित कर दिया। प्रजा के शान्त होने पर सन्तानिक ने पहले की तरह दधिवाहन की प्रशन्सा, और अपने दुष्कृत्यों का वर्णन करके, अपने व्यवहार के लिए चम्पा की प्रजा से क्षमा माँगी। चम्पा की प्रजा के प्रतिनिधि ने भी, सन्तानिक के भाषण का उचित उत्तर दिया। पश्चात्, दधिवाहन ने खड़े होकर, कौशम्बी तथा सन्तानिक की प्रशन्सा की, और इस प्रकार शिष्टजनो का कर्त्तव्य पूरा किया।

दधिवाहन, राज कार्य करने लगा। दधिवाहन के समीप रहता हुआ संतानिक, उसकी कार्य-व्यवस्था देखकर शिक्षा लेने लगा। कुछ दिन चम्पा में रहकर वह, कौशम्बी को वापस लौट आया। दोनों नरेश, आनंदपूर्वक दोनों जगह का राज्य करने लगे, और प्रजा को सुख देने लगे।

दीक्षा और केवलज्ञान ।

श्रेष्ठ लोग, संसार-व्यवहार त्याग कर अकर्मण्य नहीं बनते, किन्तु एक दूसरे ही व्यवहार मे पड़ते है। संसार-व्यवहार त्याग कर, वे जिस व्यवहार को अपनाते है, वह पारलौकिक व्यवहार कहलाता है। वे, संसार-व्यवहार को, पारलौकिक-व्यवहार के लिए ही त्यागते हैं। शरीर को सुख देने, एवं अकर्मण्य बन कर बैठ रहने के लिए नहीं त्यागते। संसार-व्यवहार त्याग कर वे, इस बात के प्रयत्न मे लगते हैं, कि जिससे फिर संसार-व्यवहार में न पड़ना पड़े। इसके सिवा, जब तक संसार-व्यवहार मे थे, तब तक स्वयं का, कुटुम्ब का, समाज का, अथवा देश का ही हित देखते थे, इसी के लिए प्रयत्नशील रहते थे, परन्तु संसार-व्यवहार से निकलने के पश्चात्

वे, प्राणिमात्र का हित देखते हैं, और जिस तरह संसार के समस्त प्राणियों का हित हो, वैसा ही प्रयत्न करते हैं। संसार-व्यवहार में रहते हुए वे, अपने अथवा अपने प्रियजनों के लिए किसी दूसरे जीव का अहित भी कर डालते थे, लेकिन संसार व्यवहार से निकलने के पश्चात्, किसी भी दशा में, किसी भी कारण से, और किसी भी जीव का, अहित नहीं करते; किन्तु, उसी मार्ग को अपनाते हैं, जिसको अपनाने से किसी भी जीव का अहित न हो, अपितु सभी जीवों का हित हो। इसके लिए वे जिस मार्ग को अपनाते हैं, उसका नाम संयम है। श्रेष्ठ लोग, संयम को अपनाने के लिए ही संसार-व्यवहार त्यागते हैं, अकर्मण्य बनने, शरीर को आराम देने, अथवा विषयभोग में आने वाली बाधा को हटाने के लिए संसार-व्यवहार नहीं त्यागते।

चन्दनबाला ने भी, संसार-व्यवहार में न पड़ कर ब्रह्मचर्य पालने का निश्चय किया, और भगवान् को केवलज्ञान होते ही संयम लेने की इच्छा प्रकट की, इसलिए वह, भगवान् महावीर को केवलज्ञान होने की प्रतीक्षा करने लगी। वह इस बात के लिए उत्सुक थी, कि भगवान् महावीर को केवलज्ञान कब हो, और कब मैं उनके पास संयम लूँ!

चन्दनबाला के हाथ से मिले हुए अन्न से पारणा करके, भगवान् महावीर, उत्कृष्ट चरित्र का पालन करते हुए विचरने

लगे। भगवान महावीर को, संयम पालते हुए—छद्मस्थ-पन में—बारह वर्ष और तेरह पक्ष बीत गये। छद्मस्थावस्था की अन्तिम रात को भगवान् महावीर, जंभृका नगरी के बाहर, ऋजुवालिका नदी के तट पर, श्याम गृहपति के खेत के पास, शालि वृक्ष के नीचे गोदुहासन से विराजे हुए थे। उन्होंने, अष्टम गुण-स्थान में पहुँच कर शुक्लध्यान का अवलम्बन लिया था। उस समय भगवान् ने, कर्म के आवरणों को नष्ट करके बारहवें गुणस्थान तक का उल्लंघन कर, तेरहवें गुणस्थान में प्रवेश किया। तेरहवें गुणस्थान में प्रवेश करते ही, महानिर्मल और प्रतिपूर्ण केवलज्ञान प्रकट हुआ। भगवान् महावीर को केवलज्ञान हुआ है, यह जान कर इन्द्रादि देव, केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होंने, केवलज्ञान महोत्सव किया। समवशरण की रचना हुई। भगवान् महावीर ने धर्मोपदेश दिया, लेकिन उस समवशरण में मनुष्य और तिर्यक् आदि नहीं थे, इस कारण भगवान् का वह उपदेश सार्थक नहीं हुआ।

यहाँ से विहार करके भगवान् महावीर, निष्पापा नगरी पधारे। वहाँ, भगवान् का दूसरा समवशरण हुआ, और इन्द्रभूति आदि ११ गणधरों ने अपने ४४०० शिष्यों के साथ, भगवान् के पास से संयम स्वीकार किया।

भगवान् महावीर को केवलज्ञान होने का समाचार, सारे संसार में फैल गया। चन्दन-बाला ने भी, भगवान् को केवल-ज्ञान होने का समाचार सुना। यह समाचार सुन कर चंदनबाला प्रसन्न हुई। उसने सन्तानिक मृगावती आदि से कहा, कि—मैं, इसी समाचार की प्रतीक्षा में ठहरी हुई थी। अब भगवान् को केवलज्ञान प्राप्त हो चुका है. इसलिए मैं, इस संसार में एक क्षण भी नहीं ठहर सकती। अब मैं शीघ्र ही भगवान् का दर्शन करने, और उनसे संयम स्वीकार करने के लिए जाना चाहती हूँ। इसलिए आप लोग, मुझे विदा दीजिये। चन्दनवाला का कथन सुन कर, मृगावती और सन्तानिक प्रसन्न हुए। दोनों ने उसे धन्यवाद दिया, और उससे कहा, कि—हे सती, तूने संयम स्वीकार करने से पहले ही अनेक जीवों को सन्मार्ग पर लगाया है, तो अब तो तू भगवान् महावीर के पास संयम ले रही है, इसलिए अवश्य ही तेरे द्वारा वहुत से जीवों का उपकार और उद्धार होगा। इसलिए हम तेरे को इस उत्तम कार्य से नहीं रोकना चाहते, किन्तु यही कहते हैं, कि तेरी जैसी इच्छा हो, तू वैसा ही कर। इस प्रकार कह कर, दोनों ने, प्रसन्न मन से चंदनवाला को विदा दी। चन्दनबाला को विदा देते समय, मृगावती ने यह और कहा, कि—हे सती, इच्छा तो मेरी भी यही है, कि मैं भी भगवान महावीर की शरण में जाकर संयम स्वीकार करूँ, परन्तु

इस समय ऐसी परिस्थिति नही है, जिससे मेरी यह इच्छा पूर्ण हो। लेकिन मुझे विश्वास है, कि समय पाकर मैं भी संयम स्वीकार करूँगी! यह कहते कहते मृगावती की आंखों मे, आँसू भर आये। चंदनबाला ने उसको धैर्य बँधाया, और उससे कहा, कि आपकी यह भावना अवश्य सफल होगी, आप घबराइये मत।

सारे नगर मे यह समाचार फैल गया, कि सती चन्दनबाला संयम स्वीकार करने के लिए भगवान महावीर की शरण मे जारही है। यह समाचार सुनकर, धनावा सेठ, रथी, उसकी स्त्री, और मूलॉ आदि लोग राजमहल में एकत्रित होगये। चन्दनबाला ने, सब का योग्य आदर-सत्कार करके उन्हे धर्मपालन का उपदेश दिया; और फिर सब लोगो से घिरी हुई वह, समारोह पूर्वक कौशम्बी से बाहर आई। नगर से बाहर आकर सती चन्दनबाला ने, सब लोगो से विदा ली, तथा भगवान महावीर के समवशरण में जाने के लिए रवाना हुई।

मार्ग मे जनता को, भगवान महावीर की वाणी से लाभ उठाने का उपदेश देती हुई सती चन्दनबाला, भगवान महावीर के समवशरण मे उपस्थित हुई। भगवान का दर्शन करके, सती चन्दनबाला, बहुत प्रसन्न हुई। स्त्रियोचित स्थान पर बैठ कर, उसने, भगवान की भव-तारिणी वाणी सुनी, और फिर भगवान से प्रार्थना की, कि हे प्रभो, संसार के जीव जन्म-जरा-

मरण रूपी अग्निज्वाला से तप्त हो रहे हैं, तथा दुःख पा रहे हैं। मैं, संसार के इस दुःख से डर कर आपकी शरण आई हूँ। कृपा करके मुझे, संसार के दुःख से बचाइये।

चन्दनबाला की प्रार्थना सुन कर, भगवान ने, उसे संयम की दीक्षा दी। भगवान महावीर के पास दीक्षा लेनेवाली स्त्रियों में से, चंदनबाला सबसे पहली थीं। इसलिए भगवान ने उन्हें, साध्वी-संघ की नायिका बनाया।

समय पाकर मृगावती भी चन्दनबाला की शिष्या होगई। इसी प्रकार, काली, महाकाली, सुकाली आदि राजघराने की अनेक महिलाओं ने भी, चन्दनबाला के समीप संयम स्वीकार किया। चन्दनबाला, ३६ हजार साध्वियों के संघ की नायिका होकर, जनता का कल्याण करती हुई विचरने लगीं। साध्वी-वेश में एक राजकन्या द्वारा दिये गये उपदेश का, जनता पर कैसा अच्छा प्रभाव पड़ता होगा, और उस उपदेश से कितने लोगों का कल्याण हुआ होगा, यह तो अनुमान से ही जाना जा सकता है। संयम लेने के पश्चात् जब वह पूर्व कथनानुसार चम्पा को गई होगी, तब उनका दर्शन करके चम्पा की जनता को भी अवश्य ही अत्यधिक प्रसन्नता हुई होगी, और उसे त्याग का महत्व समझ पड़ा होगा।

केवलज्ञानी भगवान महावीर, विचरते हुए, और जनता

का कल्याण करते हुए, कौशाम्वी पधारे। वहाँ, भगवान का समवशरण हुआ। अपनी शिष्याओ सहित सती चंदनवाला का भी, कौशाम्वी आगमन हुआ। एक दिन, सती चन्दनवाला की आज्ञा लेकर, सती मृगावती, भगवान का दर्शन करने के लिए भगवान के समवशरण में आई। वहाँ भगवान के दर्शन करने के लिए सूर्य और चन्द्र भी आये हुए थे। सूर्य और चन्द्र समवशरण मे वैठे हुए थे, इस कारण सन्ध्या हो जाने पर भी यह नहीं जान पड़ा कि, अव दिन नहीं रहा है, किंतु संध्या होगई है। अभी दिन है, यह समझ कर मृगावती, रात हो जाने पर भी भगवान के समवशरण में ठहरी रहीं। लेकिन जैसे ही सूर्य चन्द्र भगवान के समवशरण से अपने अपने स्थान को गये, वैसे ही अंधेरा होगया। सूर्य चन्द्र के हटते ही यह स्पष्ट जान पड़ने लगा, कि अव दिन नहीं है; किंतु रात होगई है। रात होगई है, यह जान कर मृगावती को वहुत चिंता हुई। वह सोचने लगी, कि रात के समय स्थान से वाहर न रहना, हम साध्वियो के लिए एक आवश्यक नियम है, लेकिन भ्रम मे पड़ जाने के कारण, आज मुझसे इस नियम का पालन नहीं हुआ। नियम भंग होने से, मेरी गुर्वी (गुरुवानी या गुरुणी) मुझे उपालम्भ देगी!

इस प्रकार चिंता से घवराई हुई सती मृगावती, स्थान पर आई। उनने सती चन्दनवाला को वन्दन-नमस्कार किया। मृगा-

वती को सामने खड़ी देखकर, सती चंदनबाला उन्हें उपालम्भ देती हुई कहने लगीं, कि आप ऐसी कुलीन साध्वी भी यदि नियमोपनियम का पालन न करेंगी, और रात होने पर भी अपने स्थान से बाहर रहेगी, तो फिर साधारण कुल से निकली हुई साध्वियों से, नियमोपनियम पालन की आशा कैसे की जा सकती है ? सूर्यास्त होजाने पर भी, आपने स्थान से बाहर रहकर अच्छा नहीं किया। आपको, इस समय तक स्थान से बाहर न रहना चाहिए था !

सती चंदनबाला ने, सती मृगावती को इस प्रकार उपालम्भ दिया। यदि सती मृगावति चाहती, तो यह कह सकती थी, कि मैंने जान-बूझ कर तो नियम भंग किया नहीं है, आदि, लेकिन सती मृगावती ने, सती चंदनबाला द्वारा दिये गये उपालम्भ का कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु सब उपालम्भ चुपचाप सुनती रहीं; और अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करती हुई यह सोचती रहीं, कि चाहे कुछ भी हो, नियमोपनियम का पालन करने के लिए, मुझे समय का ध्यान रखना चाहिए था। आचार्या मुझे जो उपालम्भ दे रही है, वह इसी उद्देश्य से, कि किसी भी सती द्वारा मर्यादा भंग न हो।

समय होने पर सब सतियाँ, अपने-अपने स्थान पर सो गईं। सती चंदनबाला भी सो गईं, लेकिन सती मृगावती मन ही मन

पश्चात्ताप करती रहीं, इस कारण उन्हें नींद नहीं आई। पश्चात्ताप करते करते, सती मृगावती के परिणाम की धारा बढ़ी। उनने, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो ध्यान की तीव्रता द्वारा घनघातिक कर्मों को नष्ट कर दिया; और इस कारण उन्हें, पूर्ण केवलज्ञान तथा केवलदर्शन प्राप्त हुआ।

अन्धेरी रात का समय था। सब सतियाँ सोयी हुई थी। उस समय सती मृगावती ने, एक काला साँप जाते देखा। वह साँप उसी ओर जा रहा था, जिस ओर सती चंदनबाला सोयी हुई थीं। सती चंदनबाला का हाथ, साँप के मार्ग मे था। आचार्या के हाथ को साँप के स्पर्श से बचाने के लिए, सती मृगावती ने साँप के मार्ग से सती चंदनबाला का हाथ हटा दिया। हाथ हट जाने से साँप तो बिना स्पर्श किये ही चला गया, लेकिन सती चंदनबाला की नींद खुल गई। सती चंदनबाला ने जागकर, और पूछ ताछ द्वारा यह जान कर, कि ये सती मृगावती हैं, सती मृगावती से प्रश्न किया, कि—क्या आप अब तक जाग रही हैं? और आपने मुझे क्यों जगाया? आचार्या के इस प्रश्न के उत्तर मे, सती मृगावती ने नम्रता-पूर्वक कहा कि—अभी एक काला साँप इस ओर गया है। आपका हाथ उसके मार्ग में था, इस कारण मैंने आपका हाथ अलग किया, लेकिन मेरे इस कार्य से आपकी निद्रा भंग हो गई, इसके लिए आपसे क्षमा चाहती हूँ!

मुझ से, आपकी निद्रा भंग करने का अपराध हुआ है। आप मेरा यह अपराध क्षमा करें।

यह सुनकर, चंदनबाला ने मृगावती से प्रश्न किया, कि— अन्धेरी रात है, और घर में तो अधिक अन्धेरा है; फिर भी आपको काला साँप कैसे देख पड़ा ? चंदनबाला के इस प्रश्न के उत्तर में सती मृगावती ने कहा, कि यह, आपकी कृपा का परिणाम है। आपकी कृपा होने पर, सब कुछ होना सम्भव है। जब आप ऐसी आचार्या की कृपा होती है, तब रात और दिन समान हो जाते हैं। फिर तो, प्रकाश हो या न हो, सब कुछ देख पड़ता है। आपने मेरे अपराध की उपेक्षा नहीं की, किन्तु मुझे उपालम्भ दिया, इससे मेरा सब पाप नष्ट हो गया; और इसी कारण मैं अन्धेरे में भी उस काले साँप को देख सकी। यदि आप मेरे अपराध की उपेक्षा करतीं, तो मर्यादा भी भंग होती, और मेरा पाप भी नष्ट न होता।

चंदनबाला—आपके इस कथन से तो यही जान पड़ता है, कि आपको कोई ज्ञान हुआ है ! वास्तव में, ज्ञान हुए बिना ऐसा हो भी नहीं सकता। लेकिन यह बताइये, कि आपको जो ज्ञान हुआ है, वह पूर्ण है, या अपूर्ण है ?

मृगावती—आपकी कृपा होने पर भी, अपूर्णता कैसे रह सकती है !

चंदनवाला—तब तो आपको केवलज्ञान हुआ है। मुझे यह मालूम नहीं था, इसी कारण मुझ से आपकी अवज्ञा हुई। आप, मेरा अपराध क्षमा करो।

इस प्रकार कह कर सती चंदनवाला, अपनी शिष्या सती मृगावती को वन्दन करने लगीं, और सती मृगावती, चंदनवाला को वन्दन करने लगीं। केवलज्ञानी की अवज्ञा करने के अपराध का पश्चात्ताप करने से, सती चंदनवाला ने भी, क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हो घातिक कर्म नष्ट कर दिये; इससे उन्हें भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

केवलज्ञान होने के पश्चात् भी सती चंदनवाला और सती मृगावती, विचरती हुई जनता का कल्याण करती रहीं। सती चंदनवाला की ३६ हजार साध्वियों में से, १४०० साध्वियों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अंत में, समय-समय पर सती चंदनवाला, सती मृगावती, और अन्य केवलज्ञान प्राप्त करनेवाली १४०० सतियाँ, अघातिक कर्म नष्ट करके, शरीर त्याग कर, सिद्ध, बुद्ध, एवं मुक्त हुई।

उपसंहार।

जैन साहित्य में, सती चन्दनबाला की कथा का बहुत उच्च-स्थान है। धैर्य, साहस, त्याग, सहनशीलता, और दृढ़ता का आदर्श बताने के लिए, चन्दनबाला की कथा अनुपम है। चन्दबाला की कथा की विशेषताओं पर विचार करने से पहले यह देखना आवश्यक है, कि चन्दनबाला का जीवन ऐसा होने का कारण क्या है! प्रत्येक कार्य का, कोई कारण तो होता ही है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। इसलिए चन्दनबाला के उच्च जीवन रूपी कार्य का भी, कोई कारण अवश्य होना चाहिए। वैसे तो इसके पूर्व-संस्कारो को भी कारण कहा जा सकता है, जो ठीक भी है, लेकिन पूर्व-संस्कार अव्यक्त है। अव्यक्त वस्तु को समझना कठिन है, इसलिए व्यक्त कारण पर विचार करना ठीक होगा।

चन्दनबाला का जीवन उच्च बनाने का कारण, उसकी माता धारिणी है। धारिणी ने, चंदनबाला को जन्म से ही उत्तम शिक्षा

दी थी। फिर जब धारिणी और चंदनबाला को, रथी जंगल मे ले जा रहा था, उस समय भी धारिणी ने चन्दनबाला को ऐसी शिक्षा दी, जिसने चन्दनबाला के जीवन को आदर्श बना दिया। साधारण रूप से तो, उसने चन्दनबाला को प्रारम्भ से धैर्य, गम्भीर, सहनशीलता, दृढ़ता, ब्रह्मचर्य और त्याग की शिक्षा दी थी, लेकिन उसकी रथ मे दी गई शिक्षा, विशेष महत्वपूर्ण थी। क्योंकि, वह शिक्षा संकट के समय दी गई थी। संकट के समय दी गई, या मिली हुई शिक्षा का महत्व बहुत अधिक होता है। इसके सिवा, धारिणी ने उस समय जो शिक्षा दी, उसका क्रियात्मक आदर्श भी चन्दनबाला के सामने रख दिया। इस कारण उसकी दी हुई शिक्षा, चन्दनबाला के हृदय में पूर्णतया स्थान कर सकी, और चन्दनबाला, उस शिक्षा के अनुसार कार्य करने मे समर्थ हुई।

धारिणी ने अन्तिम समय मे सती चन्दनबाला के सामने, अपनी शिक्षा के अनुसार किस रूप में क्रियात्मक आदर्श रखा, इस पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा, किंतु प्रासङ्गिक होगा। कार्य की श्रेष्ठता बताने के लिए, कारण की श्रेष्ठता बताना ठीक ही है। इसलिए संक्षेप मे धारिणी के उन कार्यों पर भी प्रकाश डाला जाता है, जो चन्दनबाला के जीवन को उच्च बनाने के लिए आदर्श रूप थे, और जो दूसरे लोगों का जीवन उच्च बनने में भी कारण रूप हो सकते हैं।

धारिणी, राजरानी थी; फिर भी उसने विषय-विलास को महत्व नहीं दिया। उसने, स्वयं को तथा दधिवाहन को, अनैतिकता की ओर कभी नही जाने दिया। वह स्वयं भी नीति-मार्ग पर स्थिर रही, और उसने अपने पति को भी नीति-मार्ग पर ही स्थिर रखा। अपनी पुत्री चन्दनबाला को भी, उसने ऐसी ही शिक्षा दी। उसे, ब्रह्मचर्य का ही पाठ पढ़ाया, विषय-विलास के वातावरण से, उसको सदा ही बचाये रही। जब दधिवाहन जंगल को चला गया, और चम्पा लूटी जाने लगी, तब भी वह घबराई नहीं। उस समय उसने, चन्दनबाला को, धैर्य तथा साहस रखने की शिक्षा दी। जब सन्तानिक का रथी महल में घुस आया, उस समय धारिणी का कोई रक्षक नहीं था। फिर भी वह, दुःखित नहीं हुई, किन्तु निर्भयता-पूर्वक उसके रथ में बैठ गई, और रथ को ही पाठशाला बना कर, चन्दनबाला को शान्ति-समर, और व्यवहार-क्षेत्र में कार्य करने की शिक्षा दी।

यहाँ तक तो, उसने चन्दनबाला को प्रायः शिक्षा ही शिक्षा दी थी। ऐसा कोई क्रियात्मक आदर्श नहीं रखा था, जिसके रखने में, स्वयं को कोई असाधारण कष्ट उठाना पड़ा हो। लेकिन जंगल में रथ से उतरने के पश्चात् से शरीर त्यागने तक के उसके कार्य, चन्दनबाला के लिए विशेष रूप से क्रियात्मक आदर्श थे।

रथी ने धारिणी के सामने जो अनुचित प्रस्ताव रखा था,

धारिणी और उसके पति को जो कटुवचन कहे थे, उनके कारण, प्रत्येक स्त्री को क्रोध, और अपनी विवशता पर दुःख होना स्वाभाविक है; परन्तु धारिणी ऐसी साधारण स्त्रियों मे से न थी। यद्यपि पति के विषय मे कहे गये कटुवचन, उसे असह्य अवश्य हुए, फिर भी, इस कारण, अथवा अनुचित प्रस्ताव के कारण, उसने रथी पर क्रोध नहीं किया; किंतु उसको अपना भाई मान कर, सुमार्ग पर लाने का ही प्रयत्न करती रही। ऐसे कठिन समय मे, स्त्री-स्वाभावानुसार धारिणी के हृदय में दधिवाहन के विरुद्ध कोई न कोई विचार हो सकता था। वह सोच सकती थी, कि पति ने, मुझे और पुत्री को अरक्षित छोड़ कर अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की है; लेकिन धारिणी ने पति के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की ओर ध्यान भी नहीं दिया। उसने तो केवल अपना कर्त्तव्य देखा, और उसकी रक्षा का ही प्रयत्न किया। उसने, पहले तो रथी को सुधारने, उसे सुमार्ग पर लाने, और इस प्रकार स्वयं के सतीत्व की रक्षा करने के लिए उपदेश से काम लिया। रथी को बहुत समझाया। उसे, सब तरह से कायल किया। लेकिन जब कामान्ध रथी के सामने यह सब प्रयत्न निष्फल हुआ, और धारिणी ने जान लिया, कि अब मुझ पर यह बलात्कार करेगा, तब उसने शरीर त्याग कर सतीत्व की भी रक्षा की, और रथी को भी सुधार दिया।

इस प्रकार धारिणी ने, अपने कार्य, तथा जीवन और मरण

के द्वारा, चंदनवाला के साथ ही संसार के लोगों को अनेक शिक्षा दीं। उसने वता दिया, कि पत्नीजीवन, मातृ-जीवन, और भगिनि-जीवन को किस प्रकार निभाना चाहिए, तथा पत्नी, माता, और वहन का क्या कर्त्तव्य है। उसने यह भी वता दिया, कि विपत्ति-काल में शील की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है; और उस समय, कैसे धैर्य एवं साहस की आवश्यकता है। इन सबके सिवा, उसने, उपदेश को सार्थक वनाने के लिए कैसे त्याग की आवश्यकता है, तथा उपदेशक पर कैसी जवावदारी है, यह भी वताया है।

चंदनवाला रूपी कार्य के धारिणी रूपी कारण में ये विशेषताएँ थीं। जिसके कारण में विशेषता होगी, उस कार्य में विशेषता होना स्वाभाविक है। इस प्रकार धारिणी के प्रताप से ही, चंदनवाला में, विशेषताएँ थीं। धारिणी ने चंदनवाला को जो शिक्षा दी थी, और क्रियात्मक आदर्श द्वारा जिसे हृदयंगम करा दी थी, उस शिक्षा के प्रताप से ही, चंदनवाला को कार्य करने में आलस्य या थकावट नहीं हुई; अपनी पूर्व-स्थिति का विचार करके दुःख नहीं हुआ, और न रथी की स्त्री, या मूलाँ द्वारा किये गये व्यवहार पर उसे क्रोध आया, या उसमे वदला लेने की भावना ने ही स्थान पाया। वल्कि जो उसके साथ दुर्व्यवहार करता था, चंदनवाला उसको भी प्रसन्न रखने, उसको भी सुखी वनाने, और उसका का भी हित करने में ही रहती थी। रथी की स्त्री ने, जब

अपने पति से चंदनबाला को बेचने का प्रस्ताव किया था, तब रथी उस पर क्रुद्ध होकर उसे घर से निकालने तक को तयार हो गया था। लेकिन चंदनबाला ने उसको समझा कर शान्त किया, तथा उसकी पत्नी की इच्छानुसार चंदनबाला को बेंचने के लिए, बाजार चलने को विवश कर दिया। बाजार में भी, जो वेश्या, चन्दनबाला को वेश्या बनाने के लिए जबरदस्ती पकड़ कर ले जाना चाहती थी, उस पर जब बंदरों ने आक्रमण किया, तब वेश्या के साथी-सहायक लोग तो भाग गये, लेकिन चंदनबाला ने दौड़ कर उस वेश्या को भी बंदरो से छुड़ाया, और उसकी सेवा-सहायता की। फिर धनावा सेठ के यहाँ संदेहवश मूलाँ ने जो अपशब्द कहे, उन्हे भी उसने धैर्य-पूर्वक सहा, तथा मूलाँ की इच्छानुसार, उसका संदेह मिटाने के लिए बाल कटवा कर, हथकड़ी-बेड़ी डलवा कर, और अंधेरे भोयरे मे पड़कर परीक्षा दी। जहाँ से तीन दिन के बाद जीवित निकलने की कोई आशा नही हो सकती, उस भोयरे में पड़कर भी वह घबराई नहीं, न उसे कुछ दुःख ही हुआ; किंतु वहाँ भी उसने धर्माराधन ही किया। फिर जब सेठ ने उसे भोयरे से निकाला, तब भी उसने सेठ से मूलाँ के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं की।

इस प्रकार की सहनशीलता, धैर्य, और धर्म भावना का ही यह परिणाम था, कि चंदनबाला का, दान लेने के लिए भगवान

महावीर ऐसा तपस्वी और महापुरुष पात्र मिला। भगवान महा-वीर का जो कठिन अभिग्रह था, वह सती चंदनबाला से ही पूरा हुआ। उसने त्रिलोक के जीवों का कल्याण करनेवाले भगवान महावीर को अन्न-दान क्या दिया था जीवन-दान दिया था। फिर भी चंदनवाला को किसी प्रकार का गर्व या अभिमान नहीं हुआ। इन्द्रादि देवों द्वारा की गई स्तुति या सोनैया-वृष्टि उसमें उच्छृं-खलता पैदा न कर सकी। वह पहले की ही तरह विनम्र बनी रही। वेश्या, रथी उसकी स्त्री और मूलाँ के साथ, उसने पहले से भी अधिक नम्रता का व्यवहार किया। बल्कि उन सब को, भग-वान को दान देने का सुयोग प्राप्त होने का कारण मानकर, अपने पर उनका उपकार माना; और स्वयं को उनका ऋणी बताया। रथी और सेठ के यहाँ उसने अनेक कष्ट अनुभव किये थे, फिर भी सन्तानिक के यहाँ का बुलौआ आने पर, वह राज महल या राजसी सुखों पर नहीं ललचाई; किन्तु जिस राज महल में पाप का ही विचार होता था, उसमें जाने से स्पष्ट इनकार कर दिया। सन्तानिक और मृगावती के आने पर भी, वह इस निश्चय से नहीं डिगी। अपने इस निश्चय पर दृढ़ रह कर, तथा सन्तानिक का ध्यान उसके समस्त दुष्कृत्यो की ओर खींच कर, उसने सन्तानिक को भी पवित्र बना दिया।

साधारण मनुष्य, जब तक विवश और शक्तिहीन है, तब तक

तो सब कुछ सुनता सहता रहता है; ऊपर से विनम्र रहता हुआ भी, हृदय में बदले की भावना को प्रज्ज्वलित करता रहता है; और जब उसकी विवशता मिट जाती है, वह शक्तिसम्पन्न हो जाता है, तब अपने साथ दुर्व्यवहार करनेवाले से, बदला लिये बिना नहीं रहता ! बल्कि कोई कोई व्यक्ति, उस समय किये गये बड़े से बड़े सद्व्यवहार को तो विस्मृत कर देता है, उनको तो आगे नहीं लाता, और किसी छोटी-सी बुराई को याद करके उसका बदला लेता है। सज्जन लोग, ऐसा नहीं करते। वे, किसी भी समय, तथा किसी भी दशा में किये गये भारी से भारी दुर्व्यवहार को भी बदला लेने की भावना से कदापि याद नहीं करते, न उनको आगे रख कर किसी सद्व्यवहार को ही छिपाते हैं। बल्कि अपने साथ किये गये दुर्व्यवहार को भी, वे उपकार मानते हैं, और उस दुर्व्यवहार करनेवाले के साथ भी. सद्व्यवहार ही करते हैं। चंदनबाला के विषय में यह कहा जा सकता है, कि वह विवश होकर सब कष्ट सहती रही, शक्तिहीन थी, इसी से बदला न ले सकी और नम्रता दिखाती रही। लेकिन सन्तानिक के सुधरने के पश्चात् तो, वह विवश या शक्तिहीन नहीं रही थी। उस समय यदि वह चाहती तो रथी और उसकी स्त्री आदि से भली प्रकार बदला ले सकती थी। वह, उन सब को पूरी तरह दंड दिला सकती थी। परन्तु उसमें बदला लेने या दंड देने की

भावना तो तब हो सकती थी, जब उसने, उन सब का अपराध माना होता। उसने, किसी का कोई अपराध ही नहीं माना। इससे चंदनबाला में, दण्ड देकर बदला लेने की भावना नहीं हुई। बल्कि जिस रथी को सन्तानिक कठोर दण्ड देना चाहता था, उसे भी उसने अभयदान दिला कर संतानिक का भाई बना दिया।

सन्तानिक के सुधर जाने पर, और उसके प्रार्थना करने पर भी, चंदनबाला ने, उस समय तक सेठ के यहाँ से जाना स्वीकार नहीं किया, जब तक कि सेठ ने स्वीकृति नहीं दे दी। उसने, सन्तानिक की प्रार्थना का यही उत्तर दिया, कि मैं इनके यहाँ बिकी हुई हूँ, इसलिए आने में स्वतंत्र नहीं हूँ। यदि वह चाहती, तो सेठानी के दुर्व्यवहार को न कह कर भी, यह कह सकती थी, कि मेरे कारण साढ़े बारह क्रोड़ सोनैया की वृष्टि हो चुकी है, इसलिए बीस लाख सोनैया का मेरे पर कोई कर्ज नहीं रहा। परन्तु चंदनबाला तो यह मानती थी, कि मेरे द्वारा यदि कोई लाभ होता है, तो वह लाभ, मुझे खरीदनेवाले के अधिकार का है! मैंने उन्हीं का अन्न दान में दिया है, इसलिए सोनैया-वृष्टि के कारण, मैं ऋण-मुक्त नहीं हो सकती।

संरक्षक, यदि कष्ट के समय रक्षा करना त्याग दे, संरक्षित को छोड़ दे, तो सुख के समय जब संरक्षक मिलता है, तब उसको उपालम्भ तो दिया ही जाता है। उससे यह तो कहा ही जाता है;

कि जब हमारी रक्षा का भार तुम पर था, तो तुम हमको कष्ट में छोड़ कर कैसे चले गये! तुम हमको छोड़ कर चले गये, इस कारण अमुक-अमुक हानि हुई, और अमुक-अमुक कष्ट सहने पड़े। साधारण लोग, कम से कम इस प्रकार का उपालम्भ देते ही हैं। दधिवाहन भी, इस उपालम्भ का पात्र तो था ही। यदि चंदनबाला चाहती तो दधिवाहन को बहुत कुछ उपालम्भ दे सकती थी। कह सकती थी, कि अब राज्य लेने के लिये तो आगये, परंतु कष्ट के समय मुझको और मेरी माता को छोड़ कर चले गये थे, जिससे ऐसी-ऐसी दुःखद घटना हुई, आदि। यदि चंदनबाला अपने पिता को इस प्रकार का कोई उपालम्भ देती, तो दधिवाहन के पास उन उपालम्भों का कोई उत्तर भी न था। लेकिन चंदनबाला, क्षुद्र-हृदय न थी। वह जानती थी, कि वास्तव में कोई दूसरा रक्षक नहीं हो सकता, अपनी रक्षा आप ही की जा सकती है। जो स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उसकी रक्षा कोई भी नहीं कर सकता। ऐसी दशा मे, मैं पिता जी को उपालम्भ क्यों दूँ। इनका अपराध ही क्या है! इस प्रकार के विचार से चंदनबाला ने, दधिवाहन को किंचित् भी उपालम्भ नहीं दिया। बल्कि जब स्वयं दधिवाहन खेद और पश्चात्ताप करने लगा, तब चंदनबाला ने, अपने उपदेश से उसको धैर्य दिया।

कष्ट सहनेके बाद, मनुष्य, सुख पानेकी इच्छा करता है। ऐसे

बहुत कम व्यक्ति देखे गये होंगे, जिनने कष्ट तो सहे, लेकिन फिर जो सुख प्राप्त हो रहे थे, उन्हें त्याग दिया। बल्कि अधिकांश आदमी सुख की आशा से ही कष्ट उठाते हैं। यह बात दूसरी है, कि कोई इहलौकिक सुख के लिए, और कोई पारलौकिक सुख के लिए कष्ट उठावे, परन्तु दुःख उठाने का उद्देश्य सुख प्राप्त करना ही रहता है। राजमहल छूटने के बाद, चन्दनबाला ने भी अनेक कष्ट उठाये थे। उसको दासी की तरह सब कार्य करने पड़े थे। साथ ही, बहुत-सी अनर्गल बातें भी, सुननी सहनी पड़ी थीं। इस प्रकार के कष्टसहने के बाद, उसके हृदय में सांसारिक-सुख भोगने की इच्छा हो सकती थी, लेकिन उसने, दधिवाहन, संतानिक, और मृगावती के अनुरोध पर भी, विवाह करने से इनकार कर दिया, तथा ब्रह्मचर्य पालने की ही इच्छा प्रकट की। साधारण आदमी में, इतने कष्ट सहने के बाद—संयम को अच्छा समझने पर भी—कुछ दिन सांसारिक-सुख भोगने की भावना हो सकती है, परन्तु चंदनबाला के हृदय में, इस प्रकार की भावना को स्थान भी नहीं मिला।

संयम लेने के पश्चात् चंदनबाला ने, संयम के नियमोपनियम पालने-पलवाने के विषय में, उपेक्षा, असावधानी, या मुरव्वत नहीं की। संसार-व्यवहार के नाते मृगावती, चंदनबाला की मौसी थी। फिर भी जब भगवान के समवशरणसे वह रात हो जाने पर आई,

तब चंदनबाला ने उसे बहुत उपालम्भ दिया। इस सांसारिक सम्बंध का, उसने कोई विचार नहीं किया। उसका लक्ष्य यही रहा, कि नियमों के पालन में किंचित भी शिथिलता न होनी चाहिए। यदि नियमों के पालन मे शिथिलता होगी, तो साध्वी-समाज पवित्र न रह सकेगा। इस उच्च ध्येय के कारण, वह मृगावती को भी उपालम्भ देने से नहीं चूकी। फिर जब उसे मृगावती को केवलज्ञान होने का हाल मालूम हुआ, तब उसको वन्दन करने, और उससे क्षमा मागनेमें भी, किसी प्रकार का संकोच या विचार नहीं हुआ। बल्कि उसने इसी कार्य द्वारा, केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

इस प्रकार चंदनबाला का, और उससे पहले धारिणी का जीवनचरित्र जिस दृष्टि से भी देखा जावे, जनता के सन्मुख उत्कृष्ट आदर्श रखता है। धारिणी का पत्नी-जीवन, मातृ-जीवन, और भगिनि-जीवन जो आदर्श रखता है, वह स्त्रियो, तथा उनकी संतान के सामाजिक एवं नैतिक जीवन को, सुदर, सुखमय, और उच्च बनाना है। चंदनबाला का, मातृ शिक्षा पर विश्वास करना, माता की शिक्षा को हृदयंगम करके, माता के उद्देश्य को पूरा करना, किसी भी स्थिति से न घबराना, संतान के कर्त्तव्य का आदर्श रखता है। उसकी सहनशीलता, कार्यदक्षता, और स्वामिभक्ति, सेवक के लिए आदर्श रखती है। उसकी नम्रता, प्रियवादिता, पवित्रता, और धर्म भावना, तथा उसका धैर्य, साहस, अहित

करनेवाले के प्रति भी सद्भावना और त्याग, मनुष्य मात्र के लिए कल्याणकारी आदर्श रखता है। नियमों का पालन करने, नियम भंग करनेवाले को उचित दण्ड देने एवं साध्वी-समाज की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए किया गया उसका कार्य, साधु-साध्वियोंके लिए आदर्श रूप है। इस प्रकार यह कथा, गृहस्थो और गृहत्यागियो, दोनों ही का कल्याण करनेवाली है। इस कथा से आये हुए उत्तम विचारों, और कार्यों को जो भी ग्रहण करेगा, वही अपना और जनता का कल्याण कर सकता है।

एक बात और है। यह धर्म कथा है, इतिहास नहीं है। धर्म कथा की बातें, श्रद्धा और विश्वास का ही आधार रखती है। उन पर श्रद्धा विश्वास करता है, उसके लिए तो धर्म कथा लाभ-प्रद सिद्ध होती है, लेकिन जो उन पर अविश्वास करता है, उन्हें इतिहास से तौलने की चेष्टा करता है, उसके हाथ केवल संशय ही आता है; लाभप्रद तत्व, उसे नहीं मिलता। इसलिए धर्म कथा को, इतिहास की दृष्टि से देखना ठीक न होगा। धर्म कथा को तो, श्रद्धा और विश्वास की दृष्टि से ही देखना चाहिये।

इस कथा के विषय में प्राचीन आचार्यों का जो साहित्य उपलब्ध है, उसीको विस्तृत रूप दिया गया है, और कहीं कहीं उसमें परिवर्तन भी किया गया है। धर्म-कथा का उद्देश्य, कालानुसार जनता में जागृति करना और चरित्र द्वारा जनताको योग्य शिक्षादेना ही होताहै।